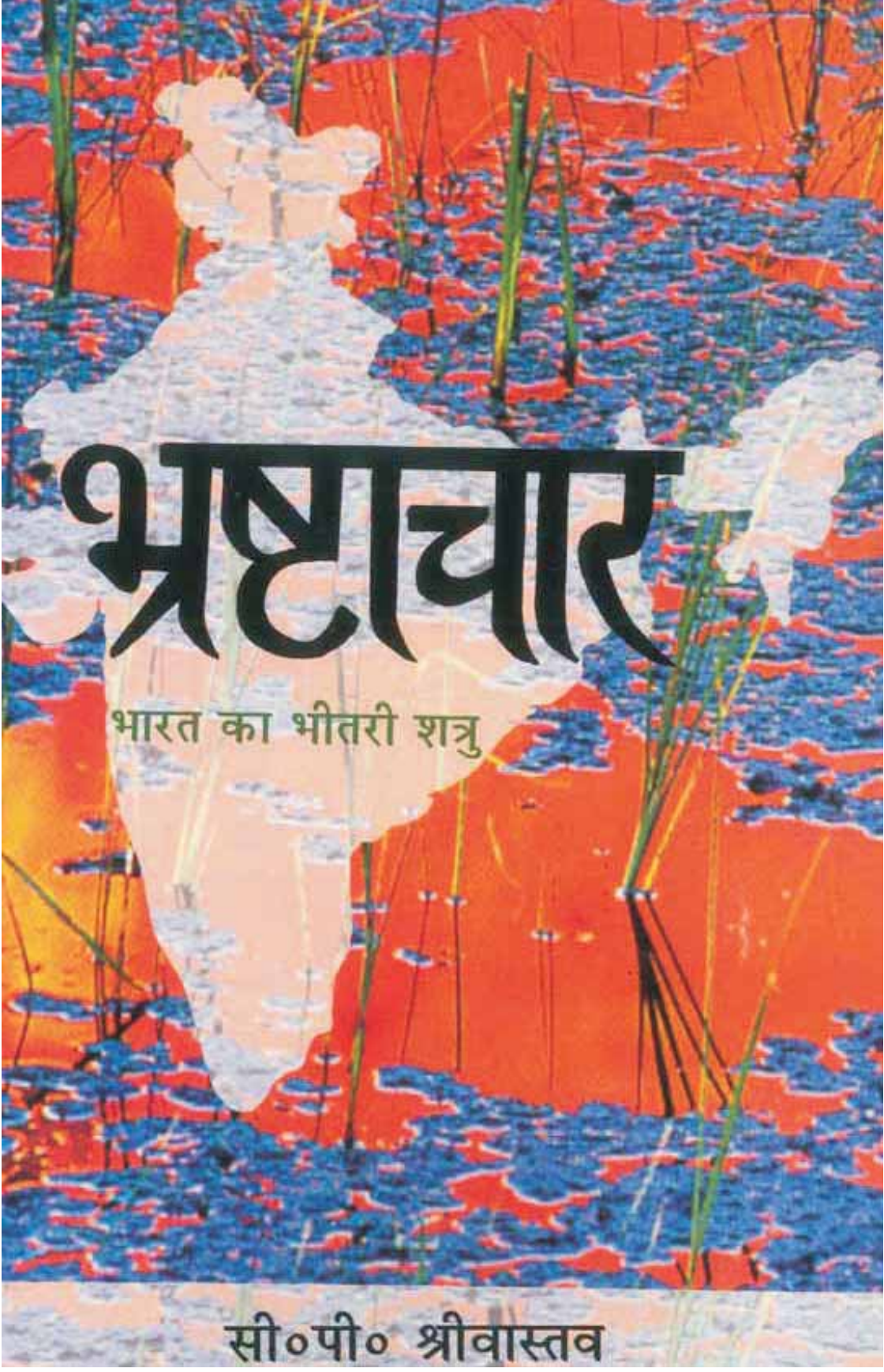

सी०पी० श्रीवास्तव

भ्रष्टाचार

भारत का भीतरी शत्रु

सी०पी० श्रीवास्तव
आइएएस (अवकाश प्राप्त)

हिन्दी रूपान्तर

प्राणनाथ पंकज
महाप्रबन्धक (अवकाश प्राप्त)
भारतीय स्टेट बैंक

मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स
प्राइवेट लिमिटेड • दिल्ली

प्राक्कथन

भारत आज विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है जिसकी जनसंख्या एक अरब और मतदाता साठ करोड़ पचास लाख हैं। 1947 में स्वाधीनता मिलने से लेकर अब तक, हमारे देश में तेरह आम चुनाव हो चुके हैं जो कि वयस्क मताधिकार एवं गुप्त मतदान प्रणाली पर आधारित रहे हैं। हमारे देश का संविधान सभी नागरिकों को जाति, सम्प्रदाय, समुदाय अथवा धर्म के किसी भेदभाव के बिना, पूर्ण समानता की गारंटी देता है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सभी प्रकार से सुरक्षित रखने के लिए सभी संवैधानिक उपायों के दृढ़ता से लागू किए जाने की सुनिश्चित व्यवस्था की है। भारत की प्रेस स्वतंत्र और जागरूक है और वह सामान्य जनता के अधिकारों की एक और मज़बूत संरक्षक है। देश ने अन्य दिशाओं में भी महत्वपूर्ण प्रगति की है। आज इस देश की गिनती विश्व के उन देशों में होती है जिनके पास शीर्ष स्तर के विशेषज्ञ कार्मिकों, जैसे वैज्ञानिकों प्रौद्योगिकी-विशेषज्ञों, इंजीनियरों, सॉफ्टवेयर-विशेषज्ञों, डॉक्टरों, शल्यचिकित्सकों, वकीलों, प्रशासकों, व्यापार और उद्योग के नेताओं, प्रबंधकों, लेखाकारों इत्यादि का सब से बड़ा भंडार है। भारत आज उन देशों की पंक्ति में है जो औद्योगिक दृष्टि से सब से आगे है। पिनों और सूइयों से लेकर अत्यंत परिष्कृत मशीनों, समुद्री जहाज़ों, वायुयानों, टैंकों और प्रक्षेपास्त्रों तक का निर्माण अब यहां होता है। कृषि के क्षेत्र में भारत ने सफलतापूर्वक 'हरित क्रान्ति' के लक्ष्य को प्राप्त किया है और खाद्य पदार्थों के मामले में अब यह आत्मनिर्भर है। इन के साथ ही, भारत में एक सुगठित राजनीतिक, प्रशासनिक और न्यायिक ढांचा है। इन सबके रहते, भारत को आज एक ऐसा सुप्रशासित एवं समुचित समृद्धियुक्त देश होना चाहिए था जिसकी गणना विश्व के अग्रगण्य राष्ट्रों में की जा सकती। और हर हाल में, कम से कम, इस को इस स्थिति में तो होना ही चाहिए था कि यह अपनी दयनीय ग़रीबी को मिटाने में सफल हो पाता तथा अपने नागरिकों के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर सकता। पर जैसा कि हम सब जानते हैं, अभी तक यह नहीं हो पाया, जो कि खेद का विषय है।

सचाई यह है कि स्वाधीनता के 53 वर्षों के बाद, भारत आज अनेक गंभीर समस्याओं से घिरा हुआ है। इनमें सबसे भयावह, सबसे घातक है भ्रष्टाचार, जो हमारी राज्यव्यवस्था में, प्रशासन में, समाज में और व्यापार में, सर्वत्र पूरी तरह

व्याप्त है। पर भ्रष्टाचार केवल एक नैतिक मुद्दा ही नहीं है। इसके व्यावहारिक परिणाम दूरगामी और विध्वंसक होते हैं। और हमारी वर्तमान स्थिति का सर्वाधिक दुखद और दूषित पहलू भारत के पचास करोड़ लोगों की अथाह ग़रीबी है। यह भारत की आधी आबादी है और इसमें बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके नसीब में स्वच्छ जल और बुनियादी शौच-व्यवस्था तक नहीं है। इसके अतिरिक्त, इसके परिणामस्वरूप तथा इसके साथ-साथ पैदा हुई बुराइयाँ हैं, जैसे राजनीति का अपराधीकरण, रूढ़िग्रस्त धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन, जातिवाद और छद्म धर्मनिरपेक्षता। ऐसे लक्षण भी सर्वत्र दिखाई देते हैं जो इशारा करते हैं पारिवारिक तथा सामाजिक, दोनों प्रकार के जीवन के परम्परागत मूल्यों के ह्रास की अनर्थकारी संभावना की ओर, इसके फलस्वरूप बढ़ते हुए दंभ और अशिष्टता की ओर, कानून की अवज्ञा और क्षुद्रसत्ता के दुरुपयोग की ओर और इसके साथ, चंद अपवादों को छोड़कर, भारत के सभी विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्तरों के गहरे पतन की ओर।

देश का आर्थिक विकास भी बुरी तरह बाधाग्रस्त है। और इसका कारण एक ऐसा अपर्याप्त, अक्षम तथा असम्पोषित ढाँचा है जिसके संचालन में अवर्णनीय कदाचार की व्यापकता के कारण निरन्तर रुकावटें आती हैं।

इस सारे अधःपतन, इस सारी अपकृष्टता का मूल कारण सर्वग्रासी, भीमकाय भ्रष्टाचार है। यह एक ऐसा दानव है जिसने हमें पिछली अर्धशती में वैसी सर्वतोमुखी प्रगति नहीं करने दी जैसी कि एशिया और लातीनी अमेरिका के उन कई देशों ने की है जिन पर भ्रष्टाचार का वैसा मारक और घातक प्रभाव नहीं पड़ा। 4 सितम्बर, 1999 के 'द इकॉनोमिस्ट' का कहना है : 'भारत संसार में सबसे बड़ा न्यूनतम उपलब्धियों का देश है।' यह एक कड़वा सच है, पर एक सच यह भी है जो उतना ही मान्य और भविष्य के प्रति गहरी आशा जगाने वाला है: इसमें किसी को संदेह नहीं है कि भारत के पास ऐसे पर्याप्त मानव और भौतिक संसाधन हैं जिनसे केवल एक या दो दशाब्दियों में पूरी स्थिति में नाटकीय परिवर्तन लाया जा सकता है। शर्त सिर्फ़ यह है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने को सर्वोपरि प्राथमिकता देते हुए सभी आवश्यक और पर्याप्त कानूनी और प्रशासकीय उपाए किए जाएँ। दाँव पर केवल भारत की नैतिक प्रतिष्ठा ही नहीं है। भ्रष्टाचार हमारे देश के वर्तमान और भविष्य के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कुशल-क्षेम के लिए भी एक बुनियादी ख़तरा है।

इसलिए इस पुस्तक में विशेष रूप से भ्रष्टाचार की समस्या को केन्द्रीय विषय बनाया गया है और यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि क्यों हमारा देश इस सर्वव्यापी भ्रष्टाचार की मुट्ठी में फंसा है। इसमें यह अनुमान लगाने का प्रयत्न

किया गया है कि अब तक कितना नुकसान हो चुका है और चेतावनी दी गई है कि इस बुराई पर यदि काबू न पाया गया तो देश को किन संकटों का सामना करना पड़ सकता है। यह तो केन्द्रीय और महत्वपूर्ण प्रश्न है ही, पर विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित ऐसी अन्य समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है जो देश को दुर्बल बना रही हैं।

यह दावा नहीं किया गया है कि भ्रष्टाचार को कभी भी पूरी तरह समाप्त किया जा सकता है। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है जो अपनी सभी प्रकार की गतिविधियों में पूर्णतया भ्रष्टाचार-मुक्त हो। जहाँ-जहाँ इंसान हैं, वहाँ-वहाँ भ्रष्टाचार है। उस का हाशिए पर रहना या फिर फैल जाना इस बात पर निर्भर है कि हम उसका नियंत्रण करने के लिए, उसका सामना करने के लिए, क्या उपाय करते हैं। पर आख़िर, यह विचित्र प्रपंच, जिसे हम भ्रष्टाचार का नाम देते हैं, जन्म ही क्यों लेता है? मनुष्य भ्रष्टाचार में लिप्त होता ही क्यों है? निस्संदेह वह जानता तो है कि सही क्या है और ग़लत क्या। अपने दैनन्दिन जीवन में सही रास्ता चुनने के लिए उसे स्वतंत्र इच्छाशक्ति का वरदान भी प्राप्त है। तो फिर वह क्यों सदा कर्म के सही पथ का चुनाव नहीं कर पाता?

यह एक आदिकालीन प्रश्न है और इसका उत्तर संभवतः मनुष्य की आदिम प्रकृति को समझने में निहित है। अन्य सभी जीवधारियों की ही भाँति मनुष्य भी कुछ आधारभूत 'सहज प्रवृत्तियों' के साथ जन्म लेते हैं। इन सहज प्रवृत्तियों में सब से प्रबल 'आत्म-परिरक्षण' की प्रवृत्ति है। किसी भी जीवधारी को अपने जीवन पर किसी आसन्न संकट का आभास होता है तो या तो वह उससे, जितना बन पड़े, उतनी तेज़ी से भागता है, या फिर, यदि उसमें शक्ति हो तो मुड़कर आक्रमण करता है। इस प्रकार की क्रिया को तर्क की दृष्टि से 'अच्छा' या 'बुरा' नहीं कहा जा सकता। यह एक सहज प्रवृत्तिमूलक प्रतिक्रिया है जो मानव-प्रकृति में 'जन्मजात' तथा 'अन्तर्निहित' है। अपने हित-साधन के लिए काम करने की प्रवृत्ति की संरचना सभी स्त्री पुरुषों के जन्म के साथ ही होती है।

अपने अस्तित्व के आरंभिक तथा आदिम युग में मनुष्य अपने परिरक्षण के लिए शारीरिक बल का उपयोग करते थे। आवश्यकता पड़ने पर, वे अपने पड़ोसियों के यहाँ चोरी करते थे, यहाँ तक कि उन्हें मार भी देते थे। इसमें किसी प्रकार की बुराई नहीं समझी जाती थी। 'आत्म-परिरक्षण के लिए यह आवश्यक' था। समय बीतने के साथ इससे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई। इसे सुधारने के लिए सभी महान् धर्मों ने नैतिक नियम निर्धारित किये जिनमें मनुष्यों द्वारा आचरणीय ऐसे सामान्य निर्देश थे जो सब लोगों के हित में थे। (बाइबल में वर्णित) दस धर्मादेशों का उद्देश्य

यही था, और है। इनमें से,

- छठा धर्मादेश कहता है, "तुम हत्या नहीं करोगे।"
- आठवाँ धर्मादेश कहता है, "तुम चोरी नहीं करोगे।"
- दसवाँ धर्मादेश कहता है, "तुम लालच नहीं करोगे।"

भारत की प्राचीन अवधारणा में ऋत - अर्थात् ब्रह्मांड की संरचना में ही ग्रथित शाश्वत नियम - तथा बाद में विकसित 'मर्यादाओं' के सिद्धान्त - जिनका अभिप्राय सही और ग़लत की सहज समझ तथा उचित और शिष्ट आचरण था - सभी लोगों को सदाचार और नैतिकता की सीमाओं के भीतर रहने का आदेश देते हैं। इन का उद्देश्य मनुष्य की मूल प्रकृति को नियंत्रित और अनुशासित करना ही था।

सभ्य समाज के आरंभ के साथ, जीवन और सम्पत्ति से संबंधित आधारभूत नैतिक मानकों को ऐसे कानून द्वारा लागू करने की प्रक्रिया आरंभ हुई जो सभी को स्वीकार्य हो और प्रत्येक सदस्य को उसके 'परिरक्षण' की गारंटी दे। इस प्रकार अधिकतर लोग स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगे और एक ऐसे जीवन के अभ्यस्त हो गए जो 'कानून के शासन' द्वारा संचालित था। वे अपने काम धंधे के लिए स्वतंत्रतापूर्वक जा सकते थे। उनके और उनके परिवारों के जीवन और उनकी संपत्ति को कानून का संरक्षण प्राप्त था। यदि कोई व्यक्ति, इसके बावजूद, अपनी आदिम, सहज प्रवृत्तियों के वश होकर, चोरी और हत्या करता था, तो उसे कानून के अनुसार दंड दिया जाता था।

एक अच्छी व्यवस्था को स्थापित करने के लिए समाज ने पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों के लिए अपने निजी मापदंडों की रचना की। मोटे तौर पर ये मापदंड धार्मिक विधि-निषेधों पर आधारित थे और उन्हीं से बल प्राप्त करते थे। लोगों की समझ में यह बात आने लगी कि उनका व्यक्तिगत निजी-हित उन सभी लोगों के निजी-हित के अनुरूप है जो ऐसे समाज के सदस्य हैं जिसका नियंत्रण सब पर लागू होने वाले नियम-विनियमों से होता हो। यह सच है कि परिस्थितियाँ आदर्श तो नहीं थीं पर लोग शान्तिपूर्वक रहने लगे थे, ऐसे कुछ चोरों-लुटेरों को छोड़ कर जो अपनी गंभीर नैतिक त्रुटियों के कारण उन न्यायसंगत सामूहिक मापदंडों से अप्रभावित रहते और उन्हें स्वीकार नहीं कर पाते थे।

फिर भाप के इंजिन का आविष्कार हुआ और आई औद्योगिक क्रान्ति। इसके साथ ही राष्ट्रों और लोगों के लिए विशाल संभावनाओं के द्वार खुले। समकालीन उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक परिदृश्य पर डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत के ग़लत उपयोग के कारण आत्म-परिरक्षण की अन्तर्निहित सहज-प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। 'योग्यतम ही जीने का अधिकारी', इस वैज्ञानिक सिद्धांत का उपयोग कमज़ोरों और शक्तिहीनों के क्रूर शोषण तथा सभी उपलब्ध साधनों से 'निजी-

उन्नति' के विचार को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए किया जाने लगा। इस प्रकार साधारण जनता का शोषण ही नियम बन गया जिसे प्रौद्योगिकी के विकास से प्राप्त शक्ति के उपयोग अथवा दुरुपयोग से सहायता और बल प्राप्त हुआ। सामाजिक आचरण के परम्परागत सिद्धान्त इस बाढ़ में बह गये। एक बार फिर अनियंत्रित लालच, स्वार्थ और संग्रह-प्रवृत्ति को सामाजिक संबंधों के वैध अभिप्रेरक के रूप में स्वीकार और सहन किया जाने लगा। कई लोग राजनीति, प्रशासन या व्यापार में नई-नई मिली इस शक्ति का उपयोग अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए करने लगे। हम याद करें कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों ने भारत में अथवा साम्राज्यीय शक्तियों के सिपाहियों ने अफ्रीकी, एशियाई व लातीनी अमेरिका के देशों में क्या किया था। खुद साम्राज्यवादी राष्ट्रों में, शक्तिशाली राष्ट्रों ने दूसरों को शोषण का शिकार बनाया था। इस प्रकार आधुनिक परिवेश में भ्रष्टाचार व्याप्त होने लगा। अठारहवीं शताब्दी में जब औपनिवेशिक विस्तारवाद का प्रारंभ हुआ, तब संसार के कुछ सर्वाधिक शक्तिशाली देशों की गिनती सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में भी होने लगी थी।

पर जल्दी ही कुछेक देशों में, कुछ नेताओं और दूरदर्शी व्यक्तियों ने उस समय की परिस्थितियों में संनिहित गंभीर संकट को भाँप लिया। इसमें सुधार लाने के लिए उन्होंने सुनिश्चित किया कि राष्ट्र जीवन के प्रत्येक पहलू, विशेषकर सरकारी प्रशासन में ईमानदारी को पुनः स्थापित करने और भ्रष्टाचार का सामना करने के लिए नए कानून बनाए जाएं।

अत्यंत बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए उन्होंने 'आत्म-परिरक्षण' की सहज प्रवृत्ति से जन्मी मानव प्रकृति की पतनोन्मुखी संभावनाओं की अनदेखी न करके इस सत्य को स्वीकार किया कि मनुष्य को सबसे पहले उसकी अपनी तथा अपने परिवार की सुरक्षा तथा कुशल-क्षेम का भरोसा दिलाया जाना ज़रूरी है। विधि सम्मत नियमों के द्वारा शासित समाज से, एक बार इस प्रकार का आश्वासन समुचित मात्रा में प्राप्त हो जाने पर, उस पर नए विधि सम्मत शासन तंत्र के ऐसे कड़े नियमों को लागू किया जा सकता है जो पूरे समाज के श्रेष्ठ हितों को ध्यान में रखते हुए अच्छे व्यवहार को अनिवार्य बनाते हों, जिनके द्वारा इन नए, अधिक सामूहिक तथा विवेकसंगत मानदंडों की अवहेलना करने वालों को कठोर दंड दिया जा सकता हो। और नेताओं ने ईमानदारी और सच्चाई के वातावरण को बढ़ावा देते हुए स्वयं अनुकरणीय आदर्शों की प्रेरणाप्रद भूमिका निभाई।

इस नई व्यवस्था ने प्रभावशाली ढंग से काम किया और एक बार फिर सरकार तथा समाज में धीरे-धीरे सत्यनिष्ठा की स्थापना हुई। इस प्रकार अठारहवीं सदी के भ्रष्ट देश उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के सबसे ईमानदार देश बन कर हमारे सामने आये। इन देशों में भ्रष्टाचार समाप्त तो नहीं हुआ है, पर वह हाशियों में ही

सिमटा हुआ है तथा इसे आसानी से पहचाना जा सकता है और संबंधित दोषियों को दंडित किया जा सकता है।

भारत को आज उसी 'नयी व्यवस्था' की आवश्यकता है जिसने अब से पहले दूसरे देशों को उबारा है। हमारे पास न तो आज की परिस्थितियों की ओर आंख मूंदने का विकल्प है न हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने का। यदि भ्रष्टाचार के दानव पर काबू नहीं पाया गया तो यह कहीं भी, किसी भी समय प्रहार कर सकता है। यदि ऐसा हुआ तो भयंकर तबाही होगी और हमारी राष्ट्रीय सत्यनिष्ठा के सामूहिक लक्ष्य पर, जो कि विश्व समाज में किसी भी राष्ट्र के नैतिक स्वास्थ्य और सफलता के लिए अनिवार्य है, विनाश के बादल सदा मंडराते रहेंगे। अगस्त 1999 में, तुर्की में आए एक भूकंप में हज़ारों कीमती जानें चली गई थीं। जिन घरों में यह लोग रहते थे, वे झटकों को सह नहीं सके और ताश के पत्तों की तरह ढह गए जिससे उनके निवासी मारे गए। ये तमाम घर भवन निर्माण के प्राधिकृत नियमों की, जिनके अन्तर्गत इन ढांचों को विशेष मज़बूती से बनाने के आदेश दिए गए थे, उपेक्षा करके बनाए गए थे। समाचार पत्रों में इस आशय की रिपोर्टें आयीं कि इन तमाम घरों को बनाने की अनुमति बेईमान ठेकेदारों ने संबंधित राजनीतिक एवं प्रशासनिक अधिकारियों को रिश्वत देकर बेईमानी से हासिल की थी। इस प्रकार, एक छोटे से क्षण में इतने अधिक लोगों का जो संहार हुआ, उसका कारण भूकंप नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार का दानव था, वह भी मूर्तिमान् रूप में, न कि किसी रूपक-दृष्टांत के तौर पर। कौन जाने, यह दानव अगला प्रहार कहां पर कर डाले?

इसलिए इस पुस्तक में निवेदन यह किया गया है कि देश की सरकार के प्रमुख, हमारे प्रधानमंत्री, भ्रष्टाचार के विरुद्ध स्वयं अपने नेतृत्व में जेहाद की घोषणा करें, इस उद्देश्य के साथ कि नये और साफ़-सुथरे प्रशासकीय उपायों की सहायता से पूरे देश में, सरकारी प्रशासन में, सत्यनिष्ठा और पारदर्शिता की पुनः स्थापना करनी है। यह भारत और उसके तमाम एक अरब लोगों की सब से महत्वपूर्ण, आवश्यक और आधारभूत आवश्यकता है। देश के प्रशासन, विशेषकर सर्वोच्च राजनीतिक तथा नौकरशाही के स्तरों पर से भ्रष्टाचार की सफाई हो जाने पर ही देश को सबसे अधिक प्रदूषित करने वाली समस्या - यहां की आधी आबादी की, पचास करोड़ लोगों की अथाह ग़रीबी, दुर्दशा और निरक्षरता - का प्रभावी निराकरण किया जा सकेगा। ग़रीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों के लिए धन उपलब्ध हो सकता है, यदि यह विश्वसनीय आश्वासन मिले कि इस राशि का उपयोग पूरी तरह और दक्षतापूर्वक जनहित के लिए किया जायेगा न कि भ्रष्ट राजनीतिक तथा प्रशासनिक अधिकारियों की जेबें भरने अथवा स्विस बैंकों के गुप्त खातों में जमा कराने के लिए। इतना ही नहीं, सत्यनिष्ठा के इस सार्वजनिक वातावरण में, समाज को दुर्बल

बनाने वाली बीमारियां भी धीरे-धीरे अपने आप दूर होने लगेंगी। यह भ्रष्टाचार, सचमुच भारत का सबसे बड़ा भीतरी शत्रु है जिसको तुरन्त चुनौती देना और परास्त करना सर्वोपरि महत्व का कार्य है। यही देश की दूसरी भयानक समस्याओं के समाधान की कुंजी है। जो लोग निराशा के साथ यह पूछते हैं : 'यह सब तो ठीक है, पर हम कर क्या सकते हैं?' उन्हें हम वह पुरानी, पर सच्ची, कहावत याद दिलाना चाहेंगे: 'जब जागे, तभी सवेरा'!

इस पुस्तक में, मंत्रियों तथा सरकारी अधिकारियों के लिए, दूसरे देशों में बनाए तथा अत्यंत सफलतापूर्वक लागू किए गये कई कानूनों और नियमों के कई दस्तावेज़ शामिल किए गये हैं। ये उपयोगी मॉडल हैं। और हम याद दिलाना चाहेंगे, मॉडलों में हमेशा सुधार लाया जा सकता है।

इन विस्तृत कानूनों और नियमों को बनाने और लागू करने में जो अत्यधिक सावधानी बरती गई है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें मानव-प्रकृति की विसंगतियों को किसी प्रकार का कोई अवसर न देने का दृढ़संकल्प है। जो लोग किसी भी सरकारी पद पर हैं, उनके लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने कर्तव्यों का पालन पूरी सत्यनिष्ठा से, देश के कानून के अनुसार और नैतिकता के सर्वमान्य नियमों के अनुकूल रह कर करें। यह सर्वानुमति जो उस देश के व्यवहार तथा कानून में मूर्तिमान् है, भ्रष्टाचार के व्यापार को अत्यंत कठिन और ख़तरनाक बना देती है। ऐसे ही नियमों की आवश्यकता भारत को है।

प्रस्तावित कार्य असंभव नहीं है, पर इसको संपन्न करने के लिए सर्वोच्च स्तर पर अत्यंत दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। भारतीय समाज युगों से एक परम्परानुयायी, श्रेणीबद्ध समाज रहा है, आज भी है। इसलिए इसमें नेताओं की भूमिका अत्यंत गंभीर एवं निर्णायक है। अब भी यदि वे मात्र उपदेश से नहीं, अपितु आचरण से भी, सही नेतृत्व प्रदान करने को कटिबद्ध हो जाएं तो वे जनसाधारण पर, साफ़ दिखाई पड़ने वाला प्रभाव डाल सकेंगे और भ्रष्टाचार से लड़ने में उनका सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। आज भी भारत के लाखों लोगों में धर्म की उस अवधारणा के प्रति गहरी आस्था है जो प्रत्येक परिस्थिति में सत्य आचरण पर बल देती है। यह भयकर भ्रष्टाचार जो भारत का गला घोंट रहा है, वह राजनीतिक और आर्थिक सत्ता के निरंकुश दुरुपयोग की उपज है जो हाल ही के दशकों में हुई है। यदि अब भी सरकार के वर्तमान नेता उस दुरुपयोग को रोकने तथा अपराधियों को दण्ड देने के लिए कठोर और नियामक कदम उठाएं तो भारतीय परिदृश्य में नाटकीय परिवर्तन लाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि निर्णयात्मक कदम उठाए जाएं।

सी.पी. श्रीवास्तव

आभारोक्ति

इस पुस्तक का लेखन उन कृपालु भारतीय और विदेशी मित्रों की उदार सहायता के बिना कदापि संभव नहीं था जिन्होंने अमूल्य दस्तावेज़ और बहुत सी उपयोगी पुस्तकों के साथ-साथ भ्रष्टाचार जैसे विषय के, जो कि सचमुच एक विश्वजनीन संकट है, विभिन्न पहलुओं पर अपना दृष्टिकोण तथा टिप्पणियां मुझे प्रदान की हैं। कई ऐसे महानुभावों के साथ व्यक्तिगत विचार विनिमय से भी मुझे अत्यधिक लाभ हुआ है जो भारत का राजकाज चलाने वाले अनेक महत्वपूर्ण पदों पर रहे हैं अथवा आज भी हैं। इस सब के लिए, तथा और कारणों से भी, मैं विशेष रूप से निम्नांकित लोगों का आभारी हूं :

भारत में - एन. विट्टल, आइएएस (अवकाश प्राप्त), केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त, भारत सरकार; योगेन्द्र नारायण, आइएएस, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार; अरविन्द वर्मा, आइएएस, भारत सरकार के सचिव और हरिन्दर सिंह, आइएएस, भारत सरकार के संयुक्त सचिव, कार्मिक, सार्वजनिक शिकायतें और पेंशन मंत्रालय; एस. गोपालन, आइएएस, महासचिव, लोकसभा; दिनेश राय, आइएएस, उत्तर प्रदेश सरकार के सचिव; सर्वेश चन्द्र, अध्यक्ष, फ़ेरा बोर्ड, विधि मंत्रालय, भारत सरकार; सुरेश कपूर, आयकर आयुक्त; विजय कुमार गौतम, ज़िला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर, पुणे; राजेश वी. शाह, भूतपूर्व प्रधान, भारतीय उद्योग परिसंघ; आर. वेंकटेशन्, प्रधान अर्थशास्त्री, नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (एनसीएईआर) और उनके सहयोगी - डॉ. लवीश भंडारी, वरिष्ठ अर्थशास्त्री, डॉ. मिहिर पाण्डेय, वरिष्ठ परामर्शदाता और सुश्री जी. रमानी; नवनीत तलवाड़; विजय नलगिरकर; वाइ.पी. सिंह; कुंवर सिंह रावत और अंशुमान् चन्द्र।

यूनाइटिड किंगडम (यू.के.) में - डॉ. डेविड माइकल स्पिरो, एमए (केम्ब्रिज), एम बी, एमआरसीजीपी; इआन एम. मेटलैंड ह्यूम, एमए (ऑनर्ज), इतिहासकार तथा नृजाति वैज्ञानिक; डॉ. ब्रायन वैल्ज़, एमए, एमबी, एफआरसी मनोविज्ञान; डेरेक ली, एमए (केम्ब्रिज), फ्रेंच और दर्शनशास्त्र के विश्वविद्यालय-अध्यापक; डेविड प्रोल; रसल ब्रिग्स; पास्कल स्किआलो; सुज़ेन वूफ; एलेक्स विन्टर; रॉबर्ट रुइग्राक; एलेन व्हेरी; भानु रेड्डी, सीमा बार्बा; मारिओ बार्बा और मैगी बर्न्स।

संयुक्त राज्य अमेरिका में - पॉल एस. इलिस, बीए (हारवर्ड), जेडी, रसल थोर्प, सहायक न्यायवादी; विनोद भटनागर; ऐन. कैपोज्ज़ोली; एलेना आइंस्टीन; ब्रायन ग्रीनवाल्ड और राघवेन्द्र राव।

आस्ट्रेलिया में - माइकेल फ़ोगार्टी, बी.आर्क, एम.आर्क, एफआरएआइए।

सिंगापुर में - दवे पी डन्फी, बीएड, वास्तुशिल्पियों की एक फर्म में प्रबंध निदेशक, डॉ. माधुरी डन्फी, बीडीएस और जेराल्ड लिम, सरकारी अधिकारी।

स्विट्ज़रलैंड में - ग्रेगायर डी. काल्बरमैटन, समन्वयक, नीति एवं विकास कार्यक्रम, मरुस्थलीकरण के प्रतिरोध के लिए संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन।

जर्मनी में - जोआना वॉन ब्रॉन, ट्रांसपेरेंसी इन्टरनेशनल।

फ्रांस में - एनेरी क्विनॉनेस और वेंडी प्रिंस-लागुए, वित्तीय, मौद्रिक एवं उद्यम मामलों का निदेशालय, आर्थिक सहयोग संगठन, पेरिस।

इन सब में से एक बार फिर, अपनी चिरकृतज्ञता, योगेन्द्र नारायण, अरविन्द वर्मा, दिनेश राय, हरिन्दर सिंह, राजेश वी. शाह, आर. वेंकटेशन्, डेविड एम स्पिरो, इआन एम. मेटलैंड ह्यूम, डेरेक ली, पाल इलिस, दवे और माधुरी डन्फी, माइकल फ़ोगार्टी और ग्रेगायर डी. काल्बरमैटन के प्रति व्यक्त करना चाहूंगा। इन्होंने अपने अमूल्य सुझाव दिए तथा अतिरिक्त दस्तावेज़ों के लिए मेरे एकाधिक निवेदनों का प्रत्युत्तर तुरंत देने का सदाशयता पूर्वक कई बार कष्ट उठाया।

मैं *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* के विश्वविख्यात कार्टूनिस्ट आर.के. लक्ष्मण का ऋणी हूं, जिन्होंने स्नेह और उदारतापूर्वक अपने तीन विलक्षण कार्टूनों का उपयोग इस पुस्तक में करने की अनुमति मुझे दी।

अपने अंतिम चरणों में यह पुस्तक काबेला लिग्युर, इटली में लिखी गई थी जहां मुझे संदीप गडकरी से बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई। मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

इस पुस्तक के मूल पाठ में बार-बार संशोधन करना पड़ा है। इस प्रक्रिया का पूरा भार पालाज़ो डोरिया, काबेला लिग्युर में जिस व्यक्ति ने अत्यंत धैर्यपूर्वक वहन किया, समर्पित भाव से एक-एक विवरण पर ध्यान दिया और इस पुस्तक को अंतिम रूप प्रदान करने के लिए घंटों परिश्रम किया, वे हैं ऐलिसन रोविना। उनके प्रति अपनी चिरकृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मेरे पास उपयुक्त और पर्याप्त शब्द नहीं हैं।

और अब अंत में अपने परिवार के प्रति। मेरी पत्नी निर्मला, इस पुस्तक की प्रेरणा का मुख्य स्रोत हैं। उनका विश्वास है कि साधनों की चिंता किए बिना स्वार्थसिद्धि का असंयत अनुसरण एवं उपभोक्तावादी और भौतिकतावादी प्रवृत्तियों की पराकाष्ठा आज के इस भ्रष्ट समाज के लिए उत्तरदायी हैं। इन बुराइयों को दूर करने का एकमात्र सुरक्षित उपाय मानवमात्र का आंतरिक परिवर्तन ही है जो कि केवल

व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव से ही संभव है। उन्होंने अपने इस विश्वास का प्रसार एक आन्दोलन - 'सहज योग' - के माध्यम से किया है। आज इसके सहस्त्रों अनुगामी हैं। वे भिन्न मतों के अनुयायी हैं, विभिन्न जातियों के हैं और विश्व के विभिन्न भागों में रहते हैं। वे आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य और अटल न्यायनिष्ठा के मार्ग पर चल रहे हैं। मेरे अनुसंधान कार्य में मेरी सहायता करने वाले अधिकतर लोग निर्मला के ही समर्पित अनुयायी हैं। निर्मला मेरे साथ इस बात पर तो सहमत हैं कि भ्रष्टाचार को दूर करने और उस पर नियंत्रण पाने के लिए इस पुस्तक में जो प्रशासनिक और कानूनी उपाय बताए गए हैं, वे सत्ताधारी स्त्री-पुरुषों को सन्मार्ग पर रखने के लिए सही दिशा-निर्देश हैं; पर उनका आग्रह है कि आध्यात्मिकता ही सच्चा और अंतिम उत्तर है। परंतु यह विषय इस पुस्तक की परिधि के बाहर है।

मेरी बड़ी बेटी कल्पना और उनके पति प्रभात, मेरी छोटी बेटी साधना और उनके पति रोमेल, मेरे नाती-नातिनें आराधना, सोनालिका, आनंद और अनुपमा तथा मेरे नाती दामाद गौतम और कुणाल; इन सबने भी कई प्रकार से मेरी सहायता की है। उन्होंने पुस्तक के मूल पाठ को पढ़ा है और इसके कई पहलुओं और सूक्ष्म अर्थभेद पर बहुमूल्य विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने अपना उत्साहपूर्ण समर्थन मुझे दिया है। ईश्वर उन्हें सुखी रखे।

यद्यपि मुझे कई लोगों की सहायता मिली है पर इस पुस्तक की अन्तर्वस्तु और सभी टिप्पणियों तथा सुझावों के लिए मैं पूर्ण उत्तरदायित्व स्वीकार करता हूं। मेरा एकमात्र उद्देश्य यह रहा है कि मैं वस्तुपरक सच्चाई के साथ उस ऐतिहासिक संदर्भ को स्पष्ट कर सकूं जिसके परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में भ्रष्टाचार पनपा है और उसको ध्यान में रखते हुए उसके सुधार के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत कर सकूं। सही अवधारणा और संकल्पपूर्ण कर्म द्वारा भारत को सही पथ की ओर मोड़ा जा सकता है, और उसे मोड़ना ही होगा।

सी.पी. श्रीवास्तव

अनुवादक का निवेदन

इस पुस्तक के अनुवाद में विभिन्न अंग्रेजी-हिन्दी कोशों के अतिरिक्त भारत सरकार के विधि, न्यास और कम्पनी मंत्रालय, विधायी विभाग, राजभाषा खंड द्वारा प्रकाशित 'विधि शब्दावली' की सहायता यत्र-तत्र ली गई है। एक ही शब्द के, प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थों को तात्त्विक दृष्टि से समझने तथा संदर्भ के अनुरूप सबसे उपयुक्त पर्याय का प्रयोग करने के उद्देश्य से कतिपय अंग्रेज़ी-अंग्रेज़ी, अंग्रेज़ी-संस्कृत, संस्कृत-अंग्रेज़ी तथा हिन्दी-लिप्यंतर-हिन्दी-अंग्रेज़ी कोशों का उपयोग भी किया गया है। इस बात का ध्यान रखा गया है कि तकनीकी, संवैधानिक एवं विधायी शब्दों का हिन्दी रूपान्तर करते समय उनके स्वीकृत पर्यायवाची शब्दों का ही प्रयोग किया जाए। ऐसे शब्दों के अनुवाद में, जहां 'विधि शब्दावली' में दिए गए पर्याय को प्रसंग के अनुकूल नहीं समझा गया, केवल वहीं किसी दूसरे शब्द का प्रयोग किया गया है, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि प्रयुक्त शब्द, अर्थ की दृष्टि से मूल अंग्रेज़ी शब्द के अभिप्रेत अर्थ के निकटतम और संदर्भ तथा वाक्य-विन्यास के अनुकूल हो। कुछ अंग्रेज़ी शब्दों जैसे 'कन्वेंशन', 'पार्टी', 'ट्रस्ट' तथा ऐसे ही कुछ अन्य शब्दों को, जो अब हिन्दी में भी प्रचुरता से प्रयुक्त होते हैं, वैसे ही रहने दिया गया है, हालांकि राजनीतिक-पार्टी के संदर्भ में पार्टी का अनुवाद 'दल' किया गया है। इस संबंध में, हमारा निवेदन है कि मूल पुस्तक में दिए गए संवैधानिक, विधायी अथवा विधि-संबंधी भागों एवं अनुच्छेदों का हिन्दी रूपान्तर, जो यहां प्रस्तुत है, वह पाठकों की बोधगम्यता अथवा बौद्धिक पिपासा की निवृत्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त होते हुए भी सरकारी अथवा कानूनी दृष्टि से प्राधिकृत नहीं है। अतएव इस रूपान्तर को पाठक किसी सरकारी, विधायी अथवा न्यायिक संदर्भ में अथवा किसी विवादास्पद विषय के समाधान के लिए, प्राधिकृत अनुवाद के रूप में उद्धृत न करें।

प्राणनाथ पंकज

विषय-सूची

भूमिका		15
1	स्वाधीनता के समय भारत का प्रशासन	33
2	जवाहर लाल नेहरु-नए भारतीय राज्य के संस्थापक पितृपुरुष	43
3	लाल बहादुर शास्त्री-एक सत्यनिष्ठ जीवन	63
4	इंदिरा गांधी और प्रशासन की समस्याएं	71
5	राजीव गांधी-एक शानदार प्रारंभ और एक त्रासद अन्त	78
6	राजीव गांधी के बाद के काल में भ्रष्टाचार में कैंसर जैसी वृद्धि	90
7	सत्यनिष्ठा और आदर्शों में तेज़ी से आती हुई व्यापक गिरावट	92
8	तो फिर क्या करे भारत?	110
9	राजनीतिक वर्ग में भ्रष्टाचार और सुधार का संभव उपाय	115
10	भारतीय प्रशासनिक सेवा-भारत का फौलादी ढांचा- भ्रष्टाचार और पतन तथा उसके पुनरुत्थान के संभव उपाय	132
11	एक ईमानदार राज्य व्यवस्था की ओर	180
12	नैतिकता पर आधारित समाज की ओर	218
13	व्यापार और उद्योग में नैतिकता की ओर	227
14	अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार के प्रतिरोध के उपाय	233
उपसंहार		256
परिशिष्ट		257
(समय-समय पर संशोधित), संयुक्त राज्य अमेरिका के 'सरकार में नैतिकता अधिनियम' वर्ष 1978 के उद्धरण		
चुने हुए ग्रन्थों की संदर्भिका		280

भूमिका

भ्रष्टाचार आज के भारत का सबसे बड़ा रोग है जिससे भारत की लगभग सारी जनता - एक अरब जनता - पीड़ित है। अपवादस्वरूप थोड़े से वे लोग हैं जो अत्यधिक धनवान् हैं और रिश्वत देकर अपना काम निकलवा लेते हैं, या वे जो देश का शासन चलाने वाले, सत्ता के पदों पर आसीन हैं तथा जिन का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सच तो यह है कि भ्रष्टाचार ने भारत में कैंसर का आयाम ग्रहण कर लिया है तथा चुपके-चुपके यह एक ऐसा सर्वभक्षी दानव बन गया है जिसे यूनानी चिंतन में उद्धृत भयंकर नाग 'हाइड्रा' के समकक्ष ठहराया जा सकता है, जिसके नौ सिर थे। इसका विशेष लक्षण यह था कि यदि इसका एक सिर काट दिया जाए तो इस पर तुरंत दो सिर उग आते थे। भ्रष्टाचार का प्रवाह उद्दाम वेग के साथ बह रहा है और इसने लोगों को स्वच्छ प्रशासन से वंचित तथा विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है। सार्वजनिक धन, जिसे अत्यंत निर्धन लोगों के कल्याण के लिए विनिहित किया जाता है, उसका बहुत बड़ा भाग निजी जेबों में पहुंच जाता है। स्थिति इस कदर बिगड़ चुकी है कि भारत की राजधानी दिल्ली से लेकर देश के सब से छोटे गांव तक, जब तक रिश्वत की निर्धारित रकम अदा नहीं कर दी जाती तब तक कोई सरकारी निर्णय हो नहीं पाता या किसी काम को मंज़ूरी प्राप्त नहीं होती। रिश्वत की राशि इस बात पर निर्भर रहती है कि संबंधित विषय का वित्तीय दृष्टि से कितना महत्व है तथा निर्णय करने वाला व्यक्ति किस स्तर और पदवी पर है। एक क्लर्क के लिये यह राशि कुछ सैंकड़ों रुपयों में हो सकती है, एक इंस्पेक्टर के लिए कुछ हजारों में, एक वरिष्ठ अधिकारी के लिए कुछ लाखों में तथा एक मंत्री के लिए उससे भी अधिक। रिश्वत देना और लेना अब आम तौर पर ज़िंदगी का दस्तूर और इस सुव्यवस्थित एवं सुपोषित घूंसतंत्र का अभिन्न अंग बन गया है। ग़रीब लोग जो रिश्वत नहीं दे सकते, रोते रहते हैं, कष्ट सहते हैं, पर अपना काम नहीं करवा पाते। जिनके पास साधन हैं, वे कंधे उचकाते हैं, रिश्वत देते हैं और अपना काम निकाल लेते हैं। भ्रष्टाचार ने वास्तव में एक राष्ट्रीय महामारी का रूप ले लिया है और अधिकांश नौकरशाही, पुलिस, न्यायपालिका और राजनीतिक सत्ता, सब, इसकी लपेट में हैं।

देश की राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था पर भ्रष्टाचार का आतंककारी प्रभाव भी उतना ही अशांतिकर है। राजनीति का भयानक अपराधीकरण हो गया है। राष्ट्रीय संसद और प्रदेशों की विधायिकाओं के लिए प्रत्याशियों का चयन राजनीतिक पार्टियों द्वारा उनके 'जीतने की योग्यता' के आधार पर किया जाता है। इसका अर्थ है धनबल, बाहुबल अथवा जातिबल। इनमें भी अधिमान उसे, जिसके पास यह तीनों हों। शिक्षा, चरित्र और सेवा के प्रमाणित रिकार्ड को इस चयन के समय शायद ही कहीं देखा जाता हो।

चुनाव के लिए प्रत्याशियों को भारी धनराशियाँ खर्च करनी पड़ती हैं। यद्यपि निर्वाचन आयोग ने भारत की संसद के निचले सदन - लोकसभा - के एक प्रत्याशी के लिए पंद्रह लाख रुपये (जोकि लगभग 37,500 अमरीकी डॉलरों अथवा 20,500 ब्रिटिश पाउंड के बराबर हैं) की उपरि सीमा तय की है, पर आमतौर पर माना जाता है कि वास्तविक खर्च इससे कहीं अधिक होता है। ऐसे स्थानों पर जहां मुकाबला अधिक कड़ा होता है, इस खर्च की राशि दो करोड़ रुपये (पांच लाख अमरीकी डॉलर या तीन लाख ब्रिटिश पाउंड) तक पहुंच सकती है। यह सारा पैसा कहां से आता है? स्पष्टतः उन लोगों से, जिन्हें यह अपेक्षा है कि वे किसी न किसी प्रकार से इसकी भरपाई कर लेंगे या किसी न किसी रूप में यह उन्हें मिल जायेगा। चुनावों में सफलता प्राप्त हो जाने पर जो मंत्री बन जाते हैं, वे अपने निर्णय करने के अधिकार का उपयोग, विशेषकर अधिक लाभदायक अनुबंधों के मामले में, उन लोगों को लाभ पहुंचाने के लिये करते हैं, जिन्होंने उनकी वित्तीय सहायता की हो, और निस्संदेह अपने लाभ के लिये भी। अन्य लोग सत्ता के दलाल बन जाते हैं। भारत के संसदीय प्रजातंत्र में भ्रष्टाचार की आधारशिला यही है।

और भारत का समाज? विदेशी आक्रमणों के बावजूद, भारतीय सामाजिक मूल्य, जिनकी नींव उपलब्ध मानव इतिहास के प्राचीनतम काल में ही रखी गयी थी, सदियों से उन चुनौतियों और दबावों का प्रतिरोध करते रहे हैं जो बदलते हुए राजनीतिक परिवेश में अन्तर्निहित होते हैं। इन्हीं मूल्यों के कारण भारत को विश्व-भर में ख्याति और सम्मान की उपलब्धि हुई थी। क्या थे ये अटल मूल्य? सारांश में इस प्रकार के चार मूल्य थे - प्रथम, सभी स्थितियों और सभी व्यक्तियों के संदर्भ में, सत्य और सत्पथ का निरंतर और आग्रहपूर्वक संधान; दूसरे, मर्यादाओं अर्थात् नैतिकता और शालीनता की स्वीकृत सीमाओं के भीतर रहने का संकल्प; तीसरे, कर्मयोग के सिद्धांत का अविरत अनुसरण, जिसका अर्थ है हर समय अपने कर्तव्य का पालन करना, बिना भय और पक्षपात के, बिना अपने परिश्रम के फल की चिंता किए; और चौथे, एक 'विश्वजनीन मानव परिवार' की अवधारणा पर विश्वास तथा

विश्व के सभी मतों तथा धर्मों के प्रति सच्चे सम्मान का भाव। ये नैतिकता के शाश्वत मूल्य हैं और यही सच्चे अर्थों में सभ्य जीवन की मूलभूत शर्तें हैं।

मेरा कहना यह नहीं है कि भारतीय समाज सदा एक आदर्श समाज रहा है। ऐसा कहना किसी भी दृष्टि से सही नहीं होगा। हमारी सामान्य आचार संहिता में त्रुटियां रही हैं: महिलाओं के, विशेषकर विधवाओं के साथ हमारा व्यवहार; ऊंची जाति वालों का नीची जाति वालों के साथ बर्ताव इत्यादि। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि लम्बे समय तक भारत पर विदेशी शासन के बावजूद भारतीय समाज में सामंजस्य बना रहा है और जाने-अनजाने सभी समुदायों के लोग जीवन मूल्यों की एक अलिखित संहिता के अनुसार जीवन यापन करते हुए सही साधनों के द्वारा सही साध्य तक पहुंचने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। हमारे घरों में होने वाले विचार-विमर्श में बुज़ुर्गों को प्रायः यह कहते सुना जाता था : 'यह बात ठीक नहीं है।' उनकी इस भर्त्सना पर साधारणतः तुरंत ध्यान दिया जाता था। परम्परागत बुद्धिमत्ता द्वारा संस्वीकृत मानदंडों से जानबूझकर हट कर चलने को अमान्य आचरण तथा पथभ्रष्टता समझा जाता था और जिनका आचरण एवं चरित्र उदाहरणीय होता था (और ऐसे लोग प्रायः सब गली-मुहल्लों में होते थे), उन्हें आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था।

यही कारण था कि महात्मा गांधी, जो हमारे सर्वमान्य प्राचीन मूल्यों में पूरी तरह ढले हुए थे, लोगों के हृदयों को जीत सके थे और अपनी नैतिक नेतृत्व शक्ति द्वारा उन्हें प्रेरणा प्रदान कर सके थे।

15 अगस्त, 1947 को जब, भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की, तब यही स्थिति थी। जब तक स्वतंत्रता आंदोलन के आत्मबलिदानी नेता हमारे बीच विद्यमान और राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय रहे, उनके उदाहरण और प्रभाव ने समाज को एकजुट रखा। पर जैसे-जैसे उस पीढ़ी के लोग कम होने लगे और उन आदर्शों की स्मृति, जिन्होंने हमारे स्वाधीनता आंदोलन को संप्रेरित किया था, धुंधली पड़ने लगी, सत्तासीन लोगों ने नए परिवेश में, साधनों की अधिक चिंता किये बिना, व्यक्तिगत लाभ की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। इस प्रकार, मूल्यों की मान्यता कम होने लगी। आरंभ में इस पतन की गति धीमी रही पर 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध से इसमें एक बाढ़-सी आ गई। पिछले तीस वर्षों में आया परिवर्तन तो हताशाजनक ही नहीं, भयकारी भी है। कुछ सम्माननीय अपवादों को छोड़कर, प्रत्येक व्यक्ति आज लज्जा-भय त्याग कर स्वार्थ-सिद्धि की दौड़ में है, साधन खरे हों चाहे खोटे। मध्यम वर्ग जो हमारे प्राचीन सामाजिक मूल्यों का सुदृढ़ गढ़ रहा है, आज किंकर्तव्यविमूढ़ता के भंवर में फंसा है। इस वर्ग द्वारा प्रदान किया जाने वाला नैतिक आधार आज कमज़ोर पड़ता जा रहा है। इस कारण भारत के नैतिक

स्वास्थ्य के साथ-साथ इसके आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक भविष्य पर भी अनिष्ट की काली छाया घिरने लगी है।

घरेलू आवश्यकताओं की सामग्री की बढ़ती कीमतें, मकानों, बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा-साधन, परिवहन और मनोरंजन की आकाश को छूती दरें लोगों को किसी भी साधन से, किसी भी तरह, अधिक से अधिक पैसा कमाने के लिए उकसा रही हैं। किसी संकोच, किसी संयम, किसी झिझक, किसी शालीनता, किसी सत्यपरायणता के लिए न समय है न स्थान। पारिवारिक बंधन शिथिल हो रहे हैं और संबंधों पर दबाव है। अब बच्चों के लिए बड़े अनुकरणीय-चरित्र के आदर्श प्रस्तुत नहीं करते। पारिवारिक शिक्षा-दीक्षा की गुणवत्ता तथा पारिवारिक अनुशासन के स्तर में गिरावट आती जा रही है। हमें बार-बार सुनने को मिलता है कि अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में न कोई मित्र स्थायी है, न कोई शत्रु, स्थायी तो केवल हित ही हैं। निस्संदेह परम्परागत दृष्टि यह रही है कि स्थायी, स्वार्थरहित मैत्री प्रसन्न एवं सुंदर जीवन एवं सुरक्षित संबंधों की आत्मा है। आज यह सच नहीं है। क्योंकि अपवादों को छोड़कर, स्थायी और स्वार्थ-रहित मैत्री कहीं रही नहीं, स्वार्थ ही एकमात्र प्रेरकशक्ति है। एक स्वीकृत मूल्य के रूप में विश्वासपात्रता तेज़ी से त्याज्य होती जा रही है। बहुत कम ऐसे लोग बचे हैं जो व्यक्तिगत आचरण के नियमों का पालन करते हों। यदि आप किसी पंक्ति में खड़े हैं तो इस बात की पूरी संभावना है कि कोई अधिक बलिष्ठ व्यक्ति आपको धक्का देकर बाहर कर दे। सम्पन्न एवं अच्छी वेशभूषा वाले व्यक्ति मोटरकार चलाते समय लाल बत्ती के रहते सड़क पार करने में कोई बुराई नहीं समझते, भले ही इसमें लोगों को ख़तरा हो, शर्त सिर्फ़ यह है कि वे ऐसा करते हुए पकड़े न जाएं। ये सब और ऐसी ही और कई बातें भारत की राजधानी, नई दिल्ली, में प्रतिदिन होती रहती हैं।

विधि-सम्मत शासन एक सुव्यवस्थित प्रजातंत्र की पहली शर्त है। कानून सभी नागरिकों के वैध अधिकारों की रक्षा करते हैं और परम्परागत मान्यता यही है कि 99.9 प्रतिशत लोग स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक सभी कानूनों का पालन करेंगे। शेष 0.1 प्रतिशत के साथ, कानून तोड़े जाने पर, पुलिस निपट लेगी, ऐसा विश्वास है। परंतु भारत में, राजनीति के चंद बड़े लोगों ने इस विश्वास के साथ आचरण करना प्रारंभ कर दिया है कि वे कानून से ऊपर हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि यह विश्वास अब निचले स्तरों में भी फैल गया है। कानून का अनादर चिंताजनक रूप से बढ़ रहा है। 'बाहुबलियों' और ठगों की संख्या बढ़ रही है। देश के कुछ भागों में ऐसे शस्त्रधारी गिरोह हैं जो समय-समय पर जातिगत युद्धों में भाग लेते हैं। पुलिस कानून तोड़ने वालों का सामना करने का भरसक प्रयत्न करती है पर यह उतनी प्रभावशाली नहीं है जितना उसे होना चाहिए। कानून को लागू करने की भारतीय

प्रणाली के केन्द्र में यह जो दुर्बलता है उसका एक सीधा और स्पष्ट कारण है। पुलिस एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करती है, पर उस का वेतन कम है, उसके पास साधन कम हैं और पैसे के प्रलोभन के सामने वह आसानी से कमज़ोर पड़ जाती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था पिछले कई वर्षों से भुक्खड़ राजनीतिज्ञों, लालची व्यापारियों और भ्रष्ट पदाधिकारियों के खेलने का मैदान बनी हुई है। आज की परिस्थितियों में भी उदारीकरण के बावजूद, निजी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियां, नियमों के मकड़जाल में फंसी हुई हैं और सरकारी अफ़सरों तथा मंत्रियों को बेहिसाब अधिकार प्राप्त हैं। और जब सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को, व्यावहारिक रूप से सरकारी विभाग ही मान लिया जाए और उन पर सरकारी सचिवालयों का नियंत्रण और निर्देशन कायम हो जाए, तो भ्रष्टाचार के अवसर तो अंतहीन होंगे ही। घोटालों और निन्दनीय कुचक्रों की लंबी होती सूची से साफ़ दिखाई देता है कि इन अवसरों को दोनों हाथों से समेटा जा रहा है। भारत को सच ही 'पिंजरे में बंद शेर' कहा गया है। और यह पिंजरा अभेद्य प्रशासकीय अक्षमता, एक अत्यंत दुर्बल ढांचे और निजी लाभ की लगभग अबुझ तृषाग्नि से बना हुआ है।

स्वाधीनता के बाद के, पिछले 53 वर्षों में भारत एक प्रमुख आर्थिक शक्ति बन कर उभरा है, पर अक्षमता, दुर्बल ढांचे और भ्रष्टाचार की रुकावटों के कारण उतनी प्रगति नहीं हो सकी, जितनी संभव थी। आइए देखें कि इतने ही या इससे भी कम समय में एशिया के अन्य विकासशील देशों की उपलब्धियां क्या रही हैं।

तुलनात्मक विकास का एक मापदंड, प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) है, जो कि कुछ एशियाई देशों में निम्नानुसार है[1] :

देश	*जीडीपी (अमेरिकी डॉलरों में)*
चीन	610
भारत	344
इंडोनेशिया	963
मलेशिया	3,889
पाकिस्तान	440
फिलिपाइन्स	1,059
सिंगापुर	23,995
दक्षिण कोरिया	9,689
थाइलैंड	2,741

कोई भी इस बात की अनदेखी नहीं कर सकता कि अपरिमित संभावनाओं के होते हुए भी भारत उक्त सूची में निम्नतम स्थान पर है।

प्रौढ़ साक्षरता की स्थिति क्या है? निम्नांकित आंकड़े इस दिशा में भी भारत की अवांछनीय स्थिति को प्रदर्शित करते हैं[2]:

देश	*प्रौढ़ साक्षरता (प्रतिशत)*
बांग्लादेश	37.00
चीन	80.00
भारत	50.60
इंडोनेशिया	82.90
मलेशिया	80.00
पाकिस्तान	36.40
फिलिपाइन्स	94.20
सिंगापुर	92.00

बुनियादी ढांचे के मामले में भी भारत की स्थिति इससे कम हताशाजनक नहीं है। सड़कें, जहां हैं भी, आमतौर पर बुरी हालत में हैं। सड़कों के रख-रखाव और निर्माण के लिए जो धन विनिहित किया जाता है, उसका काफी हिस्सा लोक निर्माण विभागों के अधिकारी खुर्द-बुर्द कर लेते हैं और लूट को राजनीतिक आक़ाओं के साथ बांट लिया जाता है। भारत के बंदरगाहों की हालत में बराबर काफ़ी सुधार हुआ है पर आज भी उनकी तुलना कोलम्बो या सिंगापुर के बंदरगाहों के साथ नहीं की जा सकती। भारत की जहाज़ी गोदियों की गिनती विश्व की सर्वाधिक अकुशल गोदियों में होती है। जहाज़ों की मरम्मत की सुविधाएं अत्यंत पुराने किस्म की हैं। परिणामस्वरूप कई भारतीय जहाज़ निर्जलगोदी और बड़ी मरम्मतों के लिए कोलम्बो, सिंगापुर या चीन जाते हैं। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों की योजना बनाने और उनका निर्माण करने में वैसी दूरदर्शिता, भविष्यदृष्टि और कार्यकुशलता नहीं बरती गई जिससे वे तेज़ी से फैलते हुए यात्री-यातायात की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को कुशलतापूर्वक पूरा कर सकें। एक नया हवाई अड्डा काम करना शुरू करे, इस से पहले ही अनद्यतन हो चुका होता है। हमारे हवाई अड्डों पर उतरते ही किसी व्यापारी, पर्यटक या विदेशी अधिकारी के मन में भारत की जो पहली तस्वीर बनती है वह एक ढुल-मुल, खुशफ़हम अक्षमता की ही होती है।

ऊर्जा उत्पादन आवश्यकता को देखते हुए शोचनीय रूप से कम है। किसी देश के विकास के स्तर का एक और द्योतक प्रति व्यक्ति ऊर्जा का उपयोग है।[3] कुछ एशियाई देशों के तुलनात्मक प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपयोग के लिए पृष्ठ 7 देखें।

इस प्रकार भारत का पूरा चित्र एक ऐसे विशाल देश का है जिसके पास विशाल साधन हैं और एक अरब की जनसंख्या है; जो अपनी सारी जनता का जीवन स्तर बेहतर बनाने के लिए आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है, पर भ्रष्टाचार की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है।

देश	*प्रति व्यक्ति ऊर्जा का उपयोग (किलोग्राम कोयले के बराबर)*
बांग्लादेश	93
चीन	920
भारत	374
इंडोनेशिया	465
मलेशिया	2,291
पाकिस्तान	332
फिलिपाइन्स	426
सिंगापुर	9,674
दक्षिण कोरिया	3,772
थाइलैंड	1,073

15 अगस्त, 1997 को भारत ने स्वाधीनता के पचास वर्ष पूरे किए। स्वाभाविक तो यह था कि यह प्रसन्नता का एक महोत्सव होता, एक ऐसा अवसर जब यहां के एक अरब निवासियों को एक संतोषजनक जीवन स्तर प्रदान करने के उद्देश्य को लेकर, नए सिरे से, तेज़ गति के साथ भौतिक विकास करने के प्रति वचनबद्ध होने का संकल्प किया जाता। वास्तव में, सराहना के योग्य है भी बहुत कुछ। 60 करोड़ 50 लाख मतदाताओं के साथ भारत विश्व का सब से बड़ा प्रजातंत्र है। वयस्क मताधिकार और गुप्त मतदान प्रणाली पर आधारित 13 आम चुनाव यहां सम्पन्न हो चुके हैं। भारत एक विशाल औद्योगिक आधार को विकसित कर चुका है और देश में उपभोक्ता-सामग्री का एक फलता फूलता क्षेत्र है। न्यायपालिका स्वतंत्र और जागरूक है और यही स्थिति प्रेस की भी है।

पर इसके विपरीत, 15 अगस्त, 1997 को भारत का मन उदास और चिंताग्रस्त था। सारी उपलब्धियों के ऊपर, राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त, भ्रष्टाचार की काली छाया थी। इसके साथ था लगभग असहाय होने का भाव। इस स्थिति के विषय में सोचते हुए, और स्वयं अपने हृदय में व्यथा लिए हुए, भारत की स्वाधीनता की स्वर्ण जयंती के अवसर पर राष्ट्र के नाम अपने संदेश में गणतंत्र के राष्ट्रपति, के.आर. नारायणन् ने अपने भाषण में अन्य बातों के साथ-साथ, यह विचार व्यक्त किए थे:

> जहां मैं भारत के सभी लोगों से अपील करता हूं कि वे हमारी स्वाधीनता के इस पचासवें वर्ष में वैसी ही एकता और विश्वास बनाए रखें, वहीं मुझे उस दुखद अधःपतन का भी ज्ञान है जो समाज में पिछले कुछ समय में हुआ है। हमारी सभ्यता के आधारभूत सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की पकड़ हमारे समाज और राजनीति पर शिथिल होती दिखाई देती है। उन सिद्धांतों और

आदर्शों पर, जो हमारे सामाजिक और राजनीतिक जीवन का प्रमाण-चिह्न थे, कोरी अवसरवादिता और सत्ता की मूल्य विहीन राजनीति हावी हो गई है। लोगों, समुदायों और पार्टियों के रिश्तों के बीच हिंसा बढ़ गई है। महिलाओं और अनुसूचित जातियों जैसे कमज़ोर वर्गों के साथ दुर्व्यवहार, जिसमें नृशंसता भी शामिल है, बढ़ रहा है और इससे विश्व में भारत के उज्ज्वल नाम को कलंक लग रहा है। और भ्रष्टाचार हमारी राजनीति और समाज के मर्मस्थलों को घुन बन कर चाट रहा है।

भ्रष्टाचार के बढ़ते हुए प्रभाव के संबंध में महात्मा गांधी ने एक भविष्यद्रष्टा की भांति यह विचार व्यक्त किए थे :

भ्रष्टाचार एक दिन सामने आएगा ही, चाहे उसे छिपाने का कोई कितना ही प्रयत्न क्यों न करे; और जनता का यह अधिकार और कर्तव्य है, और वह ऐसा कर सकती है, कि कोई भी तर्कसंगत संदेह का मामला होने पर वह अपने सेवकों से जैसे चाहे सफ़ाई मांगे, उन्हें बर्खास्त करे, उन पर कचहरी में मुकदमा चलाए या उनके आचरण की छान-बीन के लिए किसी पंच या इंस्पेक्टर को नियुक्त करे।

ऐसा लगता है कि जनता को, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातिवाद और देश की राजनीति और जीवन के अपराधीकरण के साथ लड़ने के लिए आगे आना ही होगा। इस व्यवस्था को साफ़ सुथरा बनाने के लिए एक सामाजिक आन्दोलन अथवा एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन अत्यावश्यक हो गया है। इस प्रकार का सामाजिक आन्दोलन नकारात्मक नहीं, सकारात्मक होना चाहिए। उदाहरणार्थ, निरक्षरता हमारे देश के लिए कलंक और हमारी उन्नति के मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट बन गई है। क्या हम साक्षरता के लिए एक ऐसा जन आन्दोलन नहीं चला सकते जिसमें जनता, छात्र, शिक्षित बेरोज़गार, अध्यापक, सरकारी मुलाज़िम और निजी उद्यम शामिल हों? इसी प्रकार, ग़रीबी, जनसंख्या की वृद्धि और वातावरण-प्रदूषण के साथ लड़ने के लिए भी सामाजिक आन्दोलनों की आवश्यकता है। मैं इस सब में सरकार और जनता की भागीदारी का आह्वान करता हूं।

15 अगस्त, 1997 को, लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हुए भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री आइ.के. गुजराल ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। भ्रष्टाचार का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था :

अब अत्यंत दुःख और गंभीरता के साथ आपका ध्यान इस देश के उस रोग की ओर आकर्षित करना चाहूंगा जिसका नाम भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार हमारी जड़ों को खोखला कर रहा है। देश को उन लोगों से बहुत बड़ा ख़तरा है जो

ऊंचे पदों पर बैठे हैं और रिश्वत लेकर राष्ट्र के साथ विश्वासघात करते हैं। यदि देश के शत्रु हम पर बाहर से आक्रमण करें तो हमारी बहादुर सेना उनका सामना करने में समर्थ है और अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी वह अपने प्राणों को दांव पर लगा देती है। पर यदि कोई रिश्वत लेकर देश के भीतर ही ग़द्दार बन जाए और राष्ट्र के साथ विश्वासघात करे तो वह देश के लिए भयंकर ख़तरा पैदा करता है। भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि मामला चाहे सरकारी खरीदारी का हो, करों की अदायगी का हो, सीमा शुल्कों के भुगतान का हो, कुछ लोग यह समझते हैं कि भ्रष्टाचार उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं आपसे प्रण करता हूं कि कानून के लम्बे हाथों को और अधिक मज़बूत बनाया जाएगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जो कोई भी रिश्वत स्वीकार करे, वह कानून के शिकंजे से बच न सके। मैं इसे अपना प्रथम और प्रमुख कर्तव्य मानता हूं, और राष्ट्र के प्रति वचनबद्ध हूं कि किसी अभियुक्त को, चाहे वह राजनीति से संबंधित हो, चाहे सरकार से, ऐसा अपराध करने पर क्षमा नहीं किया जाएगा।

यह और भी बड़ा दुर्भाग्य है कि रिश्वत के क्षुद्र व्यवहार से सामान्य लोगों को अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। छोटे से छोटे काम के लिए भी किसी न किसी को रिश्वत देनी पड़ती है, वह पुलिस स्टेशन हो या गांव का पटवारी, नगरपालिका हो या बिजलीघर, टेलिफ़ोन विभाग हो या राजस्व विभाग। भ्रष्टाचार का पाप सर्वत्र विद्यमान है। जनसाधारण, विशेषकर निम्न और मध्यमवर्ग के लोग तो स्वयं को सर्वथा असहाय समझते हैं। मैंने कई अवसरों पर उनके चेहरों पर असहायता के इन भावों को स्पष्ट लिखा पाया है।

भ्रष्टाचारियों और राजनीति के अन्तर्बंधन ने आज, जबकि अपराधी राजनीति में प्रवेश करने लगे हैं, और अधिक उग्र रूप धारण कर लिया है। जब मैं इन काले बादलों को सिर पर मंडराते देखता हूं तो भ्रष्टाचार की इस चुनौती को नष्ट करने का मेरा संकल्प और भी दृढ़ हो जाता है। सरकार अकेले इस कार्य को नहीं कर सकती। जब कैंसर अधिक दुर्दम्य हो जाए, तो हम सब को इस ओर ध्यान देना होगा।

यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं है कि भारत की स्वाधीनता की स्वर्ण जयंती के पवित्र अवसर पर देश के दो सर्वोच्च पदस्थ महानुभावों ने जिस मूल भाव को लेकर विचार प्रकट किए वह राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, भ्रष्टाचार के कारण हुए अधःपतन से संबंधित थे।

प्रेस का निर्णय भी कुछ कम स्पष्ट नहीं था। एच.के. दुआ ने, जो कि देश के वरिष्ठ, विख्यात और समादृत समाचारपत्र-संपादकों में गिने जाते हैं, *द हिन्दुस्तान*

टाइम्स के 15 अगस्त, 1997 के अंक के मुखपृष्ठ पर निम्नांकित सम्पादकीय लिखा था :

दूरस्थ नियति

एच.के. दुआ

पचास वर्ष पूर्व और एक लम्बे संघर्ष के बाद, हमारे इस राष्ट्र ने स्वाधीनता में कदम रखे और आशा एवं भविष्य के प्रति थोड़ी उत्सुकता के साथ आगे देखना प्रारंभ किया। स्वतंत्रता हमें विभाजन की पीड़ा तथा बहुत से रक्तपात, अश्रुओं और कष्टों के बिना नहीं मिली थी। फिर भी जिन्होंने स्वतंत्रता के आगमन को देखा था, उन्हें स्वयं पर तथा एक नए भारत के निर्माण के लिए अपनी योग्यता पर विश्वास था।

जवाहर लाल नेहरू ने नियति के साथ वायदे की बात कही और फ़ौरन एक ऐसे प्रजातांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और संगठित भारत के लक्ष्य की प्राप्ति में जुट गए जो विश्व में एक महान् राष्ट्र के अनुरूप अपनी भूमिका निभा सकता। महात्मा गांधी ने नियति के इस विचार को और अधिक सुस्पष्ट बनाते हुए एक ऐसे राष्ट्र के निर्माण की बात की जो इस देश के सबसे निर्धन, सबसे अकेले और सबसे असहाय व्यक्ति की आंखों से आंसू पोंछ सके।

स्वतंत्र भारत कैसा होगा, इसके राष्ट्रीय उद्देश्य क्या होंगे, इन पर तथा साध्य और साधनों के प्रश्न को लेकर, जिस पर गांधी जी सब से अधिक ज़ोर देते थे, उन दोनों के दृष्टिकोण अलग-अलग थे। वैचारिक अथवा अन्य प्रश्नों पर उनके दृष्टिकोण जो भी रहे हों, गांधी और नेहरू एक ऐसे भारत के लिए काम करना चाहते थे जिसमें भोजन के अभाव में किसी की मृत्यु न हो, जहां प्रत्येक व्यक्ति के लिए रहने का स्थान हो और पहनने के लिए थोड़े से कपड़े उपलब्ध हों; जहां हर बच्चा स्कूल जाता हो और एक उज्ज्वल भविष्य के लिए व्यावहारिक तथा वैचारिक शिक्षा ग्रहण करता हो।

गांधी, नेहरू और पटेल तथा अन्य बहुत से नेताओं का, जो विभिन्न विचारधाराओं से आए थे, और उनके लाखों साथियों का, जिन्होंने स्वाधीनता के संघर्ष में उनके साथ मिल कर कष्ट सहे थे, एक सांझा स्वप्न था : एक नए भारत, और कुछ मूल्यों पर आधारित एक नए समाज के निर्माण का स्वप्न। हवा में आदर्शवाद की महक थी; एक उद्देश्य था, और दिशाबोध था। इन्हीं के चलते ये नेता और उनके अनुयायी स्वतंत्रता की प्रसवपीड़ा को झेल सकने में समर्थ हो सके थे।

वर्षों बीतने के साथ यह स्वप्न एक दुःस्वप्न में बदल गया है; आदर्शवाद का स्थान निराशावाद ने ले लिया है; और सत्ता को मुट्ठी में समेट लेने की वृत्ति ने राजनीतिज्ञों को अन्धा बना दिया है। वे सार्वजनिक जीवन में मूल्यों और शालीनता

की अनदेखी करने के साथ-साथ लालच और बेलगाम महत्वाकांक्षा के दास होकर रह गए हैं। जहां हमारे राजनीतिज्ञों को जनता की सेवा का मार्ग अपनाना चाहिए था, उन्होंने ऐसे परजीवियों की वृत्ति अपना ली है, जो दूसरों की कीमत पर जीते हुए फलते-फूलते हैं। स्वयं को सत्ता में बनाए रखने के लिए उन्होंने अपराधियों और ठगों से हाथ मिला लिए हैं और उनके लिए राजनीतिक दलों, राज्य विधायिकाओं और कुछ मामलों में तो संसद तक के द्वार भी खोल दिये हैं। इन सम्माननीय संस्थाओं में केवल वाद-विवाद का स्तर ही नहीं गिरा है बल्कि एक ऐसी कार्यपालिका द्वारा किए गए अतिक्रमण से, जो कि सार्वजनिक जवाबदेही में विश्वास नहीं रखती, जनता के अधिकारों को सुरक्षित रख पाने में उनकी विश्वसनीयता तथा क्षमता को भी ठेस पहुंची है।

केवल कुछ अवसरों पर ही हमारे नेताओं के अन्तःकरण में इस बात की चुभन होती है कि 50 लम्बे वर्षों के बाद भी, हमारे यहां निरक्षरों की संख्या संसार में सब से अधिक है, कि आज भी बड़ी संख्या में लोग पर्याप्त पोषण अथवा चिकित्सा-सुविधा के अभाव में धीमी मौत मर रहे हैं; कितने ही लोगों को पीने के लिए स्वच्छ पानी, यहां तक कि शौचालयों की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है। संगठित भारत की बात करेंगे? गांव-गांव में राष्ट्र बंटा हुआ है और जन्म का हादसा बच्चे के बाकी जीवन का निर्णय करता है। परिणामों से लापरवाह हमारे राजनीतिज्ञ, चंद और वोट हासिल करने के लिए जातिवाद की मस्ती में मौज मना रहे हैं। धार्मिक वैमनस्यों का विरोध करने के स्थान पर उन्होंने वोट बैंकों की राजनीति को अपना लिया है।

स्वतंत्र भारत सत्ता और धन-लिप्सा की नंगी दौड़ में व्यस्त ऐसे लोगों को देख रहा है जिनके पास रुक कर बैठने और यह सोचने का समय नहीं है कि वे अपने देश के साथ क्या कर रहे हैं। निकट-दृष्टि (मायोपिया) की बीमारी से ग्रस्त होने के कारण, उनको यह अहसास भी नहीं है कि जिस राष्ट्र का नेतृत्व करने का वे दम भरते हैं उसके भाग्य में आज के पांच दिन बाद क्या बदा है। 50वीं वर्षगांठ के उत्सव मनोबल को थोड़ा ऊंचा करने और बच्चों को एक ऐतिहासिक दृष्टि देने के लिए तो ठीक हैं, परंतु प्रौढ़ों की दो पीढ़ियों के लिए, अतीत में पलायन का यह अवसर, फैली हुई सड़ांध को दूर करने की अपनी ज़िम्मेदारी से भागने का बहाना नहीं बनना चाहिये। वह समय आ गया है जब कि वे लोग, जो किनारे पर खड़े होकर बढ़ती हुई पतनशीलता को देखते रहे हैं, उन उपायों को सोचें जिनसे अगले कुछ वर्षों में देश को दिशा प्राप्त हो, कुछ उद्देश्य मिल सकें। जो लोग समस्याओं के कारण हैं उन्हीं को समस्या के समाधान के लिए कुछ कहना निरर्थक है।

1996 में, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, भ्रष्टाचार के फैलाव के संबंध में 54 देशों का

एक अध्ययन 'ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल' और जर्मनी के 'गोटिंगन विश्वविद्यालय' द्वारा किया गया था जिसके अनुसार भारत संसार का नवां भ्रष्टतम देश है। तालिका-1 में इन तमाम देशों की सूची उनकी सत्यनिष्ठा के अनुसार प्रस्तुत की गई है। तालिका में सब से ऊपर, दस के अंक द्वारा भ्रष्टाचार से पूर्णतया मुक्त देश को दिखाया गया है। जैसा कि इस तालिका से पता चलता है, किसी भी देश को दस अंक नहीं मिले। सबसे नीचे, शून्य का अंक पूरी तरह बेईमान देश को दर्शाता है। सौभाग्य से, यह अंक भी किसी को नहीं मिला। सारे के सारे 54 देशों को, कहीं न कहीं, बीच में ही अंकित किया गया है। न्यूज़ीलैंड, 9.43 अंक प्राप्त करके सबसे ईमानदार देश सिद्ध हुआ है और केवल 0.69 अंकों के साथ नाइजीरिया सब से भ्रष्ट देश के रूप में सामने आया है। यह सूची लम्बी है पर, समस्या की गंभीरता और उसके महत्व को देखते हुए इसे पूरी की पूरी, नीचे प्रस्तुत किया गया है :

तालिका 1: ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल भ्रष्टाचार निवारण निर्देशिका 1996

क्रम (1)	*देश* (2)	*अंक* (3)
1.	न्यूज़ीलैंड	9.43
2.	डेन्मार्क	9.33
3.	स्वीडन	9.08
4.	फ़िनलैंड	9.05
5.	कनाडा	8.96
6.	नॉर्वे	8.87
7.	सिंगापुर	8.80
8.	स्विट्ज़रलैंड	8.76
9.	नैदरलैंड्स	8.71
10.	ऑस्ट्रेलिया	8.60
11.	आयरलैंड	8.45
12.	युनाइटिड किंगडम	8.44
13.	जर्मनी	8.27
14.	इज़रायल	7.71
15.	संयुक्त राज्य अमेरिका	7.66
16.	ऑस्ट्रिया	7.59
17.	जापान	7.05
18.	हाँग काँग	7.01
19.	फ्रांस	6.96
20.	बेल्जियम	6.84
21.	चिली	6.80

(जारी ...)

(1)	(2)	(3)
22.	पुर्तगाल	6.53
23.	दक्षिण अफ्रीका	5.68
24.	पोलैंड	5.57
25.	चेक गणराज्य	5.37
26.	मलेशिया	5.32
27.	दक्षिण कोरिया	5.02
28.	यूनान	5.01
29.	ताइवान	4.98
30.	जॉर्डन	4.89
31.	हंगरी	4.86
32.	स्पेन	4.31
33.	टर्की	3.54
34.	इटली	3.42
35.	अर्जेन्टाइन	3.41
36.	बोलीविया	3.40
37.	थाइलैंड	3.33
38.	मैक्सिको	3.30
39.	इक्वेडोर	3.19
40.	ब्राज़ील	2.96
41.	मिस्र	2.84
42.	कोलंबिया	2.73
43.	युगांडा	2.71
44.	फ़िलिपाइंस	2.69
45.	इंडोनेशिया	2.65
46.	भारत	2.63
47.	रूस	2.58
48.	वेनेज़ुएला	2.50
49.	कैमरून	2.46
50.	चीन	2.43
51.	बंग्लादेश	2.29
52.	केन्या	2.21
53.	पाकिस्तान	1.00
54.	नाइजिरिया	0.69

1999 में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने, 5 महाद्वीपों में फैले 99 देशों का सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण के आधार पर उन्होंने '1999-ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल भ्रष्टाचार अवगम निर्देशिका' प्रकाशित की थी। उसे तालिका-2 में प्रस्तुत किया गया है। इस तालिका में सबसे ऊपर डेनमार्क है, जिसने 10 में से 10 अंक लेकर

विश्व का सबसे ईमानदार देश होने का गौरव प्राप्त किया है। तालिका में सबसे निचला स्थान कैमरून को हासिल हुआ है। इसे दस में से केवल 1.5 अंक मिले हैं और इस प्रकार यह विश्व का सबसे भ्रष्ट देश आंका गया है। भारत 10 में से केवल 2.9 अंक लेकर तालिका के निचले अर्द्धांश में 73वें दयनीय स्थान पर है। इस प्रकार इसे समस्त विकसित देशों और अफ्रीका, एशिया और लातीनी अमेरीका के बहुत से विकासशील देशों से भी अधिक भ्रष्ट देश के रूप में देखा गया है।

तालिका 2: ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल 1999 भ्रष्टाचार अवगम सूचिका

क्रम	*देश*	1998 *भ्रष्टाचार अवगम सूचिका (सीपीआइ) में प्राप्त अंक*
(1)	(2)	(3)
1.	डेनमार्क	10.0
2.	फिनलैंड	9.8
3.	न्यूज़ीलैंड	9.4
4.	स्वीडन	9.4
5.	कनाडा	9.2
6.	आइसलैंड	9.2
7.	सिंगापुर	9.1
8.	नैदरलैंड्स	9.0
9.	नार्वे	8.9
10.	स्विट्ज़रलैंड	8.9
11.	लक्सम्बर्ग	8.8
12.	ऑस्ट्रेलिया	8.7
13.	युनाइटिड किंगडम	8.6
14.	जर्मनी	8.0
15.	हॉंग कॉंग	7.7
16.	आयरलैंड	7.7
17.	ऑस्ट्रिया	7.6
18.	संयुक्त राज्य	7.5
19.	चिली	6.9
20.	इज़रायल	6.8
21.	पुर्तगाल	6.7
22.	फ्रांस	6.6
23.	स्पेन	6.6
24.	बोट्सवाना	6.1
25.	जापान	6.0
26.	स्लोवेनिया	6.0

(जारी ...)

(1)	(2)	(3)
27.	एस्टोनिया	5.7
28.	ताइवान	5.6
29.	बेल्जियम	5.3
30.	नामिबिया	5.3
31.	हंगरी	5.2
32.	कोस्टा रिका	5.1
33.	मलेशिया	5.1
34.	दक्षिण अफ्रीका	5.0
35.	ट्यूनिसिआ	5.0
36.	यूनान	4.9
37.	मॉरिशियस	4.9
38.	इटली	4.7
39.	चेक गणराज्य	4.6
40.	पेरु	4.5
41.	जॉर्डन	4.4
42.	उरुग्वै	4.4
43.	मंगोलिया	4.3
44.	पोलैंड	4.2
45.	ब्राज़ील	4.1
46.	मलावी	4.1
47.	मोरक्को	4.1
48.	ज़िम्बाबवे	4.1
49.	एल साल्वाडोर	3.9
50.	जमैका	3.8
51.	लिथुएनिया	3.8
52.	दक्षिण कोरिया	3.8
53.	स्लोवाक गणराज्य	3.7
54.	फ़िलिपाइन्स	3.6
55.	टर्की	3.6
56.	मोज़ाम्बिक	3.5
57.	ज़ाम्बिया	3.5
58.	बेलारूस	3.4
59.	चीन	3.4
60.	लाटविया	3.4
61.	मैक्सिको	3.4
62.	सेनेगल	3.4
63.	बुल्गारिया	3.3
64.	मिस्र	3.3

(जारी ...)

(1)	(2)	(3)
65.	घाना	3.3
66.	मकदूनिया	3.3
67.	रोमानिया	3.3
68.	ग्वाटेमाला	3.2
69.	थाइलैंड	3.2
70.	निकारागुआ	3.1
71.	अर्जेन्टाइना	3.0
72.	कोलम्बिया	2.9
73.	भारत	2.9
74.	क्रोएशिया	2.7
75.	कोट द आइवॉयर	2.6
76.	मॉल्दोवा	2.6
77.	युक्रेन	2.6
78.	वेनेज़ुला	2.6
79.	वियतनाम	2.6
80.	आर्मीनिया	2.5
81.	बोलिविया	2.5
82.	इक्वेडोर	2.4
83.	रूस	2.4
84.	अल्बानिया	2.3
85.	जॉर्जिया	2.3
86.	कज़ाकस्तान	2.3
87.	किरगिज़ गणराज्य	2.2
88.	पाकिस्तान	2.2
89.	युगांडा	2.2
90.	केन्या	2.0
91.	पैराग्वे	2.0
92.	युगोस्लाविया	2.0
93.	तंज़ानिया	1.9
94.	होन्डुरास	1.8
95.	उज़बेकिस्तान	1.8
96.	अज़रबैजान	1.7
97.	इन्डोनेशिया	1.7
98.	नाइजिरिया	1.6
99.	कैमरून	1.5

नोट्स : - '1999 सीपीआइ में प्राप्त अंक' भ्रष्टाचार के दर्जे के संबंध में व्यापारियों के नज़रिये, जोखिम-विश्लेषण और साधारण जनता के अवगमों से संबंधित हैं और इसे 10 (अत्यंत स्वच्छ) से लेकर 0 (अत्यंत भ्रष्ट) अंकों तक के बीच आंका गया है।[4]

अब यह निष्कर्ष अकाट्य है: आप भारत को किसी भी प्रकार से देखें, जहां तक उस केन्द्रीय और प्रमुख मुद्दे का प्रश्न है - उस हाइड्रा का, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार रूपी हाइड्रा का, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं - तस्वीर निराशाजनक, बल्कि अंधकारमय है। सदाचरण, सुव्यवस्था एवं कानून के प्रति प्राचीन काल से ही भारत के मन में जो सम्मान रहा है, उसे देखते हुए यह विश्वास तो नहीं होता, पर ऐसा प्रतीत होता है कि जिन भ्रष्टाचारी लोगों की जाति ठीक-ठाक है और जिन्हें सत्ताधारी, धनवान् राजनीतिक आक़ाओं का संरक्षण प्राप्त है, उन्हें सामाजिक मान्यता का गौरव भी प्राप्त हो गया है। इससे भी दुखद बात यह है कि तमाम कष्ट सहते हुए भी, रिश्वतखोरी को अन्यायपूर्ण मानते हुए भी, लोगों ने इसे यह समझ कर स्वीकार कर लिया है कि यह रोज़मर्रा ज़िंदगी का ऐसा सच है जिसे बदला नहीं जा सकता। फरवरी-मार्च 1998 तथा फिर सितम्बर-अक्तूबर 1999 के आम चुनावों में भ्रष्टाचार कोई बड़ा मुद्दा नहीं था और न ही किसी भी जगह इसकी भूमिका निर्णायक रही थी।

इस मोड़ पर दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं। उनका पूछा जाना और स्पष्ट एवं सच्चा उत्तर दिया जाना अत्यावश्यक है। एक, क्या स्वाधीनता के बाद, पिछले 53 वर्षों में यह अपरिहार्य था कि भारत भ्रष्टाचार के गहरे गर्त में इतना धंस जाता? मेरे विचार में इसका उत्तर एक ज़ोरदार 'नहीं' है। दूसरे, क्या अब भी यह संभव है कि भारत भ्रष्टाचार की इस लहर का रुख मोड़ दे और राष्ट्रीय जीवन में सत्यनिष्ठा का एक ऐसा स्तर प्राप्त कर ले जिसके द्वारा यह सुप्रशासित राष्ट्रों के मंच पर एक ऊंचे स्थान का अधिकारी बन सके? इस प्रश्न के लिए भी मेरा उत्तर एक ज़ोरदार 'हाँ' है, पर एक महत्वपूर्ण शर्त के साथ। जो मुद्दे और अगली कार्रवाई के लिए विचारणीय जो विषय इस प्रसंग में उठें, उन पर बिना किसी दम्भ के, ईमानदारी के साथ ध्यान दिया जाए।

अब हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम स्वाधीनता प्राप्ति से लेकर अब तक, भ्रष्टाचार के विकास का अध्ययन करें, इस विकास के कारणों का विश्लेषण करें और फिर उन व्यावहारिक उपायों पर विचार करें, जिन को सरकार और जनता, दोनों, अपनायें, ताकि भारत को रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, छल-कपट तथा व्यापक बेईमानी के ऐसे ही अन्य रूपों के मकड़जाल से मुक्ति दिलाई जा सके और देश के अभिशासन में सत्यनिष्ठा, सम्मान और शालीनता को फिर से स्थापित किया जा सके।

अंत्यसंकेत

1. 'पॉकेट वर्ल्ड इन् फ़िगर्ज़', *द इकोनॉमिस्ट*, 1998, पृष्ठ 24, 116, 140, 142, 172, 176, 1997।
2. वही, पृष्ठ 102, 116, 140, 142, 158, 172, 176, 188।
3. वही, पृष्ठ 102, 116, 140, 142, 158, 172, 176, 188, 194, 204।
4. *ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल : वार्षिक रिपोर्ट*, 2000, पृष्ठ 13, ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल, बर्लिन।

अध्याय 1

स्वाधीनता के समय भारत का प्रशासन

14 अगस्त 1947 को, जब तीन शताब्दी पुराना अंग्रेज़ी शासन समाप्त होने को आया, तब पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के माध्यम से भारत की भाव-विभोर जनता को जिन शब्दों में सम्बोधित किया था, वे उसकी स्मृति में सदैव अंकित रहेंगे :

> कई साल पहले हमने नियति के साथ एक वायदा किया था, और आज वह समय आ पहुंचा है जब हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे, पूर्ण रूप से या पूरे परिमाण में तो नहीं पर पर्याप्त मात्रा में। आधी रात की घड़ी में जब दुनिया सोती है, भारत जीवन और स्वतंत्रता की भोर में जगेगा। ऐसे क्षण इतिहास में कभी-कभार ही आते हैं जब हम पुरातन से निकल कर नूतन की ओर बढ़ते हैं, जब एक युग समाप्त होता है और सदियों से दबे एक राष्ट्र की आत्मा को स्वर मिलता है। *इस महत्वपूर्ण क्षण में यह मुनासिब ही है कि हम भारत और उसकी जनता के प्रति, बल्कि विशालतर मानवता के उद्देश्यों के प्रति, स्वयं को समर्पित करने की शपथ लें।*

जनता के सामने प्रस्तुत परिदृश्य का ज़िक्र करते हुए उन्होंने पूछा था : *क्या हम इतने बहादुर, इतने बुद्धिमान् हैं कि इस अवसर को हाथ से न जाने दें और भविष्य की चुनौती को स्वीकार करें?*

और उन्होंने राष्ट्र को याद दिलाते हुए कहा था, "स्वाधीनता और सत्ता अपने साथ ज़िम्मेदारी लाती हैं।"

इसी अवसर पर बोलते हुए उन दूरदर्शी राजनेता, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने एक भविष्यवक्ता की भाषा में राष्ट्र और उसके नेताओं को चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था :

> हमारे सामने महान् अवसर हैं पर *मैं आपको सावधान करता हूं कि योग्यता की तुलना में जब सत्ता ज्यादा मिल जाती है, तब हमारे बुरे दिन आ जाते हैं।* हमें ऐसी क्षमता और योग्यता का विकास करने की ज़रूरत है जिससे हमें उन अवसरों का उपयोग करने में मदद मिल सके, जो हमारे सामने हैं। कल सुबह से - बल्कि आज आधी रात से - हम अंग्रेज़ों को दोष नहीं दे सकेंगे। हम जो कुछ भी करें, उसकी ज़िम्मेदारी हमें अपने ऊपर लेनी होगी। स्वतंत्र भारत को परखने की कसौटी यह

होगी कि उसमें रोटी, कपड़ा और मकान तथा सामाजिक ज़रूरतों के मामले में आम आदमी के हित के लिए क्या उपाय किए जाते हैं। *जब तक हम उच्च पदों पर से भ्रष्टाचार का ख़ात्मा नहीं कर देते, कुनबापरस्ती, सत्तालोलुपता, मुनाफ़ाखोरी और कालाबाज़ारी को, जिन्होंने हाल के दिनों में इस महान् देश के उजले नाम को दूषित किया है, जड़ से मिटा नहीं देते, तब तक हम न तो प्रशासन में कार्यकुशलता के स्तर को सुधार सकते हैं और न ही ज़िंदगी की ज़रूरी वस्तुओं के उत्पादन और वितरण के स्तर को।*

1947 में डॉ. राधाकृष्णन् ने योग्यता से अधिक सत्ता मिल जाने का उल्लेख करके वास्तव में उस बात की ओर इशारा किया था जो 50 वर्ष बाद विश्व बैंक के अध्यक्ष डॉ. जेम्स डी. वुल्फेन्सॉन ने कही थी। अपनी *'विश्व विकास रिपोर्ट - 1997'* में बहुत से विकासशील देशों में आजकल फैले अथाह भ्रष्टाचार का एक मुख्य कारण जो उन्होंने बताया था, वह है : राज्य द्वारा संभाली गई भूमिका को निभाने के लिए ज़रूरी व्यावहारिक योग्यता का ज़मीनी स्तर पर अभाव।

क्या भारत की जनता ने पंडित नेहरु की अपेक्षाओं को पूरा किया है? अथवा, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह प्रश्न, कि क्या वे स्वयं और उनके उत्तराधिकारी उन ज़िम्मेदारियों को निभा पाए जो स्वतंत्रता और सत्ता ने उन्हें सौंपी थीं? क्या वे जनता के विश्वास पर खरे उतरे? क्या हमारे नए शासकों ने उस चेतावनी की ओर ध्यान दिया जो डॉ. राधाकृष्णन् ने सत्ता के ख़तरों (या राज्य द्वारा संभाली गई ज़िम्मेदारियों) के बारे में इतने स्पष्ट और खरे शब्दों में दी थी? इस पुस्तक का मूल विषय यही प्रश्न हैं। और इन प्रश्नों का उत्तर हमें उस प्रक्रिया का संक्षिप्त सर्वेक्षण करने से मिलेगा जो 1947 में ब्रिटेन द्वारा भारत को राजसत्ता हस्तान्तरित किए जाने के बाद हमारे शासकों ने अपनाई है और पिछले वर्षों में जिस सत्ता का उपयोग अथवा दुरुपयोग प्रशासन में सत्यनिष्ठा और भ्रष्टाचार के अत्यंत महत्वपूर्ण संदर्भों में किया गया है।

1947 में प्रशासन व्यवस्था

15 अगस्त 1947 के दिन सत्ता हस्तांरित किए जाने से पहले के वर्षों में, भारत का प्रशासन तंत्र राज्य के मुख्य उद्देश्यों को पूरा करने में प्रभावी, पर्याप्त तथा सक्षम था। ये मुख्य उद्देश्य थे : कानून और व्यवस्था को बनाए रखना, भू-राजस्व तथा अन्य करों को उगाहना, यथास्थिति का परिरक्षण और तत्कालीन शासन-सत्ता के अधिकारों की रक्षा करना। सामान्य प्रशासन चलाने के लिए आदेश और नियंत्रण संबंधी नियमों की स्पष्ट संरचना उपलब्ध थी। इनके अंतर्गत सबसे निचले स्तर पर पटवारी था, सब से ऊपर वायसराय और इनके बीच विभिन्न स्तरों के प्राधिकारी थे जिनकी भूमिकाएं सुपरिभाषित थीं। अलग अलग मामलों और परिस्थितियों से निपटने के लिए

कार्यप्रणालियों का विशद निरूपण करने वाली अनेक नियमावलियां लागू थीं। इनका उद्देश्य यह था कि नियमविरुद्ध निर्णयों, अधिकारों के दुरुपयोग अथवा व्यक्तिगत लाभ के लिए कोई गुंजायश न रहे। फौजदारी और दीवानी मामलों के लिए अधिनियमों, कार्यविधि-संहिताओं आदि के रूप में एक व्यापक वैधानिक ढांचा संस्थापित था। इसके साथ ही एक ऐसे शासन को चलाने के लिए न्यायिक पद्धति थी जिसे आमतौर पर 'कानून का शासन' कहा जाता है।

अंग्रेजों ने भारत के लिए जो सबसे अच्छे काम किए, उनमें से एक था 'भारतीय सिविल सेवा' की स्थापना, जो पूर्णतया योग्यतातंत्र के सिद्धांतों पर आधारित थी। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों के सभी सर्वोच्च पद इसी संवर्ग के अंग्रेज़ और भारतीय अधिकारियों के पास थे। उन्हें ऊंचे वेतन मिलते थे और उनके निवास स्थान उनके रुतबे के अनुसार, बल्कि भव्य होते थे। उनके रहन-सहन का स्तर बढ़िया था और समाज में उन्हें प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त था। योग्यता, क्षमता, स्वतंत्रता, निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा के लिए भारतीय सिविल सेवा ने अपने लिए अविवादित प्रतिष्ठा अर्जित की थी। यह सेवा भारतीय प्रशासन के लिए 'फ़ौलादी ढांचा' बन गई थी।

कुल मिलाकर अंग्रेज़ी शासकों के सीमित उद्देश्यों के लिए देश का प्रशासनिक एवं न्यायिक तंत्र सुव्यवस्थित था।

अब मैं भ्रष्टाचार के प्रश्न की ओर लौटता हूं। संसार का कोई भी देश कभी भी सभी दृष्टियों से पूरी तरह भ्रष्टाचार-मुक्त नहीं रहा। निस्संदेह उस समय भारत में पर्याप्त भ्रष्टाचार था पर यह नौकरशाही के सबसे निचले स्तरों तक ही सीमित था। इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका प्रभाव जनता पर ऐसा नहीं था कि हम उसे घातक कह सकते अथवा लूट-खसोट के रूप में देखते। द्वितीय विश्व युद्ध 1939 के शुरु होने के पहले के वर्षों में, यह भ्रष्टाचार किस सीमा तक और किस प्रकार का था, इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

1 नौकरशाही के निचले स्तरों पर काम करने वाले कर्मचारियों में कई सालों से थोड़े-से पैसे लेकर काम करने की प्रथा चली आ रही थी और इस प्रथा को लोगों की समझ और स्वीकृति हासिल हो चुकी थी। एक छोटे कर्मचारी के हाथ में, फ़ैसले के लिए अर्ज़ी पकड़ाते समय, सावधानी बरतते हुए, होंठों पर थोड़ी मुस्कराहट और आंख में थोड़ी शरारत के साथ दो रुपये, या ऐसी ही कोई धनराशि पकड़ा दी जाती थी। दिन के अन्त में, उस दफ्तर में इस प्रकार इकट्ठी हुई कुल रकम छोटे कर्मचारी आपस में बराबर-बराबर बांट लेते थे। हालांकि अधीनस्थ कर्मचारियों को प्राप्त होने वाली यह कमाई ग़ैरकानूनी होती थी, पर यह उस समय के रिवाज के मुताबिक थी। देने वाले इसे *नज़राना* कहते थे और प्राप्त करने वाले इसे *ऊपर की कमाई* कहते थे। उस वक्त, जबकि कानूनी तरीके से मिलने

वाला वेतन बहुत कम और कर्मचारियों तथा उनके परिवारों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त होता था, यह कमाई कानूनी तरीके से मिलने वाली कमाई के अतिरिक्त होती थी।

बड़े साहबों के चपड़ासियों और अर्दलियों को आगंतुक बखशीश के तौर पर एक रुपया देते थे। आगंतुक की वापसी पर जब चपड़ासी उसके सामने अपने सिर को हल्का-सा झुकाता था तो यह इस बात का संकेत होता था कि यह छोटा-सा लेनदेन बिना किसी के देखे सम्पन्न हो गया है।

2. क्रिसमस और नव वर्ष के अवसर पर डिप्टी कलेक्टर या कलेक्टर और पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट या सुपरिन्टेंडेंट, बिना आपत्ति के, प्रसन्नतापूर्वक उपहारों की बड़ी-बड़ी डालियां स्वीकार करते थे। इन डालियों को देने वाले, भूमिपति-भद्रजन होते थे।

   इसके अतिरिक्त जब ये अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों के दौरे पर जाते थे तो उनके शिविर की 'रसोई' का इंतज़ाम छोटे अधिकारी, स्थानीय सम्पन्न लोगों की सहायता से करते थे।

3. सर्वोच्च अधिकारी, जैसे डिवीज़नों के आयुक्त, प्रान्तों के गवर्नर, यहां तक कि वायसराय और गवर्नर-जनरल भी, जो आमतौर पर अंग्रेज़ ही होते थे, अवकाश-प्राप्ति की पूर्ववेला पर अपने अधिकार-क्षेत्रों के दौरे पर जाते थे और अपने लिए पर्याप्त मात्रा में उपहार और अपनी स्त्रियों के लिए बहुमूल्य आभूषणों की भेंट स्वीकार करते थे।

इस परिदृश्य का वर्णन करने के बाद मैं यह कहना आवश्यक समझता हूं कि छोटे-मोटे अपवादों को छोड़ कर, इस प्रकार की धनराशियां या उपहार न कभी मांगे जाते थे और न इनके लिए कोई ज़बर्दस्ती की जाती थी। ये स्वेच्छापूर्वक और प्रसन्नतापूर्वक भेंट किए जाते थे। छोटे कर्मचारियों को प्रथा के अनुसार दी जाने वाली इस राशि को *रिश्वत* या *घूस* नहीं कहा जाता था। इसे स्वीकार करने वालों पर किसी प्रकार का सामाजिक कलंक नहीं लगता था और इसे उन कम वेतन हासिल करने वाले कर्मचारियों के लिए आवश्यक, पूरक आमदनी के रूप में देखा जाता था। अधीनस्थ पुलिस इंस्पेक्टरों के विरुद्ध इक्का-दुक्का ऐसी शिकायतें अवश्य आती थीं जिनके अनुसार अपराध के मामलों में फंसे लोगों के निर्दोष होने की रिपोर्ट देने के बदले में उनसे बड़ी मात्रा में घूस या रिश्वत की मांग की गई हो। कभी-कभी दूसरे विभागों, विशेषकर सार्वजनिक कामों से जुड़े अधिकारियों, के विरुद्ध भी शिकायतें होती थीं। आमतौर पर इस तरह के मामले उच्च अधिकारियों तक तुरंत पहुंच जाते थे और इनको दूर करने के लिए ज़रूरी कार्रवाई तुरंत की जाती थी।

उस समय की ऐसी स्थिति से इस निष्कर्ष पर पहुंचना ग़लत नहीं होगा कि भ्रष्टाचार के छोटे-मोटे मामलों को छोड़ कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, नौकरशाही के छोटे कर्मचारी भी जनता से जबर्दस्ती घूस की मांग करके लोगों को तंग नहीं करते थे। मध्य और उच्च स्तर पर, भारतीय प्रशासन तंत्र की दोनों शाखाएं - कार्यपालिका और न्यायपालिका - असाधारण रूप से भ्रष्टाचार-मुक्त थीं। इसके कई कारण थे। प्रथम, इन पदों पर नियुक्त अधिकारियों का वेतन पर्याप्त होता था और इसे प्राप्त करने वाले अपने परिवारों के सभी ख़र्चों - निवास, खान-पान, परिधान, वाहन, बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा-ख़र्च, वृद्धों की देखरेख आदि - को आसानी से उठा सकते थे और उसके बाद भी उनके पास आपात् स्थिति के लिए बचत के रूप में यथेष्ट धन बच रहता था। इस प्रकार उन्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं था। दूसरे, इन अधिकारियों को समाज में बहुत आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वे स्वेच्छापूर्वक एक सम्मानजनक आचार-संहिता का पालन करते थे हालांकि सरकारी तौर पर ऐसी कोई संहिता लागू नहीं थी। तीसरे, ज़िले का कलेक्टर, जो आमतौर पर, भारतीय सिविल सेवा का अधिकारी होता था, गहरी सतर्कता बरतता था और यदि कोई व्यक्ति भटक जाता था तो उस की शामत आ जाती थी। चौथे, उस समय चूंकि सरकारी तंत्र सीधे रूप में किसी वाणिज्यिक अथवा औद्योगिक गतिविधि से संबंधित नहीं था, शरारत के अवसर भी उपलब्ध नहीं थे।

भारतीय प्रशासन तंत्र अपने इस ढर्रे पर चल रहा था कि एक महत्वपूर्ण घटना घटी। भारत सरकार के 1935 के अधिनियम के अंतर्गत 1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव हुए। इन चुनावों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भाग लिया, बहुत से क्षेत्रों में शानदार सफलता प्राप्त की और छः प्रांतों में सरकारें बनाईं। यह पहला अवसर था जब कांग्रेस के मुख्यमंत्रियों और मंत्रियों के हाथ में राज्य-सत्ता आई थी। कार्यभार संभालने के थोड़े समय बाद ही कई मंत्रियों, यहां तक कि विधायकों के विरुद्ध भी भ्रष्टाचार की शिकायतें खुल कर की जाने लगीं। ऐसा लगता था कि नई-नई प्राप्त सत्ता का निर्वाह करते हुए उनमें से कई एक तो पहले पड़ाव पर ही फिसल गए थे। यह एक दुखद अनुभव था क्योंकि यह उस समय हुआ जब कांग्रेस पार्टी का नैतिक नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथ में था। *स्वाभाविक ही था कि महात्मा जी इससे क्षुब्ध होते; उन्होंने लिखा, "मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि सारी कांग्रेस को शालीनतापूर्वक दफ़ना दिया जाए, बजाय इसके कि हम सर्वत्र फैले इस भ्रष्टाचार को सहन करते रहें।"*[1]

पंडित जवाहर लाल नेहरु ने भी उतने ही कड़े शब्दों में भर्त्सना की। अप्रैल 1938 में, जब कांग्रेसी मंत्रियों को सत्ता में अभी मुश्किल से एक वर्ष ही हुआ था, नेहरू जी इस निष्कर्ष पर पहुंच गए थे कि ये मंत्री अपना कार्य निष्प्रभावी ढंग से

कर रहे हैं। '... इससे भी बुरी बात यह है,' उन्होंने कहा था, 'कि हम ऐसे साधारण राजनीतिज्ञों के स्तर पर उतर आए हैं जिनके पास सिद्धांतों का कोई ठोस आधार नहीं होता और जो अपना काम रोज़मर्रा की अवसरवादिता से प्रभावित हो कर चलाते हैं।' स्पष्ट ही, नेहरू जी की दृष्टि में उन लोगों का, जिन्हें उन्होंने 'साधारण राजनीतिज्ञ' कहा था, कोई महत्व नहीं था। और अपनी उदार हृदयता के चलते वे इस भ्रामक विश्वास को पालते रहे थे कि कांग्रेस पार्टी के राजनीतिज्ञ सिद्धांतों के सूत्र में बंधे हैं तथा सत्यनिष्ठा के मामले में वे अपनी बिरादरी के दूसरे लोगों से एक दर्जा आगे हैं।

1939 में कांग्रेसी मंत्रियों ने त्याग पत्र दे दिया और इस प्रकार इस घिनौने अध्याय की शीघ्र ही समाप्ति हो गई। पर ऐसा होने से पहले यह बात तो खुल कर सामने आ गई कि त्याग और पवित्रता की प्रतीक गांधी टोपी पहनने वाले, कांग्रेस पार्टी के सदस्य भी सत्ता के भ्रष्ट कर देने वाले प्रभाव का शिकार हो सकते हैं।

1939 में सभी कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा सामूहिक त्याग पत्र द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने की पृष्ठभूमि में दिए गए थे। ग्रेट ब्रिटेन ने, जो उस समय विश्व की एक बड़ी शक्ति था, नाज़ियों और फ़ासिस्टों के विरुद्ध एक निर्णायक और भयंकर, सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया था। ब्रिटिश साम्राज्य का अंग होने के नाते भारत ने भी अपने को इस युद्ध में शामिल पाया। चूंकि भारत को, उसके नेताओं के साथ बिना किसी पूर्व परामर्श के, इस युद्ध में धकेल दिया गया था, इसलिए कांग्रेस पार्टी ने विरोध स्वरूप प्रांतीय सरकारों को त्याग दिया। ब्रिटिश गवर्नरों ने तुरंत इन त्याग पत्रों को स्वीकार कर लिया और प्रशासन की पूरी ज़िम्मेदारी संभाल ली। आपात् स्थिति के लिए आवश्यक सभी प्रबंध फ़ौरन किए गए; इनमें सर्वोपरि प्राथमिकता युद्ध संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने को दी गई।

सशस्त्र सेनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की ढेर-सारी सामग्री की आपूर्ति की आवश्यकता थी। कई स्थानों पर बहुत-सा निर्माण कार्य किया जाना था। सभी कार्यों को फुर्ती से सम्पन्न करने के लिए पूरे प्रशासन तंत्र को तत्पर कर दिया गया था। यह समय आंख मूंद कर निर्धारित नियमों और कार्यविधियों का अनुकरण करने का नहीं था। इस आपात् स्थिति में साधनों की अपेक्षा उद्देश्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे। इन परिस्थितियों में, प्रापण-अधिकारियों को माल खरीदने के दाम और ठेका देने की शर्तें तय करने के लिए व्यापक अधिकार दे दिए गए थे। आपूर्ति, खरीद अथवा निर्माण के कामों में लगे लोगों ने आर्थिक प्रलोभनों के समक्ष झुकने से परहेज़ नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि घूस देने वाले और घूस लेने वाले, दोनों को ही 'खुला मौसम' मिल गया। युद्ध की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन वस्तुओं को भी हासिल करना होता था जिनकी बाज़ार में कमी थी। ऐसी

वस्तुओं को प्राप्त करने के बाद, इन्हें सारा का सारा नहीं तो कम से कम इनका एक भाग कहीं ऊंचे दामों पर निजी लाभ के लिए बेच दिया जाता था। भ्रष्टाचार का यह असली चेहरा था। इस व्यापक घूसखोरी, कालाबाज़ारी और मुनाफ़ाखोरी के परिणामस्वरूप, बहुत से ठेकेदार और बिचौलिए तथा उनके साथ-साथ ढेर सारे आपूर्ति अधिकारी तथा निर्माण कार्यों में लगे लोग बहुत अमीर हो गए।

1945 में युद्ध समाप्त हुआ और इसके साथ ही परिदृश्य एक बार फिर बदला। जल्दी ही वस्तुओं को प्राप्त करने के अभियानों और नए निर्माण कार्यों को बन्द कर दिया गया और सर्वव्यापक भ्रष्टाचार के अवसर समाप्त हो गए। इस से भ्रष्टाचार की उठी हुई लहर बैठ गई। परंतु युद्ध के वर्षों के तीखे अनुभव से एक गंभीर सबक सीखना और एक आवश्यक निष्कर्ष निकालना अनिवार्य था। आसान-सा सबक तो यह, कि अवसर मिलने पर भारतीय भी धन के प्रलोभन के सामने, सब संकोच त्याग कर, वैसे ही घुटने टेक देते हैं जैसे संसार के दूसरे भागों के लोग। और निष्कर्ष यह कि राज्य - जोकि संबद्ध सरकारी अधिकारियों और ग़ैर-अधिकारियों का ही एक प्यारा-सा नाम है - के हाथों में आई आर्थिक शक्ति का, जिसमें भ्रष्टाचार की संभावनाएं निहित होती हैं, व्यक्तिगत लाभ के लिए ग़ैर कानूनी ढंग से दुरुपयोग भारत में भी किया जा सकता है, भले ही हम हर परिस्थिति में धर्म के पथ पर चलते रहने का दावा क्यों न करते रहें। इसी के साथ जुड़ा दूसरा अपरिहार्य निष्कर्ष यह भी होता कि इस प्रकार की संभावना से बचने के लिए सतर्कता और भ्रष्टाचारियों को शीघ्र दंडित करने की सुचारु व्यवस्था अनिवार्य है। तभी भ्रष्टाचार पर नियंत्रण और प्रशासन में सत्यनिष्ठा के वांछित स्तर को बनाए रक्खा जा सकता है।

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, स्वतंत्रता की पूर्ववेला पर महात्मा गांधी और डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, दोनों ने स्पष्टतम शब्दों में भ्रष्टाचार से सावधान रहने की चेतावनी दी थी। उचित होगा कि हम इसी प्रकार की अनेक अन्य चेतावनियों को भी याद करें जो स्पष्ट और सशक्त शब्दों में पहले भी दी जा चुकी हैं। सैंकड़ों वर्ष पूर्व, भारतीय इतिहास के सुख्यात प्रशासक, मनीषी कौटिल्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में सरकारी अधिकारियों के भ्रष्ट होने की संभावना पर यह लिखा था :[2]

1

जिस प्रकार जिह्वा के अग्रभाग पर लगे मधु अथवा विष को न चख पाना असंभव है, उसी प्रकार सरकारी कोष से संबंध रखने वाले व्यक्ति के लिए यह असंभव है कि वह राजा की सम्पत्ति के छोटे से अंश का भी रस ग्रहण न करे।

2

जिस प्रकार यह जान पाना असंभव है कि जल में घूमती हुई मछली कब पानी पी लेती है, उसी प्रकार यह जान पाना भी असंभव है कि सरकारी प्रतिष्ठानों के

प्रभारी कर्मचारी कब धन का दुरुपयोग कर लेते हैं।

3

जो अधिकारी राजा की सम्पत्ति का भक्षण न करके उसमें न्यायसंगत साधनों से वृद्धि करते हैं तथा राजा के प्रति पूर्णतया निष्ठावान् रहते हैं उनकी सेवा स्थायी कर दी जाएगी।

4

जो राजस्व का नुकसान करता है, वह राजा की सम्पत्ति का भक्षक है (परंतु) जो (अनुमानित) आय से दुगुनी राशि इकट्ठी करता है, वह देश को खाता है और जो (बिना कोई लाभ अर्जित किए) सारी आय खर्च कर देता है, वह कामगरों की मेहनत की कमाई खाने वाला है।

5

आकाश में उड़ते पक्षियों का मार्ग तो जाना जा सकता है पर उन राजकीय अधिकारियों के कार्यकलाप को, जो (बेईमानी की) अपनी आय को छिपा लेते हैं, नहीं समझा जा सकता।

6

राजा को चाहिए कि वह मामूली अपराध को क्षमा कर दे और यदि (शुद्ध) राजस्व थोड़ा भी मिले तो संतुष्ट रहे। उसे चाहिए कि (जो) अधिकारी (राज्य को) अधिक लाभ पहुंचाते हैं, उन्हें पुरस्कारों से सम्मानित करे।

जिन अधिकारियों ने (ग़लत साधनों से) धन इकट्ठा किया हो, उन से उसकी भरपाई की जाए; (तत्पश्चात्) उन्हें ऐसे दूसरे कामों पर नियुक्त कर दिया जाए जहां उनके सामने दुरुपयोग के प्रलोभन न हों जिनके कारण उन्हें दोबारा निग़ले हुए धन को उगलना पड़े।

कौटिल्य ने सर्वोच्च बुद्धिमत्ता तथा अनासक्त भाव से हमारा ध्यान, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित पांच मुख्य सिद्धांतों की ओर दिलाया था, जिनका पालन, मनुष्य के स्वभाव को देखते हुए तथा एक कुशल, सत्यपरायण एवं अनुशासित राजसेवा को चलाने के लिए अत्यावश्यक है :

1. यह मान कर चलना चाहिए कि राजसेवकों पर यदि नियंत्रण नहीं होगा तो वे अनधिकृत अथवा कपटपूर्ण ढंग से धन संचित करेंगे।
2. अच्छे राजसेवकों को उचित पारिश्रमिक तथा पारितोषिक देने चाहिएं।

3. राजसेवकों को आदेश होना चाहिए कि वे राजस्व की उगाही सही मात्रा में करें, न कम, न अधिक, और ख़र्च पर नियंत्रण रखें ताकि राज्य के लिए शुद्ध-शेष बच सके।
4. प्रशासन में सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित करने के लिए सरकारी सेवकों पर निरंतर चौकसी बरती जानी चाहिए और इस उद्देश्य से आवश्यकतानुसार गुप्तचर सेवा का गठन किया जाना चाहिए।
5. बेईमान अधिकारियों को अविलम्ब दंडित किया जाना चाहिए और उनसे ग़लत साधनों से इकट्ठे किए गए राज्य के धन की वसूली की जानी चाहिए।

सत्ताधारियों और सत्ता का उपयोग करने वालों के भ्रष्ट हो सकने के विषय पर मैं महान् ब्रिटिश इतिहासकार लॉर्ड एक्टन के उस सूत्र की ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहूंगा जिसे उन्होंने बिशप मैडल क्रीटन को लिखे 3 अप्रैल 1887 के अपने पत्र में लिपिबद्ध किया था :

सत्ता में भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति होती है और निरंकुश सत्ता पूर्णतया भ्रष्ट कर देती है।[3]

यह सूत्र चिरस्थायी प्रामाणिकता का है और इसमें सभी लोगों, राष्ट्रों और सरकारों के लिए चेतावनी है। लॉर्ड एक्टन ने यह नहीं कहा कि सत्ता भ्रष्ट करती है क्योंकि ऐसा कहने से जो अर्थ निकलता वह स्वीकार्य नहीं होता। इसका तात्पर्य यह होता कि जो सत्ता का उपयोग करते हैं वे अनिवार्य तथा अपरिहार्य रूप से स्वतः ही भ्रष्ट हो जाते हैं। यदि ऐसा होता तो ईमानदार राज्य होता ही नहीं। राज्य का अर्थ है एक ऐसा संगठन जिसमें सत्ता के कई केन्द्र होते हैं जिन पर राजनीतिज्ञों और राजसेवकों का अधिकार होता है और वही इस सत्ता का उपयोग करते हैं। यदि सत्ता के कारण भ्रष्ट हो जाना उन सभी की नियति हो जाए तो प्रशासन में सत्यनिष्ठा तो असंभव हो जाएगी और सभ्यता का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। लार्ड एक्टन ने जब यह कहा था कि सत्ता में भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति होती है तो उन्होंने बहुत सावधानी और स्पष्टता से काम लिया था। उन्होंने कहा था कि सत्ता में निहित भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति से सावधान रहो। इसका साफ़ तात्पर्य यह था कि सत्ता का उपयोग करने वालों पर यदि आवश्यक एवं प्रभावी, निवारक कार्रवाई का अंकुश बना रहे तो यह प्रवृत्ति रोकी जा सकती है और इसे समाप्त भी किया जा सकता है। और मेरे विचार में, निवारक प्रक्रिया के दो सुस्पष्ट उपाय हैं : एक, ऐसे लोगों को अभाव से ऊपर रखने के लिए उनके लिए अच्छा पारिश्रमिक और दूसरे, नियंत्रण और सतर्कता की प्रभावी पद्धति का संस्थापन

जिसके साथ भ्रष्टाचार के अपराधियों को विधिसम्मत प्रक्रिया के द्वारा जल्दी और उदाहरणीय दंड दिए जाने का प्रावधान जुड़ा हो।

महात्मा गांधी, डॉ. राधाकृष्णन्, कौटिल्य और लॉर्ड एक्टन की तथा निस्संदेह विभिन्न देशों के अनेक द्रष्टाओं और विचारकों की ये सभी चेतावनियां, भारत के नए शासकों को - जो स्वतंत्रता के सुप्रभात की अगवानी कर रहे थे और इस देश की शासन-सत्ता की बागडोर संभालने जा रहे थे - उपलब्ध थीं, या फिर उपलब्ध होनी चाहिए थीं। क्या भारत के इन नए शासकों ने इन चेतावनियों की ओर ध्यान दिया? क्या उन्होंने ऐसे क़दम उठाए जिनसे राजसत्ता की भ्रष्ट करने वाली प्रवृत्ति पर अंकुश रहता और उस प्रवृत्ति को समाप्त किया जा सकता? आइए, देखें।

अंत्यसंकेत

1. डी.जी. तेन्दुलकर, *महात्मा*, दूसरा संस्करण, विट्ठल भाई ज़वेरी और डी.जी. तेन्दुलकर, बम्बई, खंड 5, 1996, पृष्ठ 339।
2. एल.एन. रंगराजन् (सं.), *कौटिल्य—द अर्थशास्त्र*, पेंग्विन बुक्स इंडिया (प्रा.) लि., नई दिल्ली 1992, पृष्ठ 281, 293।
3. *द ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी ऑफ़ कोटेशन्स*, तीसरा संस्करण, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1987, पृष्ठ 1।

अध्याय 2

जवाहर लाल नेहरू – नए भारतीय राज्य के संस्थापक पितृपुरुष

जिस प्रकार महात्मा गांधी नए स्वाधीन भारतीय राष्ट्र के पिता थे, उसी प्रकार पंडित जवाहर लाल नेहरू नवप्रतिष्ठित भारतीय राज्य के संस्थापक पितृपुरुष थे। नेहरू का अधिकार दो दृष्टियों से सम्पूर्ण था। एक तो इसलिए कि यह उन्हें गांधी जी से प्राप्त हुआ था जिनकी नैतिक छत्रछाया में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की थी। दूसरे, यह उन्हें भारत की जनता ने दिया था, जिसने अपना विश्वास और स्नेह उन्हें सम्पूर्ण रूप से समर्पित किया था।

अपनी स्वाधीनता के पहले दिन, 15 अगस्त 1947 को, भारत की जनता ने, देश की नई सरकार के प्रमुख, जवाहर लाल नेहरू के साथ मिल कर नियति के साथ वायदा किया था। मौन, पर आंखों की भाषा में, इस जनता ने, नेहरू से कहा था :

> शताब्दियों तक हमने अत्याचार और अगाध दरिद्रता सही है। अब वह समय आ गया है जब आप ने हमें भूख, अशिक्षा, निरक्षरता, बीमारी और बदनसीबी के इस अस्तित्व से मुक्ति दिलानी है। समुचित सीमा के भीतर हमें इस लायक बना दीजिए कि हमें दो वक्त का भोजन प्राप्त हो सके, स्वच्छ पेय जल मिल सके, हमारे सिर पर छत हो, कुछ गज़ कपड़ा हो जो हमारा तन ढंकने के लिए पर्याप्त हो, मूलभूत शिक्षा हो, प्रारंभिक चिकित्सा-सहायता प्राप्त हो - ज़िंदगी की केवल न्यूनतम आवश्यकताएं हमें उपलब्ध हों। आपके पास ऐसा कर सकने की पूरी शक्ति है। कोई भी कानून बनाइये, ईमानदार और कुशल शासन चलाने के लिए कैसा भी तंत्र स्थापित कीजिए, उत्तरदायी पदों पर अपनी पसंद के लोगों की नियुक्ति कीजिए और उन नीतियों का अनुसरण कीजिए जिन्हें आप ठीक समझते हैं। पंडित जी ! हम जानते और विश्वास करते हैं कि आप हमारा - भारत की जनता का - ध्यान अपने कार्यक्रमों में सबसे अधिक रखेंगे। जहां तक हमारा संबंध है, हम आपको बिना शर्त अपना समर्थन, हमेशा-हमेशा देते रहेंगे।

पंडित जवाहर लाल नेहरू प्राणपण से उस कार्य में जुट गए जो, उन्हीं के शब्दों में, नए भारत के निर्माण का एक महान् साहसिक कार्य था। वे भारत के प्रधानमंत्री थे, शासक दल - भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस - के अध्यक्ष थे, और जनता के परमप्रिय थे।

उस समय देश में सब से महत्वपूर्ण व्यक्ति तीन थे - महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल। गांधी जी की 30 जनवरी 1948 को हत्या कर दी गई। दिसंबर 1950 में सरदार पटेल की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात्, देश का शासन चलाने का पूर्ण अधिकार नेहरू के हाथ में आ गया। उनकी इच्छा देश की नीति थी, उनका संकल्प देश का कानून।

नए भारत राज्य के पितृपुरुष होने के नाते, नेहरू के ऊपर एक महान् उत्तरदायित्व था, और उनके पास ऐसा अवसर था जो फिर कभी किसी को प्राप्त होने वाला नहीं था। उन्हें एक नूतन भारत की नींव रखनी थी, उन्हें एक सुदृढ़ अधिरचना के निर्माण का प्रारंभ करना था और उन्हें जनता के हित के लिए देश को अच्छी शासन व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से एक नई इमारत खड़ी करनी थी।

भारत के इस निराले-नाज़ुक-ऐतिहासिक मोड़ पर, नेहरू के आधारभूत विश्वासों, उनकी प्राथमिकताओं, उनके व्यक्तिगत गुणों, उनके चरित्र और प्रशासन में कुशलता, पारदर्शिता तथा सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित करने के लिए उनके संकल्प और वचनबद्धता का परिमाण - इन्हीं सब से यह निर्धारित होना था कि एक स्वतंत्र राज्यव्यवस्था और एक संवेदनशील समाज को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए अत्यावश्यक, शासकीय संस्थाओं और जनता के नैतिक चरित्र की गुणवत्ता और स्थायित्व किस कोटि के होंगे।

तिरपन वर्ष बाद, भारत आज वयस्क मताधिकार और गुप्त मतदान की प्रणाली पर आधारित विश्व का सब से बड़ा प्रजातंत्र है। इस दौरान, भारत ने सफलतापूर्वक 13 आम चुनाव सम्पन्न किए हैं। और भारत के मतदाताओं की संख्या, 60 करोड़ 50 लाख है, जो कि चौंका देने वाली है। आज भारत में एक सुसंस्थापित संसदीय, धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र है, एक स्वतंत्र न्यायपालिका है जिसके शिखर पर एक अत्यंत सम्मानित सर्वोच्च न्यायालय है और एक स्वतंत्र, जागरूक प्रेस है। इस अप्रतिम उपलब्धि का श्रेय मुख्य रूप से निस्संदेह भारत के संस्थापक पितृ-पुरुष जवाहर लाल नेहरू को जाता है जिन्होंने अपने प्रधानमंत्रित्व की दीर्घ अवधि में, 1947 से 1964 तक, प्रत्येक प्रजातांत्रिक संस्था, परम्परा और सिद्धांत का पूरे मन, उत्साह और निष्ठा के साथ सम्पोषण किया। 1947 में, एक औद्योगिक देश के रूप में भारत की कोई गिनती नहीं थी। आज भारत अग्रिम पंक्ति में है। यह निस्संदेह नेहरू की भविष्यदृष्टि का ही परिणाम है। आज यदि भारत एक आण्विक शक्ति है तो इसलिए कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को नेहरू ने व्यक्तिगत संबल प्रदान किया था। यह सब विकासशील विश्व में सफलता की अनुपम गाथा है।

परंतु जब हम भारत की वास्तविक शासन व्यवस्था की ओर देखते हैं तो यह कहानी, खेदजनक ढंग से एक अलग मोड़ ले लेती है। भारत के प्रधानमंत्री के रूप में, 17 वर्षों तक नेहरू को देश पर निर्बाध शासनाधिकार प्राप्त था - ऐसा अवसर बहुत कम प्रजातांत्रिक शासनाध्यक्षों को मिलता है। किसी भी मापदंड से, यह समय पर्याप्त था जिस के दौरान नेहरू और उनके मंत्री इसे सुनिश्चित बना सकते कि पूरे देश में एक कुशल, पारदर्शी और स्वच्छ कार्यपालिका तथा न्यायिक प्रशासन तंत्र की स्थापना हो क्योंकि साधारण जनता के अधिकारों की सुरक्षा और ग़रीबी उन्मूलन तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए ये अत्यावश्यक थे।

इसके बावजूद भारत आज संसार के उन सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में है जहां गांवों के स्तर तक, प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में बेईमानी व्याप्त है।

आइए देखें कि कहां गड़बड़ हुई और क्यों? नेहरू की भविष्य दृष्टि में एक ऐसा भारत था जो एक महान् औद्योगिक राष्ट्र हो। यह राष्ट्र समाजवादी मॉडल के अनुरूप नियोजित था। उच्चतम स्तर पर इसकी अर्थव्यवस्था का नियंत्रण राज्य के हाथों में था और इसमें निजी क्षेत्र की महत्वपूर्ण, पर सहायक भूमिका थी जिसका नियमन सरकार के नियंत्रण में था। नेहरू के आदर्शवादी मन ने इस बात को स्वाभाविक मान लिया कि इस प्रकार राज्य के हाथों में, दूसरे शब्दों में नए राजनीतिक शासक-वर्ग और शिखरस्थ नौकरशाहों के हाथों में, जो विशाल आर्थिक सत्ता आ जाएगी, उसका उपयोग, भारत की समस्त जनता के हित में सत्यनिष्ठा और पारदर्शिता के साथ किया जाएगा। 'स्वतंत्र उद्यम' अथवा पूंजीवादी मॉडल को अस्वीकार करने के कई कारण थे जिनमें दो मुख्य थे : प्रथम, यह अनुभव किया गया कि ऐसे मॉडल से दौलत थोड़े से हाथों में सिमट जाएगी और कुछ ही लोगों का हित साधन कर पाएगी, अधिक लोगों का नहीं। और दूसरे, यह महसूस किया गया कि भारत के तेज़ औद्योगीकरण के लिए ज़रूरी विशाल पूंजी को जुटा पाने में निजी क्षेत्र किसी भी दशा में समर्थ नहीं हो सकेगा। प्रथम दृष्ट्या, समाजवाद के पक्ष में और स्वतंत्र उद्यम के विरुद्ध दिए गए तर्क अकाट्य थे। राजनीतिक वर्ग के लिए तो संभावनाएं अत्यंत सुखदायक थीं। समाजवादी मॉडल में धन की विशाल राशियों का अर्थव्यवस्था में निवेश किया जाएगा, कितने ही नए उद्यमों की स्थापना होगी, बड़ी संख्या में 'शक्तिकेन्द्रों' का सृजन होगा, इनके द्वारा आर्थिक संस्वीकृतियां दी जाएंगी, नियमन और प्रबंधन किया जाएगा, करोड़ों नई नौकरियों के अवसर सरकारी विभागों अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में पैदा होंगे जिनमें 'उचित' लोगों को नियुक्त किया जा सकेगा - ये सारे आकर्षक अवसर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों, नए राजनीतिक आकाओं, के नियंत्रण में रहेंगे।

नेहरू स्वयं तो सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा और उदात्त चित्तवृत्ति के धनी थे। वे सोच भी नहीं सकते थे कि उनके अपने ही राजनीतिक दल के कई राजनीतिज्ञ जिन्होंने स्वाधीनता के युद्ध में बढ़-चढ़ कर भाग लिया था और देश की सेवा में बहुत बलिदान किए थे, सत्ता प्राप्त करते ही आसानी से उन प्रलोभनों के शिकार हो जाएंगे जिनका अवसर सत्ता के व्यापार में विद्यमान रहता है। और इसे भी स्वाभाविक मान लिया गया कि देश की सर्वोच्च नौकरशाही, भारतीय सिविल सेवा, जो सत्ता के नए केन्द्रों में राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर काम करेगी, सब प्रकार से प्रलोभनमुक्त रहेगी।

पर हमें याद करना चाहिए कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में स्पष्ट चेतावनी दी थी कि सरकारी सत्ता का इस्तेमाल करने वालों में भ्रष्ट होने की प्रवृत्ति होने की संभावना प्रायः होती है। इसलिए सर्वोच्च शासक का यह कर्तव्य है कि अपने कर्मचारियों को अच्छा वेतन दे ताकि उन्हें किसी प्रकार का अभाव न रहे। पर इसके साथ ही उसे यह भी चाहिए कि वह सतत सतर्कता और पथभ्रष्ट अधिकारियों को तुरंत दंडित करने के निवारक उपायों की व्यवस्था करे। दूसरे शब्दों में, एक बुद्धिमान् शासक वह है जो अपने अधिकारियों की अटल सत्यनिष्ठा की पूर्वकल्पना न कर के उनके भ्रष्ट होने की संभावना को स्वीकार करके चले तथा उसका सामना करने के उचित उपायों को सुनिश्चित करे। भारत में, द्वितीय विश्वयुद्ध के वर्षों में, कौटिल्य और लॉर्ड एक्टन के वचनों में निहित सत्य खुल कर सामने आ चुका था। युद्ध प्रयासों में हाथ बंटाने के नाम पर, कितने ही व्यापारियों, आपूर्तिकर्ताओं, ठेकेदारों, निर्माताओं और अधिकारियों ने आवश्यक आपूर्तियों और भवन निर्माण आदि के लिए, अपनी जेबें भरने के उद्देश्य से भ्रष्ट साधनों को अपनाया था। स्वयं महात्मा गांधी ने कांग्रेसजनों की भ्रष्टाचारिता पर गहरी मनोवेदना प्रकट की थी। डॉ. राधाकृष्णन् ने दो टूक शब्दों में फैलते हुए भ्रष्टाचार के खतरे की बात कही थी। ये मात्र एक काल्पनिक भेड़िये से डराने वाली नैतिक अथवा किताबी बातें नहीं थीं बल्कि एक भयानक यथार्थस्थिति से उत्पन्न गहरे दुःख की अभिव्यक्ति थी।

स्पष्ट है कि भारत की नई सरकार का सर्वोपरि कर्तव्य और उत्तरदायित्व यह था कि वह जनता को उसकी सबसे बड़ी आवयश्कता – एक साफ़-सुथरा प्रशासन – प्रदान करने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करती। और ऐसा केवल एक नए राज्य की स्थापना के समय पर ही नहीं अपितु उसके बाद आने वाले समय में, हमेशा के लिए आवयश्क था; और ऐसा करना केवल उक्त आशय की घोषणा करके नहीं, अपितु ऐसी पूर्णतया समर्थ सांविधिक संस्थाओं की स्थापना करके ही संभव हो सकता था, जिनके द्वारा निरन्तर सतर्कता सुनिश्चित हो सकती तथा

भ्रष्टाचारियों को शीघ्रातिशीघ्र कड़ा दंड दिया जा सकता। यदि सर्वोच्च स्तर पर ध्यान रखा जाता तो शुरू से ही इस सांविधिक तंत्र के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जा सकता था और समय के साथ-साथ सत्यनिष्ठा की इस परम्परा को अविवादित मान्यता प्राप्त हो सकती थी। हमारे नेताओं को यह स्वीकार करना चाहिए था कि भारत के करोड़ों लोगों की नज़र में समाजवादी सांचे में ढले आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाने वाले योजना आयोग की अथवा गुट-निरपेक्षता पर आधारित विदेश-नीति की उतनी आवश्यकता नहीं थी, जितनी कि सरकारी कामकाज में कुशलता और सत्यनिष्ठा की, जिनसे उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता। क्योंकि एक कुशल, ईमानदार और सुदृढ़ प्रशासन के बिना आर्थिक विकास की कोई योजना सफलतापूर्वक क्रियान्वित नहीं की जा सकती, और एक ऐसे देश को, जो भ्रष्टाचार से लथपथ हो तथा जहां घर में भूखे और निरक्षर लोग रहते हों, विदेशों में सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता।

भारत के लिए नए युग के आरंभ से ही एक कुशल और ईमानदार प्रशासन की आवश्यकता को समझने की बात कोई गुप्त मंत्र नहीं था। "दुनिया के सभी देशों के सभी लोगों के लिए एक अच्छी सरकार ज़रूरी है," ये शब्द सिंगापुर के संस्थापक, चमत्कारी प्रधानमंत्री ली क्वान यू के हैं जो उन्होंने 20, नवम्बर, 1992 को, टोक्यो में असाही फ़ोरम में अपने मुख्य भाषण में कहे थे। इसी सम्बोधन में उन्होंने एक ईमानदार, प्रभावी और कुशल सरकार के लिए आवश्यक 'मूल्यों' अथवा उद्देश्यों का उल्लेख निम्न शब्दों में किया था :

1. *जनता की समुचित देखरेख - उसके लिए भोजन, निवास, काम और स्वास्थ्य की व्यवस्था - ठीक ढंग से हो;*
2. *कानून के नियमों के अनुसार व्यवस्था और न्याय हो न कि व्यक्तिगत शासकों की मनमानी निरंकुशता। जाति, भाषा और धर्म के नाम पर लोगों में भेदभाव न बरता जाए। दौलत की चरम पराकाष्ठाएं न हों;*
3. *जितनी संभव हो, व्यक्तिगत स्वतंत्रता उपलब्ध हो, पर दूसरों की स्वतंत्रता का उल्लंघन किए बग़ैर;*
4. *अर्थव्यवस्था का विकास और समाज में प्रगति;*
5. *अच्छी और निरंतर सुधारोन्मुख शिक्षा;*
6. *शासकों और जनता के ऊंचे नैतिक स्तर;*
7. *अच्छा भौतिक ढांचा, मनोरंजन, संगीत, संस्कृति और कलाओं के लिए सुविधाएं, आध्यात्मिक और धार्मिक स्वतंत्रताएं और एक समग्र बौद्धिक जीवन।*[1]

ली क्वान यू के विचार में, तीसरी दुनिया की बहुत कम, प्रजातांत्रिक प्रणाली से चुनी हुई सरकारें इन मूल्यों के अनुसार चलती हैं। "पर", वे कहते हैं, "उनकी जनता चाहती यही है।" इन्हीं मूल्यों का दृढ़ता और दृढ़निश्चयपूर्वक पालन करते हुए ली क्वान यू ने सिंगापुर राज्य में आमूल परिवर्तन लाकर उसे एक दरिद्र, अलग-थलग पड़े उपनिवेश से बदल कर एक अत्यंत कुशल, ईमानदार और आर्थिक रूप से समृद्ध देश बना दिया है; हालांकि यह सच है कि क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से यह अपेक्षाकृत एक छोटा-सा देश है। परन्तु जिस बात को हम यहां देखने का प्रयास कर रहे हैं, वह यह है कि वे आधारभूत सिद्धांत कौन से हैं, जो छोटे या बड़े किसी भी देश के लोगों के लिए एक ईमानदार प्रशासन को, जोकि उनके कल्याण के प्रति समर्पित हो, सुनिश्चित बना सकते हैं। इस दृष्टिकोण से, ली क्वान यू के मूल्यों को ऐसे किसी भी विकासशील देश की सरकार के लिए त्रुटिरहित घोषणा-पत्र माना जा सकता है जो अपने औपनिवेशिक अतीत से उबर कर, एक स्वाधीन राज्य के रूप में अपनी जनता के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो।

स्पष्ट है कि 'अच्छी सरकार' ऐसे सभी विकासशील देशों का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए जो राजनीतिक शासन के लिए प्रजातांत्रिक पद्धति को अपनाते हैं। भारत के नए संविधान निर्माताओं ने सार्वजनीन वयस्क मताधिकार और गुप्त मतदान पद्धति पर आधारित सम्पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना की थी। यह एक विश्वास, साहस और आदर्शपरायणता का काम था। एक निर्धारित न्यूनतम स्तर तक मुफ्त शिक्षा की सभी के लिए उपलब्धता ऐसी राज्यव्यवस्था का अभिन्न अंग होनी चाहिए थी, ताकि समुचित समय-सीमा के भीतर जनता की एक विशाल बहुसंख्या में फैली निरक्षरता को दूर किया जा सकता। यदि इस प्रकार की शिक्षा नीति को अपनाया और क्रियान्वित किया गया होता तो उसके परिणामस्वरूप एक सच्चे और स्थायी प्रजातंत्र के लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती थी। ऐसे मतदाता जो निरक्षर और अशिक्षित हों, उन बेईमान ठगों का शिकार आसानी से बन जाते हैं जो प्रजातंत्र को छिन्न-भिन्न करने के लिए धनबल, बाहुबल और जातिबल का प्रयोग करते हैं। अपराधी और लुटेरे अथवा उनके द्वारा नामित व्यक्ति चुन लिए जाते हैं और वे ही देश की शासन व्यवस्था को चलाने के लिए नीतियां और कानून बनाते हैं। ऐसे में प्रजातंत्र एक मज़ाक बन कर रह जाता है। यदि आज भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भीषण भ्रष्टाचार व्याप्त है, यदि आज जाति और कालाधन निर्णायक घटक बन गए हैं, यदि योग्यता और सत्यनिष्ठा का आज कोई मूल्य नहीं रह गया और यदि वे राजनीतिज्ञ, जिन पर जघन्य अपराधों और/अथवा सार्वजनिक धन की भारी राशियों की धोखाधड़ी के आरोप हैं, आज मस्ती से ऐसे नेता बने घूमते हैं जो संसद या राज्य-विधान-सभाओं के लिए चुन लिए जाते हैं और देश की सरकार के भाग्य

को बना या बिगाड़ सकते हैं, तो इस सबका मुख्य कारण यह है कि वे मतदाताओं को बहका पाने में सफल हो जाते हैं, क्योंकि इन मतदाताओं का बहुत बड़ा भाग आज भी निरक्षर है। जनसाधारण को शिक्षित करने की अपर्याप्त व्यवस्था के कारण, वह अपनी नैतिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हैं और इसी के परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार के दानव ने भारत की राजनीतिक व्यवस्था को भयंकर मज़बूती से अपने पंजों में जकड़ा हुआ है।

उपरोक्त विषयान्तर के बाद, हम भारत में भ्रष्टाचार के विकास की कहानी की ओर लौटते हैं। 15 अगस्त 1947 को, जवाहरलाल नेहरू और उनके मंत्री भारत के राजनीतिक शासक बन गए। उन्हें पूरे अधिकार प्राप्त हो गए। इस समय पूरा भारत, भारतीय सिविल सेवा (आइसीएस) के सदस्यों के सुदृढ़ प्रशासनिक नियंत्रण में था। इसके बर्तानवी सदस्य अपनी जन्मभूमि को लौट गए थे और जो शेष थे, और भारतीय थे, उनमें से कुछ ने पाकिस्तान जाने का निर्णय किया। जो भारत में ही रह कर सेवानियुक्त रहे, उनकी संख्या काफ़ी थी तथा उस समय के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त थी। केन्द्रीय सचिवालय में मंत्रिमंडल के सचिव, विभिन्न मंत्रालयों में सरकार के सचिव तथा, कुछ अपवादों को छोड़ कर, सभी उपसचिव भी आइसीएस के सदस्य ही थे। प्रान्तों में (उस समय प्रदेशों को प्रान्त ही कहा जाता था), सब मुख्य सचिवों और प्रान्तीय सरकारों के लगभग सभी सचिवों के पदों पर भी आइसीएस के ही सदस्य थे। कुल मिलाकर, ये लोग, श्रेष्ठतम योग्यता तथा अनिन्द्य सत्यनिष्ठा सम्पन्न अधिकारी थे। मुझे इनमें से कई एक को जानने और उनके साथ काम करने का अवसर मिला है। मैं उनका अत्यंत आदर और प्रशंसा के साथ स्मरण करता हूं, उनकी उत्कृष्ट योग्यताओं के कारण ही नहीं अपितु काम के प्रति उनके सकारात्मक एवं सहायतापूर्ण दृष्टिकोण के कारण भी। अपने चालीस वर्ष के सरकारी जीवन में, विशेषकर उन सोलह वर्षों में जब मैं संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय नौपरिवहन संगठन (इंटरनैशनल मैरिटाइम आर्गेनाइज़ेशन) के महासचिव के पद पर लंदन में काम करता था, मुझे बहुत से विकसित और विकासशील देशों के नौकरशाहों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला है और मैं पूरी ईमानदारी से कह सकता हूं कि हर लिहाज़ से, आइसीएस के सदस्यों की तुलना संसार के सर्वश्रेष्ठ अधिकारियों के साथ की जा सकती थी। भारतीय सिविल सेवा के यही सेवक 'फ़ौलादी ढांचे' के रूप में प्रसिद्ध थे और उनके भीतर का फ़ौलाद अत्यंत तन्यतायुक्त था। स्वाधीनता से पूर्व, पंडित नेहरू ने आइसीएस (इंडियन सिविल सर्विस) के बारे में कहा था कि न तो यह 'इंडियन' (भारतीय) है, न 'सिविल' (सभ्य) है और न ही 'सर्विस' (सेवा) है। अब तो यह लांछन भी इस पर नहीं लगाया जा सकता था। 15 अगस्त 1947 को जितने लोग

पदों पर थे, वे सब भारतीय थे। वे निश्चित रूप से अत्यंत सभ्य थे, और योग्य थे, अपने देश की सेवा करने के लिए तत्पर और उत्सुक थे।

कार्यपालिका, पुलिस और न्याय प्रशासन का सारा तंत्र चुस्त-दुरुस्त था। यह अपनी कुशलता, विश्वसनीयता और, कुछ अपवादों को छोड़ कर, ईमानदारी के लिए प्रतिष्ठित था। कानून और व्यवस्था को बनाए रखने, तत्कालीन सामन्तवादी समाज की यथास्थिति को सुरक्षित रखने और न्याय-वितरण करने जैसे कामों के, जो कि इसके सुपुर्द थे, करने के लिए यह पर्याप्त था। महत्वपूर्ण निर्णय करने वालों की संख्या सीमित थी। वे स्वयं तो उच्चतम न्यायनिष्ठा वाले लोग थे ही, अपने अधीनस्थों में कार्यकुशलता एवं ईमानदारी के समुचित स्तर को सुनिश्चित करने की योग्यता भी उनमें थी। भारत को धरोहर में, अपने शहरी इलाकों में उच्चकोटि की शिक्षा व्यवस्था मिली थी और उसके शीर्ष पर कई अत्यंत प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय थे, इसके साथ-साथ एक कुशल रेल प्रणाली और विश्वसनीय डाक-तार व्यवस्था भी प्राप्त हुई थी, जो देश के सभी प्रदेशों को जोड़ती और उनकी सेवा करती थी। भारतीय प्रशासन नए भारत के आर्थिक विकास की चुनौती का सामना कर सके, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिस नए ढांचे के निर्माण की आवश्यकता थी, उसके लिए यह सारी विरासत, एक अत्यंत मज़बूत आधारशिला के रूप में उपलब्ध थी।

यह दायित्व भारत के नए शासकों का था कि वे ध्यानपूर्वक तत्कालीन नौकरशाही की क्षमताओं और योग्यताओं का अध्ययन करते, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता कि क्या वह एक ऐसी विकासोन्मुखी, समाजवादी अर्थव्यवस्था का भारी बोझ संभाल सकेगी, जिसमें राज्य को, अपने प्रशासन तंत्र के माध्यम से, एक सक्रिय तथा दैनन्दिन भूमिका निभानी होगी। यह स्पष्ट था कि संख्या की दृष्टि से उस समय विद्यमान तंत्र अपर्याप्त था और इसे काफ़ी सुदृढ़ बनाए जाने की आवश्यकता थी। इससे भी अधिक आवश्यक यह था कि उपलब्ध ढांचे, पदपरम्परा, प्रशिक्षण, कार्यविधियों और सरकारी सेवकों की अभिप्रेरणा के स्तर को गहराईपूर्वक जांचा-परखा जाता। पुरानी प्रशासन पद्धति, जिसका मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक प्रभुओं का हितसाधन करना था, लाल फीताशाही में बंधी हुई थी और 'जांच एवं संतुलन' पर आधारित थी। नए कल्याणपरायण समाज के लिए तेज़ निर्णय लेने के साथ-साथ पर्याप्त जवाबदेही को सुनिश्चित कर सकने वाली पद्धति की आवश्यकता पड़ने वाली थी।

इसके साथ-साथ उन नए सार्वजनिक औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के प्रबंधन का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न था जिन के बारे में सोचा जा रहा था। यह एक ऐसा क्षेत्र था जिसका तत्कालीन सरकारी अधिकारियों के पास न तो अनुभव था,

न उनको चलाने की विशेषज्ञता। इन नवनियोजित सरकारी प्रकल्पों के प्रबंधकों से ज़मीनी स्तर पर काम करने के साथ-साथ नई इकाइयों की योजना बनाने और उन्हें स्थापित करने की अपेक्षा भी की जाने वाली थी। आवश्यक था कि उनमें साहसपूर्वक पहलकदमी करने, शीघ्र निर्णय ले सकने और सोच समझकर जोखिम उठाने की योग्यता होती। इन उद्यमों की संस्कृति का सरकारी सचिवालयों की संस्कृति से भिन्न होना आवश्यक था। उस घड़ी, भारत के सामने जो काम था, उसमें कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्निहित थे : ऐसे समय पर जबकि यह देश एक केन्द्र-नियोजित और शीर्ष स्तर पर, राज्य-नियंत्रित, समाजवादी अर्थव्यवस्था की डगर पर चलने जा रहा है, क्या एक नई 'प्रबंधन सेवा' की आवयश्कता तो नहीं है जिसके अधिकारी व्यापार तथा उद्योग के तौर-तरीकों में प्रशिक्षित हों? भविष्य में, विभिन्न सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के संवर्गों के कर्मचारियों के वेतनमान क्या हों? ऐसी नियतकालिक - संभवतः वार्षिक - व्यवस्था क्या हो जिसके द्वारा प्रत्येक कर्मचारी की क्रयक्षमता के क्षरण को वेतन के पुनरवलोकन द्वारा रोका जा सके ताकि वह भ्रष्ट आचरण से बचा रह सके? सतर्कता और भ्रष्ट लोगों को त्वरित दंड देने के लिए न्यायिक और प्रशासनिक ढांचा कैसा हो?

इन तमाम प्रश्नों पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवयश्कता थी। परन्तु इस काम को नियमानुसार एवं क्रमबद्ध ढंग से नहीं किया गया। इस का परिणाम यह हुआ कि समय बीतने के साथ, नौकरशाही, जो कि उस समय भी पुराने ढर्रे की अभ्यस्त थी, विकास के मार्ग में बाधा बन गई। इसके साथ-साथ, वर्षों के अंतराल में, समयानुसार वेतनवृद्धि न होने के कारण, वेतन की क्रयक्षमता का जो क्षरण हुआ, उसने अनजाने ही भ्रष्टाचार के द्वार खोल दिए।

सौभाग्य से, सरकारी अधिकारी पहले से ही, उस समय की सरकार द्वारा, एक लम्बे समय से विकसित की गई कठोर आचार संहिता से बंधे थे। भ्रष्ट आचरण को रोकने के लिए, आचरण के विभिन्न पक्षों से संबंधित निम्नलिखित नियम और निर्देश समय समय पर जारी किए जाते रहे थे :

1. दूसरों को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से, उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा सरकार के अधीनस्थ किसी पद से, किसी आर्थिक ठहराव के अंतर्गत त्यागपत्र दिया जाना (1863);
2. राजपत्रित (1890) और अराजपत्रित (1869) अधिकारियों द्वारा ऋण लिया या दिया जाना;
3. उपहार स्वीकार करना (1876);
4. मकानों तथा अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति का ख़रीदना या बेचना (1881);

5. अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य कहीं निवेश करना अथवा सट्टेबाज़ी (1885);
6. निजी व्यापार या रोज़गार के व्यवसाय में लगी कम्पनियों को चलाना या उनका प्रबंध करना (1885);
7. सार्वजनिक सेवकों द्वारा चंदा इकट्ठा किया जाना (1885);
8. आदतन कर्ज़दार या दिवालिया होना (1885); और
9. सेवानिवृत्ति के बाद व्यावसायिक रोज़गार स्वीकार करना (1920)।[2]

इन सभी व्यापक और सोचे-समझे नियमों और निर्देशों को संगृहीत कर तथा इनमें सुधार करके इन्हें सरकारी सेवकों के लिए एक आचार संहिता के रूप में निबद्ध कर दिया गया था।

भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1947 के पास हो जाने पर, सरकारी कर्मचारियों से संबंधित भ्रष्टाचार विरोधी तंत्र को और दृढ़ किया गया। नई सरकार ने जो अन्य उपाय किए, उनमें गृह मंत्रालय में प्रशासनिक सतर्कता प्रभाग की स्थापना, सभी मंत्रालयों और विभागों में सतर्कता अधिकारियों की नियुक्ति और दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान को सुदृढ़ करना, जिसका उद्देश्य सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार की शिकायतों की जांच करना और दोषी पाए जाने पर, उनको दण्डित करने की अनुमति प्राप्त करना था, शामिल थे। इस प्रकार जहां तक सरकारी अधिकारियों का संबंध है, सत्यनिष्ठा को बनाए रखने का आधारभूत तंत्र सुस्थापित हो चुका था। अब आवश्यक यह था कि इसे प्रभावी तरीके से चलाया जाता ताकि ईमानदार कर्मचारियों को किसी प्रकार की परेशानी न होती।

यहां तक तो ठीक था, परन्तु मुख्य समस्या राजनीतिज्ञों के आसानी से भ्रष्ट होने की संभावना की थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ से तुरंत पहले प्रान्तीय स्तर पर गठित लोकतंत्रीय मंत्रालयों के अनुभव से यह साफ़ हो चुका था कि राजनीतिज्ञ तो प्रलोभन के आगे टिक ही नहीं सकते। विकास के समाजवादी मॉडल के अंतर्गत उन्हें जो व्यापक राजनीतिक और आर्थिक शक्ति मिलने वाली थी, उसके चलते विधायकों और मंत्रियों के भ्रष्टाचार के कीड़े द्वारा डसे जाने की पूरी संभावना थी। इसी संभावना से महात्मा गांधी विचलित हुए थे और उन्होंने खरे-खरे शब्दों में इसकी सार्वजनिक चेतावनी दी थी।

महात्मा गांधी ने साहस के साथ भ्रष्टाचार के जिस घातक और अनिष्टकारी स्वरूप को साफ़-साफ़ देखा और पीड़ा का अनुभव किया था, उससे नए शासकों को तो और भी अधिक विचलित होना चाहिए था क्योंकि मुख्य रूप से राज्य-स्वामित्व वाली और राज्य-नियंत्रित उस अर्थव्यवस्था के प्रवर्तक वही थे और इस समय उसके कारण पनप रही प्रवृत्तियों के लिए स्पष्ट रूप से वही उत्तरदायी थे।

आर्थिक गतिविधियों के तेज़ विकास और धन के अधिक मात्रा में प्रचलन से भ्रष्टाचार के अनगिनत अवसर आने वाले थे। उस समय भी, यह तो साफ़ दिखाई देना चाहिए था कि यदि राजनीतिज्ञों के लिए भी उस परिदृश्य के आरंभ में ही रोकथाम के सुनिश्चित उपाय न किये गए, तो भ्रष्टाचार का दानव सिर उठाएगा और नियंत्रण से बाहर हो जाएगा।

यद्यपि आज यह विश्वास करना कठिन है, पर नई सरकार ने गांधी जी की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया और राजनीतिज्ञों में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए किसी तंत्र की स्थापना नहीं की। इस विषय पर विचार करने के लिए और अपनी उचित अनुशंसाएं प्रस्तुत करने के लिए न्यायविदों या न्यायाधीशों की एक समिति नियुक्त की जा सकती थी या फिर स्थायी सरकारी अधिकारियों से सरकार के विचारार्थ कुछ प्रस्ताव तैयार करने के लिए कहा जा सकता था। ऐसा कुछ भी नहीं किया गया।

न ही नए युग की शासन-संबंधी विचारधारा में राजनीति और सार्वजनिक जीवन के दूसरे पक्षों में गांधी जी के सत्य और नैतिकता के सिद्धान्तों को कोई विशेष स्थान दिया गया। गांधी जी के बाद के परिदृश्य में राष्ट्रीय-उन्नति और साम्प्रदायिक सद्भाव का मूल मंत्र 'धर्म निरपेक्षता' था, पर सच तो यह है कि इस अवधारणा का प्रचार और व्यवहार जिस रूप में हुआ, उससे राजनीतिज्ञों के बीच भ्रष्टाचार से लड़ने या, कम से कम, उसे बढ़ावा न देने में कोई मदद नहीं मिल सकी।

जैसा कि भारतीय गणराज्य के संविधान में प्रतिष्ठापित है, धर्मनिरपेक्षता के तीन अंग हैं। पहला, भारत का कोई शासकीय धर्म नहीं है; दूसरा, धर्म प्रत्येक व्यक्ति का निजी मामला है; और तीसरा, अन्य बातों के साथ साथ, धर्म के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं बरता जाना चाहिए। यह सब सर्वथा उचित था क्योंकि कई धर्मों वाले समाज में सभ्य ढंग से जीने का एकमात्र रास्ता यही है। नेहरू ने देश के बहुसंख्यक हिन्दू समाज से यह उचित अनुरोध किया था कि वे साम्प्रदायिकता (अर्थात् धर्म के आधार पर वैमनस्य की भावना) से दूर रहें और अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के लिए ऐसा वातावरण बनाएं जिससे उनके मन में धीरे-धीरे यह विश्वास सुदृढ़ हो सके कि उन्हें नए भारत के निर्माण में समान भागीदार के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।[3]

उस समय की प्रथम आवश्यकता यह थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों के मन से सम्प्रदायवाद के विभाजक विष को समाप्त किया जाता और उसके स्थान पर नैतिकता के उन मूल्यों के अमृत को प्रवाहित किया जाता, जो कि मूल और मुख्य रूप से दोनों समुदायों में समान हैं। जो हिन्दुओं के लिए धर्म और सत्य आचरण है, वही मुसलमानों के लिए 'दीन' या 'नीतिगत' आचरण है। इस प्रकार, 'नैतिक

धर्मनिरपेक्षता' हिन्दुओं और मुसलमानों ही नहीं, अपितु सभी समुदायों को एक सर्वसामान्य मंच प्रदान कर सकती थी। स्पष्ट तौर पर समस्या यह थी कि एक सूत्र में बांधने और जोड़ने वाले नैतिक तत्त्व के बिना, धर्मनिरपेक्षता में एक ऐसे बिखरे हुए निर्नैतिक समाज और निर्नैतिक राज्यतंत्र का सृजन करने की संभावनाएं थीं जो, बिना लंगर के उस जहाज़ की तरह, बहता-भटकता रहता, जिसके पास किसी के लिए कोई सर्वमान्य या सर्वस्वीकृत, नैतिक, सामाजिक या राजनीतिक आचार-संहिता न हो।

ऐसी परिस्थिति में एक बड़े लोकापवाद को जन्म लेने में अधिक समय नहीं लगा : इसमें एक प्रमुख, प्रसिद्ध और सम्मानित व्यक्ति, वी.के. कृष्णमेनन् जो उस समय लंदन में भारत के उच्चायुक्त थे, आरोपों के भंवर में फंसे पाए गए। 1947 में, कश्मीर में भारत-पाकिस्तान संघर्ष के दौरान, उस क्षेत्र में उपयोग के लिए 4000 जीपों की तुरंत आवश्यकता थी। इन में से कुछेक संयुक्त राज्य अमेरिका से प्राप्त की गईं। शेष के लिए, लंदन में भारत के उच्चायुक्त से अनुरोध किया गया कि वे ब्रिटेन के युद्ध-कार्यालय से किसी उपयुक्त आपूर्तिकर्ता के बारे में सहायता मांगें। भारतीय उच्चायुक्त ने तुरन्त पुरानी, मरम्मत की हुई 2000 जीपों और तीन साल तक के लिए कलपुर्ज़ों की खरीद के आदेश दे दिये। इस अनुबंध की शर्त यह थी कि इन जीपों की आपूर्ति, अनुबंध पर हस्ताक्षर किए जाने के छः सप्ताह के भीतर शुरू कर दी जाएगी और 5 महीनों के भीतर उसे पूरा कर दिया जाएगा।

इसके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन एस.एस. गिल की पुस्तक, *द पेथॉलॉजी ऑफ़ करप्शन* के निम्नांकित अंश में किया गया है :[4]

इस सौदे के दो पक्षों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहला यह कि आपूर्तिकर्ता लगभग सभी मुख्य प्रतिज्ञाओं से मुकर गया। दूसरे, उसकी कठिनाइयों को असाधारण सीमा तक स्वीकार कर लिया गया। कृष्णमेनन् ने इस अनुबंध का परीक्षण अपने किसी वित्तीय और कानूनी सलाहकार से नहीं कराया। यह किसी प्रामाणिक फ़ॉर्म पर नहीं था, कोई प्रतिभूति राशि नहीं थी, जुर्माने अथवा अनुबंध समाप्ति से होने वाले नुकसान के बारे में कोई व्यवस्था नहीं थी। जीपों का लदान अगस्त में आरंभ हो कर दिसम्बर 1948 तक पूरा होना था। मार्च 1949 में अर्थात् कश्मीर में युद्ध विराम घोषित होने के दो महीने बाद, केवल 155 मरम्मत की हुई जीपें मद्रास पहुंचीं। इस छोटी-सी खेप को भी सेना ने बेकार घोषित कर दिया। इसके बाद और कोई आपूर्ति नहीं की गई।

अनुबंध के अनुसार, पूरे भुगतान का 65 प्रतिशत, मरम्मत की गई जीपों के निरीक्षण प्रमाणपत्र के प्राप्त हो जाने के बाद किया जाना था। पर यह राशि अनुबंध पर हस्ताक्षर किए जाने के एक महीने के बाद ही अदा कर दी गई और वह भी

बिना किसी प्रकार के निरीक्षण के। इतना ही नहीं जिस एजेंसी को निरीक्षण करने के लिए मूल रूप से नामित किया गया था, उसे भी आपूर्तिकर्ता के आग्रह पर बदल दिया गया। यद्यपि वाहन पुराने और मरम्मतशुदा थे, फिर भी उन में से केवल 10 प्रतिशत का वास्तव में परीक्षण किया गया था। हालांकि प्रतिरक्षामंत्री को बता दिया गया था कि कल-पुर्जों की आपूर्ति तीन वर्ष की आवश्यकता को ध्यान में रख कर की जाएगी, अनुबंध में उक्त संख्या को घटा कर उसका 10 प्रतिशत मात्र रहने दिया गया था।

जीप-स्कैंडल कोई अकेली घटना नहीं थी। अन्य संदेहास्पद बातें भी थीं। इस पर प्रकाश डालते हुए चंदन मित्रा कहते हैं :

> लंदन में कृष्णमेनन् की खरीददारियों के शौक से जुड़े लोकापवादों का एक और अंधेरा पहलू उनके लगभग हर सौदे में ई.एच. पौटर नाम के एक व्यक्ति की मौजूदगी था। वह चार ऐसी कंपनियों का प्रतिनिधि था जिनके साथ उच्चायोग ने करोड़ों रुपयों का व्यापार किया था। पौटर केवल उस आपूर्तिकर्ता का प्रतिनिधि ही नहीं था, जिसने भारत को लोहे के 155 रद्दी टुकड़े, मरम्मत की गईं जीपों के नाम से बेच कर ठगा था, बल्कि वह उन राइफ़लों और अस्त्र-शस्त्रों की खरीद का माध्यम भी था जिनकी आपूर्ति में अन्तहीन विलंब हुआ और वे कश्मीर उस समय नहीं पहुंच सके जब वहां उनकी सख्त ज़रूरत थी। कृष्णमेनन् ने जिस उत्साह के साथ पौटर के 32 मिशेल बमवर्षक वायुयानों का सौदा करवाने के प्रस्ताव पर प्रतिक्रिया व्यक्त की थी, वह भी समझ से परे था। यह तो अच्छा हुआ कि इस सौदे से संबंधित बातचीत इतनी लम्बी खिंची कि दिल्ली स्थित प्रतिरक्षामंत्रालय इससे तंग आ गया और इसे रद्द कर दिया गया। इस प्रकार एक और संभावित घोटाला होने से बच गया। परन्तु इस के बावजूद पौटर मेनन् का कृपापात्र एजेंट बना रहा और बाद में उसने उच्चायुक्त को शस्त्रास्त्रों के एक असफल सौदे के बदले चार लाख पाउंड की कीमत की इस्पात की प्लेटें खरीदने के लिए राज़ी कर लिया।[5]

जी.एस. भार्गव और एस.एन. द्विवेदी ने भी कृष्णमेनन् द्वारा किए गए सभी सौदों में ई.एच. पौटर के विद्यमान होने पर यह टिप्पणी की है : "उस पर कृष्णमेनन् की अनन्त कृपा के चलते, पौटर जब भी अपनी पिछली वचनबद्धता का निर्वाह करने में असफल होता, उसे एक ताज़ा, पहले से भी रसीला अनुबंध प्राप्त हो जाता था।"[6]

कृष्णमेनन् भारत के अग्रणी बौद्धिक व्यक्तियों में से थे। उनकी जीवनशैली अत्यंत सादा थी, आचरण दर्पपूर्ण था और वाणी कटुता भरी। इसी कारण उनके बहुत से मित्र नहीं थे। उनके अपने ही दल में कई लोग ऐसे थे जो उन्हें मज़ा चखाना चाहते थे। जीपों की ख़रीद में, कार्यविधि की अनियमितताओं के कथित

आरोपों और, अन्ततः, जीपों की आपूर्ति में अपमानजनक असफलता से एक भयंकर लोकापवाद उठा और इस मामले को लेकर संसद तथा प्रेस में बहुत हंगामा हुआ। सांसदों की एक सर्वोच्च संस्था, सार्वजनिक लेखा समिति ने, जो सरकारी खर्चों की जांच करती है, मामले की छानबीन की और सिफ़ारिश की कि उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों की एक समिति सारे मामले की गहराई से जांच करे जिससे यह पता चल सके कि कहां पर और क्यों यह गड़बड़ हुई है। खेद की बात है कि सरकार ने इस सिफ़ारिश को नहीं माना। यही नहीं, सार्वजनिक लेखा समिति से यह कहा गया कि 'वह अपनी पहली सिफ़ारिशों पर फिर से विचार करे'। परन्तु समिति अपनी सिफ़ारिशों पर अटल रही। एक और रिपोर्ट में समिति ने सरकार के इस मताग्रह की आलोचना करते हुए इसे अनुचित कहा। समिति ने उच्चायुक्त द्वारा बरती गई अनियमितताओं पर फिर से ध्यान आकर्षित किया और, वस्तुतः, अपनी पहली सिफ़ारिश को ही दुहराया।

वास्तविक बात यह थी कि प्रधानमंत्री नेहरू कृष्णमेनन् का हृदय से अत्यंत आदर करते थे, न केवल उनकी देशभक्ति तथा असाधारण योग्यताओं के कारण अपितु उनकी सत्यनिष्ठा के लिए भी। अतएव, नेहरू के लिए यह कतई स्वीकार्य नहीं था कि कृष्णमेनन् व्यक्तिगत रूप से किसी वित्तीय अपराध में संलिप्त हो सकते हैं या कि फिर यह मामला उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा जांच किए जाने योग्य है। इसलिए सरकार ने घोषणा की कि आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी और इस मामले को बंद समझ लिया गया है।

यदि मुड़ कर देखें, तो सार्वजनिक लेखा समिति जैसी महत्वपूर्ण संस्था की इस दोहरी सिफ़ारिश को, कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा जीपों के मामले की जांच कराई जाए, ठुकराने का नेहरू का व्यक्तिगत निर्णय अत्यंत अविवेकपूर्ण और दुर्भाग्यपूर्ण था। क्योंकि यदि इस प्रकार की जांच की जाती, तो कृष्णमेनन् के संबंध में भले ही कुछ भी निष्कर्ष निकलते, न्यायाधीश निस्संदेह ऐसी सुस्पष्ट अनुशंसाएं तो करते ही जिनसे सरकारी खरीददारी में ईमानदारी, पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित हो पाती, संभव है कि वे ऐसी अनुशंसाएं पूरे सरकारी प्रशासन के कामकाज के संबंध में भी करते। 1950 के दशक के आरंभ में ही इस प्रकार की अनुशंसाओं के परिणामस्वरूप, संभवतः सरकारी पदों पर बैठे, राजनीतिक श्रेणी के लोगों के लिए आचार संहिताओं की उद्घोषणा हो जाती और वे लागू हो जातीं। और इस प्रकार सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी का नया चलन आरंभ हो सकता। इस अवसर को खो दिया गया, और जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, इसके परिणाम विनाशकारी सिद्ध हुए।

उस समय नेहरू का यह स्पष्ट मत था कि ऊंचे पदों पर बढ़ते भ्रष्टाचार की

ऐसी सब बातें दुर्भावनापूर्ण गपबाज़ी के अतिरिक्त कुछ नहीं है और यदि इस पर अंकुश नहीं लगाया गया तो इस बात की पूरी संभावना है कि अपनी ही की हुई भविष्यवाणी कल को अनिवार्यतः सत्य सिद्ध हो जाए। *एशियन ड्रामा* नामक पुस्तक में गुन्नार मिर्डल के कथनानुसार, "भ्रष्टाचार की लोकप्रचलित कहानियां बाद में अपने लिए ही हानिकारक बन जाती हैं क्योंकि इनसे भ्रष्टाचार की व्यापकता के संबंध में, विशेषकर उच्च पदों पर इसके प्रसार के बारे में, लोगों के मन में अतिशयोक्तिपूर्ण धारणा बन जाती है। यह तय है कि नेहरू इस प्रकार की धारणा को समर्थन दिये जाने से डरते थे और इसी कारण वे लगातार उन मांगों का विरोध करते रहे जिनका संबंध उनकी सरकार और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने के साहसपूर्ण और क्रमबद्ध प्रयासों के साथ था।"[7] इस विवादास्पद प्रश्न पर, नेहरू के दृष्टिकोण का इससे भी अधिक खरा स्पष्टीकरण, नेहरू के अपने ही शब्दों में यह है : "घरों की छतों पर खड़े होकर केवल चिल्लाते रहना कि प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्ट है, भ्रष्टाचार के वातावरण का ही सृजन करता है", उन्होंने कहा था, "लोग सोचने लगते हैं कि वे भ्रष्टाचार के वातावरण में जी रहे हैं और स्वयं भी भ्रष्ट हो जाते हैं। एक आम आदमी सोचने लगता है, 'यदि हर कोई भ्रष्ट दिखाई देता है, तो मैं भी क्यों न भ्रष्ट बन जाऊं?' इस प्रकार का वातावरण बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है और इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।"[8]

पर दुर्भाग्यवश, ज़मीनी सचाई यह थी कि 1950 के दशक के आरंभ में ही वरिष्ठ राजनीतिज्ञों तक में पनप रहा भ्रष्टाचार सामने आने लगा था। उस समय आवश्यकता इस बात की थी कि दूरदृष्टि से इस बात को समझा जाता कि यदि इस बुराई को अभी जड़ से न काट दिया गया तो आने वाले वर्षों में यह एक दैत्याकार समस्या बन जाएगी और राज्य के प्रत्येक अंग को छूने लगेगी। नई सरकार अपने इस उत्तरदायित्व की ओर आंखें मूंदे नहीं रह सकती थी। कम से कम निम्नलिखित उपाय तो वह कर ही सकती थी और उसे उन्हें करना चाहिए था :

1. प्रदेशों की विधायिकाओं के सदस्यों, संसत्सदस्यों तथा प्रदेशों एवं केन्द्रीय मंत्रियों के लिए स्पष्ट, सुनिश्चित और नैतिक आचार संहिताओं को बनाना और उद्घोषित करना।
2. निरंतर सतर्कता को बनाए रखने के लिए एक स्वतंत्र और उच्चस्तरीय तंत्र की स्थापना करना।
3. अपराधों के संज्ञान के लिए उचित कानून बनाना और न्यायिक प्रक्रिया पूरी होने पर भ्रष्टाचार के लिए दोषी पाए जाने वालों को दंड देना।
4. सरकारी कामकाज के निर्धारण में यह सुनिश्चित करने की विशेष व्यवस्था करना कि आचार संहिता का दृढ़ता से पालन हो, कि सतर्कता-

तंत्र वस्तुनिष्ठता और निर्भीकता से अपना काम करे और यह भी कि आचार संहिता अथवा भ्रष्टाचार संबंधी कानून का उल्लंघन करने पर उचित दंड की व्यवस्था तुरंत हो।

5. दूसरी ओर यह सुनिश्चित किया जाए कि ईमानदार सरकारी कर्मचारियों को अनाम या छद्मनाम शिकायतों के कारण परेशान न किया जाए और जो लोग बिना मतलब शिकायत करते हैं, अथवा जो जांच अधिकारी दुर्भावना से काम करते हैं, उन्हें दंड दिया जाए।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध ऐसी व्यवस्था के रहते, राजनीतिज्ञों और सरकारी अधिकारियों में भ्रष्टाचार को शुरू से ही प्रभावी ढंग से रोका जा सकता था और इस राष्ट्रीय बुराई के अनर्थकारी फैलाव को निष्फल बनाया जा सकता था। ऐसा न करने का परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक वर्ग में भ्रष्टाचार चुपके-चुपके फैलता चला गया और 1950 के दशक के अंत तक कैबिनेट मंत्रियों तथा एक मुख्यमंत्री के विरुद्ध भ्रष्टाचार के कई मामले सामने आ गए। उनको तदर्थ आधार पर निपटा दिया गया।

पर यह साफ़ दिखाई दे रहा था कि राजनीतिक वर्ग के सदस्यों में भ्रष्टाचार गंभीर रूप से फैल रहा है और यदि इस संकट पर उस समय भी बाकायदा विचार न किया गया तो राष्ट्रीय प्रशासन के लिए इसके परिणाम घातक होंगे। 1961 में लाल बहादुर शास्त्री गृहमंत्री बने और इस प्रकार, अन्य बातों के अतिरिक्त, सरकारी प्रशासन और राज्यव्यवस्था में सत्यनिष्ठा की ज़िम्मेदारी उन पर आ गई। शास्त्री इस प्रश्न को लेकर बहुत चिंतित थे और उन्होंने प्रधानमंत्री को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि एक उच्चस्तरीय कमेटी का गठन किया जाए जो भ्रष्टाचार की समस्या का गहराई से अध्ययन करे और सरकारी गतिविधियों की सारी शृंखला में सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित बनाने के लिए उचित अनुशंसाएं प्रस्तुत करे। 1962 में शास्त्री ने ऐसी कमेटी का गठन कर दिया तथा उन्होंने नेहरू के अधीन गृहमंत्री और फिर भारत के दूसरे प्रधानमंत्री के रूप में व्यक्तिगत तौर पर इस महत्वपूर्ण मामले पर ध्यान दिया। इस संबंध में आगे जो कुछ हुआ, उसकी चर्चा अगले अध्याय में की जाएगी।

इस अध्याय को समाप्त करते समय, भारत के संस्थापक पितृपुरुष के रूप में नेहरू की अद्वितीय उपलब्धियों का एक बार फिर उल्लेख करना आवश्यक है। नेहरू ने भारत को वयस्क मताधिकार और गुप्त मतदान प्रणाली पर आधारित धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र दिया। उन्होंने एक भारी औद्योगिक आधार को सुनिश्चित बनाया। यदि भारत आज भारी टैंक, हवाई जहाज़, प्रक्षेपास्त्र तथा अन्य अत्याधुनिक संयंत्र बनाने में सक्षम है तो यह नेहरू की भविष्य-दृष्टि का ही परिणाम है। उन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की संस्कृति को बढ़ावा दिया और भारत को विश्वस्तरीय

तकनीकी कार्मिकों का सबसे बड़ा भंडार बनाया। उन्होंने औपनिवेशिक अतीत से उभरते हुए विश्व के सभी नए स्वाधीन राज्यों के बीच गुट निरपेक्षता की अवधारणा को बढ़ावा दिया और 1950 के दशक में अपने तथा भारत के लिए विश्व के रंगमंच के केन्द्र में स्थान बनाया। ये ऐतिहासिक उपलब्धियां हैं और इन के कारण वे भारतीय जनता के अद्वितीय नायक बने। इन्हीं उपलब्धियों के कारण, महात्मा गांधी के बाद बीसवीं शताब्दी के महान्तम भारतीय भी वे ही हैं।

यदि धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और गुट निरपेक्षता की तीन मूल अवधारणाओं के साथ-साथ नेहरू ने व्यक्तिगत रूप से सत्यनिष्ठा के सिद्धान्त को अपनाया होता तथा धर्म की प्राचीन धरोहर तथा गांधी जी द्वारा संस्वीकृत सत्य और नैतिकता के सिद्धान्तों को आधार बना कर निर्माण का कार्य आरंभ किया होता तो वे एक ऐसे भारत की स्थापना कर सकते थे जिसके लिए आज प्रत्येक भारतीय तरस रहा है। ऐसा करके वे उन ऐतिहासिक दायित्वों को और अधिक सम्पूर्णता के साथ निभा सकते थे जो उन्हें स्वाधीनता संग्राम में उनकी भूमिका ने, नियति ने, महात्मा गांधी ने और भारतीय जनता ने सौंपे थे।

नेहरू ने क्यों व्यक्तिगत रूप से यह सुनिश्चित नहीं किया कि देश में ईमानदार और कार्य कुशल प्रशासन की स्थापना हो और ऐसे कार्यक्रमों का अनुपालन नहीं किया जो कि प्रत्यक्षतः गरीबी से पीड़ित भारत की साधारण जनता के कल्याण के लिए और इस देश के नवजात प्रजातंत्र को उपयुक्त रूप से चलाने के लिए अत्यावश्यक थे? इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सब बातें नेहरू सरकार के गृहमंत्री तथा अन्य कैबिनेट मंत्रियों के सीधे अधिकार में थीं। वे सब स्वयं श्रेष्ठ राजनीतिक नेता थे और मुख्य रूप से यह सुनिश्चित करना उनका काम था कि प्रशासन में ईमानदारी और कार्यकुशलता का चलन हो। जनता के हित से संबंधित महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को लागू करना भी उन्हीं की ज़िम्मेदारी थी। फिर भी प्रधानमंत्री और देश के नेता होने के नाते नेहरू का यह अनपहार्य उत्तरदायित्व था कि वे समय समय पर समुचित पूछताछ के द्वारा जानकारी प्राप्त करके यह सुनिश्चित करते रहते कि प्रत्येक मंत्री अपना काम कुशलतापूर्वक तथा समग्र रूप से करता रहे। और यदि वे राज्य के दूसरे कामों में पूरी तरह व्यस्त न होते तो निस्संदेह वे ऐसा करते। जैसा कि हम जानते हैं, नेहरू भारत की जनता के साथ पूरे ह्रदय से प्यार करते थे और उन्होंने पूर्ण रूप से उसकी सेवा में स्वयं को समर्पित कर रखा था। वे प्रतिदिन देर तक काम करते थे, प्रायः आधी रात तक और कभी-कभी तो सुबह होने तक भी! देश के किसी नेता से इस से अधिक की अपेक्षा कोई नहीं कर सकता था। नेहरू के समय पर अपरिमित दबाव था। प्रधानमंत्री और एक ऐसे देश के नेता होने के नाते, जिसकी समस्याएं असंख्य थीं, नेहरू के हाथ काम से सदा भरे रहते थे। इसके

अतिरिक्त उनके अपने राजनीतिक दल, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अंतिम ज़िम्मेदारी भी उन्हीं पर थी। इन सब के ऊपर उन्होंने स्वयं को विदेशी मामलों का कैबिनेट मंत्री भी बना रक्खा था। यह भी एक महत्वपूर्ण और, वास्तव में, पूर्णकालिक उत्तरदायित्व था। इन सब ने उन पर ज़िम्मेदारियों का असंभव बोझ डाल रक्खा था। यह बात तो बिल्कुल युक्तिसंगत मानी जा सकती है कि नेहरू अपनी विदेश-नीति के आधारभूत नियमों को स्वयं निर्धारित करना और उनको अपने निर्देशों के अनुसार प्रभावी रूप से क्रियान्वित करना चाहते थे। पर क्या यह भी आवश्यक था कि वे इस दैनन्दिन बोझ को अपने प्रधानमंत्रित्व के सत्रह वर्षों तक अपने ही कंधों पर ढोते रहते?

एक वैकल्पिक परिदृश्य की कल्पना करें। यदि आरंभ के कुछ समय, लगभग एक वर्ष बाद, नेहरू ने विदेशी मामलों का दायित्व अपने कंधों से उतार कर, अपने किसी विश्वासपात्र व्यक्ति के हाथ सौंप दिया होता? नेहरू के लिए यह व्यवस्था कहीं अधिक प्रभावकारी रहती और संभवतः देश के लिए भी अधिक लाभदायक सिद्ध होती। और उपयुक्त व्यक्तियों की कमी नहीं थी। बी.के. नेहरू एक उत्कृष्ट विदेश मंत्री साबित होते। वे नेहरू तथा उनकी विदेश नीति के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के प्रति पूर्णतया समर्पित और निष्ठावान् थे। ऐसा अकारण नहीं है कि विश्व के प्रत्येक देश का, कम से कम प्रत्येक महत्वपूर्ण देश का, एक पूर्णकालिक विदेश मंत्री होता है जो अपने मंत्रालय का कामकाज अपने शासनाध्यक्ष के साथ पूरे दैनन्दिन तालमेल के साथ चलाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत, विदेश मंत्री बाहर से आने वाले विदेश मंत्रियों का स्वागत कर सकता है और समयाभाव की चिन्ता के बिना पारस्परिक हितों के विषयों पर वार्तालाप कर सकता है। एक प्रधानमंत्री-सह-विदेशमंत्री ऐसा काम सुविधाजनक वातावरण में नहीं कर सकता। इसके साथ ही, एक पूर्णकालिक विदेशमंत्री अपने देश की विदेश नीति के हितों को सम्पादित करने के उद्देश्य से आवश्यकतानुसार, कई बार, विदेशों की यात्रा भी कर सकता है और जब वह ऐसा करता है तब संबंधित देश का विदेशमंत्री और प्रायः वहां के शासनाध्यक्ष उसकी अगवानी करते हैं। केवल इसी तरीके से इस बात को सुनिश्चित किया जा सकता है कि दूसरे देश, शीर्ष स्तर पर किसी देश के विदेशनीतिगत हितों और उद्देश्यों को विस्तारपूर्वक, उसकी बारीकियों के साथ, जान और समझ सकें। एक प्रधानमंत्री-सह-विदेशमंत्री इस प्रकार की दौड़-भाग कभी नहीं कर सकता। यदि वह कभी अपने किसी तदर्थ सहयोगी को भेजता भी है तो दूसरे स्थान पर उसकी अगवानी उस प्रकार की कभी नहीं हो सकती जैसी कि एक नियमित विदेशमंत्री की होती है। उधर नाज़ुक एवं आपात्कालिक परिस्थितियों में प्रधानमंत्री अपना देश छोड़ कर जा नहीं सकता जबकि वास्तव में

ऐसे ही समय में विदेशमंत्री के लिए विदेशों में जाकर वहां के विदेशमंत्रियों को उस संकट के विषय में अपने देश के दृष्टिकोण से अवगत कराना आवश्यक होता है। हाल ही के दो उदाहरणों को लें। कारगिल में, जून 1999 में, युद्ध जैसी परिस्थितियों के बीच, विदेशमंत्री जसवंत सिंह चीन गए और स्थिति की पूरी सचाई के बारे में चीन के विदेशमंत्री से व्यक्तिगत बातचीत के लिए मिले। इसका परिणाम भारत के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। जुलाई 1999 में जसवंत सिंह ने फिर एशिया-प्रशान्त-फ़ोरम की महत्वपूर्ण बैठक में भाग लिया और कई अन्य महत्वपूर्ण देशों के भाग ले रहे विदेशमंत्रियों से विस्तारित बैठकें कीं। इसके परिणामस्वरूप, पाकिस्तान द्वारा पैदा किए गए संघर्ष पर भारत के दृष्टिकोण को पूरा समर्थन और प्रशंसा प्राप्त हुई। उस आपात्काल में यदि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के पास विदेश मंत्रालय का उत्तरदायित्व भी होता तो वे तो शायद कुछ घंटों के लिए भी देश को छोड़ कर नहीं जा सकते थे। ऐसी परिस्थिति में देश के हितों को नुकसान हो सकता था। इस प्रकार यह अत्यंत आवश्यक है कि भारत का एक पूर्णकालिक विदेशमंत्री हो जो, निस्संदेह, प्रधानमंत्री की इच्छाओं के अनुरूप ही काम करे।

नेहरू के युग में तो ऐसी व्यवस्था और भी अधिक आवश्यक थी। एक तो इससे नेहरू विदेश मंत्रालय के बहुत से ऐसे परिहार्य काम के बोझ से मुक्त रहते जो विदेश मंत्री के स्तर पर ही निपटाया जा सकता था। इससे नेहरू को देश के अनेक अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों - प्रशासन में सत्यनिष्ठा और कुशलता, शिक्षा में उत्कृष्टता, ग़रीबी में फंसे जनसाधारण को राहत, प्रत्येक गांव में स्वच्छ पेय जल, कृषि में हरित-क्रान्ति आदि - पर ध्यान देने का समय मिल जाता। दूसरे, भारत का एक पूर्णकालिक विदेशमंत्री, संयुक्त राष्ट्रसंघ में आम विदेशी मामलों, और विशेषकर कश्मीर के मामले को संभवतः तदर्थ भारतीय प्रतिनिधियों की अपेक्षा कहीं अधिक आधिकारिक एवं प्रभावकारी ढंग से संभाल सकता। कुल मिला कर, यदि नेहरू अपने ऊंचे आदर्शवाद, असीम मानवीयता और सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा के साथ भारत के आंतरिक मामलों के लिए कुछ और समय निकाल पाते, तो इस बात की पूरी संभावना थी कि वे अपने उत्तराधिकारियों को विरासत में एक अपेक्षाकृत ईमानदार, कुशल और योग्य भारत सौंप कर जाते। पर यह स्वप्न सच नहीं हो पाया।

अंत्यसंकेत

1. हैन फ़ूक क्वांग, वारन फर्नान्डिज़ और सुमिको तान, *ली क्वान यू - द मैन एंड हिज़ आइडियाज़*, टाइम्स एडिशन्ज़ प्राइवेट लिमिटेड, सिंगापुर, 1998, पृष्ठ 380।
2. *भ्रष्टाचार निवारण पर के. सन्तानम् कमेटी की रिपोर्ट*, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, 31 मार्च, 1964, पृष्ठ 25।
3. एस. गोपाल, *जवाहर लाल नेहरू - ए बायोग्राफ़ी*, ऑक्सफ़ोर्ड इंडिया पेपर बैक्स, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 460।
4. एस.एस. गिल, *द पैथालॉजी ऑफ़ करप्शन*, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्ज़ इंडिया (प्रा.) लि., 1998, पृष्ठ 48।
5. चंदन मित्रा, *द करप्ट सोसाइटी*, पेंग्विन बुक्स इंडिया (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 80
6. जी.एस. भार्गव और एस.एन. द्विवेदी, *पोलिटिकल करप्शन इन इंडिया*, पॉपुलर बुक सर्विस, नई दिल्ली, 1967, पृष्ठ 52।
7. गुन्नार मिर्डल, *एशियन ड्रामा : अैन इन्क्वायरी इन्टू द पॉवर्टी आफ नेशन्स*, ऐलेन लेन, लंदन, यू.के. 1972, पृष्ठ 941।
8. आर.के. करंजिया, *द माइंड ऑफ़ नेहरू*, एलेन एंड अन्विन, लंदन, यू.के., 1960, पृष्ठ 61।

अध्याय 3

लाल बहादुर शास्त्री – एक सत्यनिष्ठ जीवन

भारतीय सिविल सर्विस के एक सदस्य और भारत सरकार के गृह मंत्रालय के भूतपूर्व गृह सचिव, एल.पी. सिंह ने लिखा है, "लाल बहादुर शास्त्री से पहले या बाद, किसी अन्य गृहमंत्री या प्रधानमंत्री ने प्रशासन में भ्रष्टाचार और सरकार में सत्यनिष्ठा की आम समस्या को लेकर उनके समान सुव्यवस्थित ढंग से और वैसी ईमानदारी के साथ लगातार काम नहीं किया। निस्संदेह सरदार पटेल ने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के साथ बहुत सख्ती से बर्ताव किया था। उदाहरणार्थ, मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूं कि उनके द्वारा कठोर कार्रवाई किए जाने का भय चरित्रहीन राजनीतिज्ञों के लिए अंकुश का काम करता था : मुझे आज भी याद है बिहार के एक मंत्री के चेहरे पर राहत की वह झलक जो मैंने दिसंबर 1950 में पटेल की मृत्यु के समाचार की घोषणा होने पर देखी थी। इस का कारण यह था कि उसने सत्ता का दुरुपयोग किया था और पटेल ने उसकी भर्त्सना की थी। पर देश के विभाजन और राजसी रियासतों को भारत में शामिल करने के कारण पैदा होने वाली बड़ी-बड़ी समस्याओं के कारण, प्रशासन और सार्वजनिक जीवन में सत्यनिष्ठा के प्रश्न की व्यापक जांच तथा उससे उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने की योजना बनाने के लिए उन्हें समय नहीं मिलता था। पटेल की मृत्यु के दस वर्ष बाद शास्त्री ने गृह मंत्रालय का कार्यभार संभाला और तुरंत सरकार के पूरे कामकाज में सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर गंभीर विचार प्रारंभ किया। शास्त्री का मानना था कि किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार कैंसर के रोग जैसा है। यदि इसे दूर न किया गया अथवा, कम से कम, नियंत्रण में न रखा गया, तो वह जनता की नैतिक प्रकृति को दुर्बल बना देगा तथा हमारी तमाम संस्थाओं और विकास योजनाओं के लिए क्षतिकारक सिद्व होगा। इस रोग के कारणों और उपायों को भलीभांति समझना और उन्हें दूर करने के उपाय करना अनिवार्य है भले ही वे कितने कठोर क्यों न हों। पर वे इस बात पर बल देते थे कि यह काम भावुकता से नहीं, एक चिकित्सक के दृष्टिकोण से, एवं शोर-शराबे के बिना किया जाना है। किसी प्रकार के दिखावे, सार्वजनिक सरगर्मी या फिर किसी भी प्रकार के जेहादी जोश अथवा प्रचार से बचते हुए यह काम करना है। यदि यह सब हुआ तो देश की प्रतिष्ठा को आघात

पहुंचेगा, भय और हताशा का वातावरण बनेगा और हमारे उद्देश्य की भी पूर्ति नहीं होगी।"[1]

जब शास्त्री गृहमंत्री थे, तब एल. पी. सिंह विशेष सचिव के पद पर थे। बाद में सिंह गृहसचिव बने और शास्त्री के प्रधानमंत्रित्व के दौरान उस पद पर काम करते रहे। सिंह ने सीधे शास्त्री के साथ कई वर्षों तक काम किया था। वे शास्त्री के निकटतम सलाहकारों में से थे। वे यह प्रत्यक्ष रूप से जानते थे कि शास्त्री ने क्या-क्या काम किए और राज्य के महत्वपूर्ण विषयों पर उनके विचार क्या थे। उपरोक्त कथन, जिसमें शास्त्री का दृढ़, सत्यनिष्ठ आचरण और सत्यनिष्ठा को प्रोत्साहित करने का उनका संकल्प, साफ़ झलकता है, सिंह के व्यक्तिगत एवं दैनन्दिन अनुभवों पर आधारित है।

जैसा कि सर्वविदित है, शास्त्री ने अपने जीवन के आरम्भिक वर्षों में बहुत कष्ट झेले थे। वे उनसे उबर पाने में समर्थ हो सके थे और उन्होंने कुछ ऐसे संबंधियों की सहायता से, जिनके अपने साधन बहुत कम थे, शिक्षा प्राप्त की थी। वाराणसी के काशी विद्यापीठ में, जहां वे कई वर्ष पढ़ते रहे थे, उनका प्रिय विषय नीतिशास्त्र था। उन्होंने सही और ग़लत का ज्ञान आरंभिक वर्षों में ही प्राप्त कर लिया था। शास्त्री ने, उसी आरंभिक आयु में सत्यनिष्ठा - सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा - को, प्रत्येक अवसर पर तथा प्रत्येक परिस्थिति में अपने व्यक्तित्व और चरित्र का अभिन्न अंग बना लिया था।

जवाहरलाल नेहरू के उत्तराधिकारी के रूप में भारत के दूसरे प्रधानमंत्री बनने से पूर्व, शास्त्री ने कई वर्षों तक पहले अपने मूल राज्य उत्तर प्रदेश में तथा बाद में केन्द्र में कैबिनेट-मंत्री के रूप में काम किया था। उन्होंने कई महत्वपूर्ण विभागों, जैसे रेल, परिवहन, संचार, नागरिक उड्डयन, वाणिज्य और उद्योग का कार्यभार संभाला था। प्रत्येक मंत्रालय में उन्होंने सभी अधिकारियों को स्पष्ट रूप से बता दिया था कि वे थोड़ी बहुत अकुशलता को भले ही सहन कर लें, पर किसी भी कीमत पर थोड़ी-सी भी बेईमानी या भ्रष्टाचार को सहन नहीं करेंगे। इस बात को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूं, क्योंकि मैंने दो मंत्रालयों में सीधे उनके साथ उनके निजी सचिव के रूप में और बाद में जब नेहरू के स्थान पर वे प्रधानमंत्री बने, उनके संयुक्त सचिव के रूप में, काम किया है।

जब 1961 में शास्त्री गृहमंत्री बने, तो भ्रष्टाचार का निवारण एवं पूरे सरकारी तंत्र में सत्यनिष्ठा का पालन सुनिश्चित करना उनके उत्तरदायित्व का अंग बना। शास्त्री जानते थे कि भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और ऊंचे सार्वजनिक पदों पर बैठे कुछ राजनीतिज्ञ भी प्रलोभन से बचे हुए नहीं हैं। वे यह भी जानते थे कि भ्रष्टाचार को दूर करना और सत्यनिष्ठा को बनाए रखना केवल उपदेशों से ही संभव नहीं होगा। अधिकारियों

और मंत्रियों के लिए सुस्पष्ट मानदंड निर्धारित करने होंगे और सतर्कता, जांच तथा भ्रष्ट लोगों पर अभियोग चलाने तथा उन्हें दंड देने के लिए स्वतंत्र संस्थात्मक प्रबंध करने होंगे। यह ऐसा काम था जिसे क्रमबद्ध तरीके से करना आवश्यक था। और शीघ्र ही वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस सारे विषय तथा इस से जुड़ी अन्य सभी बातों का अध्ययन एक उच्चस्तरीय कमेटी द्वारा करवाया जाना आवश्यक है ताकि उससे अपनी सुस्पष्ट अनुशंसाएं प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सके।

शास्त्री को इस नाज़ुक विषय के नाटकीय बनाए जाने तथा अत्यंत प्रत्यक्ष रूप से इसकी संवीक्षा कराए जाने को लेकर नेहरू की हिचकिचाहट का ज्ञान था पर वे यह भी जानते थे कि एक बार ऐसा करने की अनिवार्यता के प्रति नेहरू आश्वस्त हो गए तो वे तुरन्त अपनी अनुमति प्रदान कर देंगे। नेहरू को शास्त्री पर पूर्ण विश्वास था और वे उनको अत्यंत सम्मान एवं स्नेह की दृष्टि से देखते थे। जब शास्त्री ने 1956 में, दो बड़ी रेल दुर्घटनाओं, जिनमें कई कीमती जानें गई थीं, की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए आग्रहपूर्वक रेल और परिवहन मंत्री के पद से त्यागपत्र दिया था, तो उसे न चाहते हुए भी स्वीकार करते समय नेहरू ने संसद में उनके विषय में निम्नलिखित प्रशंसायुक्त वाक्य कहे थे :

"मैं यह कहना चाहूंगा कि यह मेरे लिए सौभाग्य और गर्व का विषय है कि न केवल सरकार में, अपितु कांग्रेस में भी वे मेरे साथी और सहयोगी हैं, और कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रतिष्ठान में इससे बेहतर साथी तथा बेहतर सहयोगी की आशा नहीं कर सकता - सर्वोच्च सत्यनिष्ठा तथा सम्पूर्ण स्वामिभक्ति के गुणों से युक्त एक व्यक्ति, आदर्शों के प्रति समर्पित, कर्तव्याकर्तव्य के प्रति पूर्ण रूप से सजग और एक अत्यंत परिश्रमी व्यक्ति। हम इससे बेहतर की अपेक्षा नहीं कर सकते और चूंकि कर्तव्याकर्तव्य के प्रति पूर्ण रूप से सजग होने के कारण ही, जब भी उनको सौंपे हुए काम में कहीं ग़लती हो जाती है ..... मेरे मन में उनके प्रति अत्यधिक आदर का भाव है और मुझे विश्वास है कि किसी न किसी रूप में हम साथी बने रहेंगे और इकट्ठे काम करेंगे।"

इस प्रकार के संबंधों के चलते, कुछ ही महीनों के भीतर शास्त्री, नेहरू को यह मनाने में सफल हो गए कि एक कमेटी की नियुक्ति की जाए जिसमें कुछ संसत्सदस्य हों तथा एक दो वरिष्ठ अधिकारी हों, जो भ्रष्टाचार की समस्या की जांच-पड़ताल करें तथा इस समस्या के प्रत्येक पक्ष से निपटने के लिए अपने सुझाव दें। सच तो यह है कि नेहरू ने इस मामले में शास्त्री को अपनी इच्छानुसार काम करने की स्वतंत्रता दे दी थी क्योंकि वे जानते थे कि शास्त्री ऐसी पक्की व्यवस्था करेंगे कि हर कदम पर आवश्यक सावधानी बरती जाए। परिणामस्वरूप, 1962 में

शास्त्री ने निम्नलिखित कमेटी का गठन किया :

अध्यक्ष	-	के. सन्तानम्, संसत्सदस्य
सदस्य	-	संतोष कुमार बसु, संसत्सदस्य
		टीका राम पालीवल, संसत्सदस्य
		आर.के. खाडिलकर, संसत्सदस्य
		नाथ पै, संसत्सदस्य
		शंभुनाथ चतुर्वेदी, संसत्सदस्य
		एल.पी. सिंह, आइसीएस, निर्देशक, प्रशासनिक सतर्कता प्रभाग
		डी.पी. कोहली, आइपी, महानिर्देशक, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान

कमेटी के विचारार्थ विषय निम्नलिखित थे :

1. भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों में सतर्कता इकाइयों के संगठन, स्वरूप, कामकाज और उत्तरदायित्व की जांच करना और उन्हें और अधिक प्रभावशाली बनाने के उपाय सुझाना।
2. विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के संगठन, सामर्थ्य, कार्यप्रणाली एवं कार्यविधि की जांच करना, उसकी कठिनाइयों का पता लगाना और उसके कामकाज में सुधार लाने के उपाय सुझाना।
3. भष्टाचार की रोकथाम के प्रति प्रत्येक विभाग के उत्तरदायित्व पर बल देने के लिए आवश्यक उपायों पर विचार करना और उनके संबंध में सुझाव देना।
4. कानून में ऐसे परिवर्तन करने के सुझाव देना जिनसे रिश्वत, भ्रष्टाचार और आपराधिक कदाचार के मामलों पर तेजी से मुकदमा चला सकना सुनिश्चित किया जा सके और अन्य तरीकों से भी कानून को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके।
5. अनुशासनिक कार्यवाही से संबंधित नियमों की जांच करना और यह विचार करना कि इस कार्यवाही को तेजी से निपटाने और अधिक कारगर बनाने के लिए इनमें किस प्रकार के परिवर्तन आवश्यक हैं।
6. ऐसे उपाय सुझाना जिनसे सार्वजनिक कर्मचारियों एवं आम जनता में इस प्रकार का सामाजिक वातावरण बन सके जिस में रिश्वत और भष्टाचार को फलने-फूलने का अवसर न मिले।
7. सरकारी सेवकों के आचरण-नियमों में सार्वजनिक सेवा में पूर्ण सत्यनिष्ठा बनाए रखने के लिए, आवश्यक परिवर्तनों की अनुशंसा करना।

8. भ्रष्टाचार विरोधी मामलों में जनसमर्थन प्राप्त करने के उपायों के सुझाव देना।
9. निगमित सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में ऐसे आवश्यक विशेष उपायों पर विचार करना जिनके लागू होने पर वहां के कर्मचरियों में ईमानदारी व सत्यनिष्ठा सुनिश्चित हो सके।[2]

ये विचारार्थ विषय व्यापक और विस्तृत थे। फिर भी इनमें एक कमी दिखाई पड़ती थी। राजनीतिज्ञों और मंत्रियों में भ्रष्टाचार की समस्या का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं किया गया था। पर इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि इन 'महानुभावों' का प्रत्यक्ष उल्लेख करने से संसद में तुरन्त हंगामा खड़ा हो जाता।

फिर भी, कुछ विचारणीय विषयों, जैसे विषय (4) और (6), की वाक्यरचना इस प्रकार की गई थी जिससे कमेटी के हाथ उन 'समादरणीय' श्रेणियों तक भी पहुंच सकते थे। इसके साथ ही, शास्त्री ने आधिकारिक रूप में कमेटी को यह स्पष्ट कर दिया था कि विचारार्थ विषयावली का उद्देश्य उसके कार्यक्षेत्र को किसी भी प्रकार से सीमित करना नहीं है और कमेटी भ्रष्टाचार की बहुमुखी समस्या के किसी भी संबंधित पक्ष पर विचार करने और उपयुक्त अनुशंसाएं प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र और समर्थ है। शास्त्री ने कमेटी से यह अनुरोध भी किया कि जैसे-जैसे समस्या के किसी एक पक्ष पर विचार की प्रक्रिया पूरी होती जाए, वैस-वैसे वह अपनी अंतरिम रिपोर्ट देती रहे ताकि सरकार तेज़ी से अगली कार्यवाई कर सके।

कमेटी ने अपना काम आवश्यक समग्रता के साथ शीघ्रतापूर्वक प्रांरभ कर दिया। इसने कई गवाहों के बयान लिए। इनमें 2 केन्द्रीय कैबिनेट मंत्री, 2 मुख्यमंत्री, 2 राज्यमंत्री तथा भारत सरकार के कई सचिव और अन्य वरिष्ठ अधिकारी शामिल थे। इसने कई अंतरिम रिपोर्टें प्रस्तुत कीं तथा अंतिम रिपोर्ट 31 मार्च, 1964 को पेश की।

कमेटी ने अपनी रिपोर्ट की भूमिका में अन्य बातों के अतिरिक्त, निम्न विचार व्यक्त किए :

> सार्वजनिक सेवाओं में सत्यनिष्ठा को नष्ट करने की प्रवृत्ति, इक्का-दुक्का या असामान्य न रह कर, एक सुगठित, सुनियोजित तिकड़म के रूप में फैल रही है। हम स्वीकार करते हैं कि जहां भ्रष्टाचार विरोधी व्यवस्था को मज़बूती से कार्यान्वित करने में पर्याप्त सफलता मिली है, वहीं बहुत कुछ करना अभी बाकी है। यह अत्यंत चिन्ता की बात है कि बीते दिनों में, इस परिस्थिति से निपटने में काफ़ी हद तक शिथिलता बरती गई है।
>
> हमें यह बताया गया है कि भ्रष्टाचार इस सीमा तक बढ़ गया है कि सार्वजनिक

प्रशासन पर से जनता का विश्वास उठता जा रहा है। हमने हर ओर से यह सुना है कि हाल ही के वर्षों में भ्रष्टाचार प्रशासन के उन स्तरों पर भी जा पहुंचा है जहां यह पहले दिखाई तक नहीं देता था। काश की हम विश्वासपूर्वक, बिना हिचकिचाहट, ज़ोरदार शब्दों में कह सकते कि राजनीतिक स्तर पर, मंत्री, विधायक, दलों के अधिकारी इस रोग से मुक्त हैं। आम धारणा अनुचित और अतिशयोक्तिपूर्ण है। पर इस प्रकार की धारणा का होना ही सामाजिक ढांचे के लिए हानिकारक है। यह सोच कर कि जनता द्वारा स्वयं को संविधान समर्पित किए जाने के इतने थोड़े समय के भीतर ही ऐसी धारणाएं बन गई हैं, अत्यंत निराशा होती है, विशेषकर जब हमें यह स्मरण आता है कि भारत ने अपनी स्वाधीनता का संघर्ष एक ऊंचे नैतिक स्तर पर महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति के नेतृत्व में किया था जो सत्यनिष्ठा की साक्षात् प्रतिमा थे। भारत की जनता की यह सच्ची अपेक्षा थी कि जब भारत का राज्यशासन राष्ट्रपिता के शिष्यों के, जो अपने व्यक्तिगत स्तर पर भी ऊंचे चरित्र और योग्यता के लिए सुख्यात हैं, के हाथों में आएगा तो भारत सरकार, केन्द्र और राज्यों में, राजनीति और प्रशासन, दोनों में, सत्यनिष्ठा के ऐसे आदर्श स्थापित करेगी और उन पर खरी उतरेगी जो संसार के किसी भी देश से, किसी प्रकार कम नहीं होंगे। हमें निस्संकोच यह मानना पड़ता है कि ऐसा पूरी तरह से नहीं हो सका। परन्तु यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि हमारे सार्वजनिक सेवकों का एक बड़ा प्रतिशत, जिसमें वे लोग भी शामिल हैं जिन्हें अवसर उपलब्ध हैं, सत्यनिष्ठा के कठोर मानदंडों के अनुसार अपना कामकाज करता है। हमें अपने सार्वजनिक जीवन को पूर्णतया साफ़-सुथरा बनाने के लिए, अपने प्रयासों का आधार सार्वजनिक सेवकों के इसी ठोस समूह को बनाना है। इस रिपोर्ट में हमारा यह प्रयत्न रहेगा कि ऐसे लोगों के हाथों को मज़बूत किया जाए, और उन लोगों के साथ कठोर बर्ताव किया जाए जो यह विश्वास करने लगे हैं कि वे भ्रष्ट कर सकते हैं, भ्रष्ट हो सकते हैं और फिर भी साफ़ बच कर निकल सकते हैं। परन्तु ऐसा कर सकने से पहले हमें उन तमाम कारणों का खुल कर सामना करना होगा जो हमारे सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी हैं।[3]

शास्त्री को दी गई अपनी अन्तरिम रिपोर्ट में कमेटी ने प्रत्येक विचारार्थ विषय पर अत्यंत सावधानी से चर्चा की तथा संस्थात्मक व्यवस्थाओं, आचार संहिताओं, कानूनी प्रावधानों तथा भ्रष्टाचार का विरोध करने के अन्य संबद्ध विषयों पर अपनी व्यापक अनुशंसाएं प्रस्तुत कीं।

शास्त्री ने इस बात की पक्की व्यवस्था की कि जैसे-जैसे एक अन्तरिम रिपार्ट मिले वैसे-वैसे उस पर कार्यवाई होती जाए ताकि कमेटी की सिफारिशों को शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वित किया जा सके। इस प्रकार कई महत्वपूर्ण निर्णय किए गए

तथा आवश्यक प्रबंधों को सुस्थिर और प्रगामी बनाया गया। ऐसे कुछ उपायों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

पूरे सरकारी तंत्र में सतर्कता के काम की परिवीक्षा और तालमेल के लिए केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना एक केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त के अधीन की गई। उस समय विद्यमान विशेष पुलिस प्रतिष्ठान का पुनर्गठन और विस्तार करके उसे केन्द्रीय जांच ब्यूरो का नाम दिया गया।

मंत्रियों के लिए एक आचार संहिता बनाई गई और 18 नवम्बर, 1964 को इसे लोकसभा और राज्यसभा के पटल पर रखा गया। राजनीतिक क्षेत्र में, सत्ता के उच्च पदों पर आसीन राजनीतिज्ञों में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष की दिशा में प्रधानमंत्री द्वारा उठाया गया यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

सरकारी कर्मचारियों के आचरण से संबंधित नियम बनाए गए। कई नए प्रावधानों को शामिल किया गया, जिनमें से एक वह था जिसके लिए शास्त्री बहुत उत्सुक थे। शास्त्री का यह दृढ़ विश्वास था कि सरकारी कर्मचारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे, सर्वोच्च वस्तुनिष्ठता और ईमानदारी पर आधारित अपना दृष्टिकोण बनाएं और चर्चा के दौरान अथवा फ़ाइलों में से उसे स्पष्ट रूप अभिव्यक्त करें। किसी भी स्थिति में वे अपने वरिष्ठ अधिकारियों के दबाब में न आएं, न उनके मौखिक आदेशों का पालन करें बल्कि सदैव लिखित आदेशों का आग्रह करें। इस आशय का एक प्रावधान आचरण-नियमों में किया गया, साथ ही यह भी जोड़ा गया कि ऐसा न करने वालों को कदाचरण का दोषी माना जाएगा। यह सिद्धान्त स्पष्ट ही एक अच्छी सरकारी सेवा तथा साफ़ सुथरे सरकारी प्रशासन की अनिवार्य शर्त है।

भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए नए तंत्र की संस्थापना और नए नियमों, संहिताओं आदि की उद्घोषणा के साथ-साथ शास्त्री ने कांग्रेस दल के कई प्रमुख व्यक्तियों के विरुद्ध, जो कि कैबिनेट मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों जैसे महत्वपूर्ण सार्वजनिक पदों पर विराजमान थे, भ्रष्टाचार या कदाचरण की शिकायतों की जांच के उपाय भी किये। और ऐसा उन्होंने बिना किसी तामझाम के, परन्तु दृढ़ संकल्प के साथ किया।

एल.पी. सिंह कहते हैं:

'गृहमंत्री एवं प्रधानमंत्री के रूप में शास्त्री का पांच वर्ष का कार्यकाल, निस्संदेह, सरकार में नैतिकता का एक आदर्श उदाहरण है। गृह मंत्रालय में, जिसे कार्य-वितरण के अंर्तगत यह दायित्व सौंपा गया था, काम करते हुए ऐसा अनुभव होता था कि गांधी की संकल्पशक्ति शास्त्री के संवेदनशील और सशक्त माध्यम से अपना रंग दिखा रही है। राजनीतिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण पद पर होने के

कारण, शास्त्री को इसके स्वास्थ्य की चिन्ता थी। और शासनाध्यक्ष के रूप में, देश का राजकाज चलाने के लिए उत्तरदायी होने के नाते वे इस के लिए अत्यंत उत्सुक थे कि प्रशासन व्यवस्था की गुणवत्ता, प्रभावकारिता तथा विश्वसनीयता बनी रहे। पर मुझे लगता है कि राजनीतिक अथवा प्रशासनिक कारण ही नहीं, इससे भी कोई अधिक गहरा कारण - गांधी जी का संस्कार - था, जो शास्त्री की अभिप्रेरणा का मुख स्रोत था।'[4]

शास्त्री का दृढ़ संकल्प था कि स्वच्छता की प्रक्रिया को वे विवेकपूर्वक धीरे-धीरे आगे बढ़ायेंगे और इस प्रकार पूरे देश में एक नया वातावरण तैयार करेंगे; देश और पूरे समाज में पारदर्शिता और सत्यनिष्ठा की एक स्थायी परम्परा स्थापित करेंगे जो कि एक स्वच्छ और सहानुभूतिमूलक प्रशासन के लिए अत्यंत आवश्यक है। और सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा की अपनी अप्रतिम प्रतिष्ठा के चलते, इस महान् तथा अत्यधिक महत्व के कार्य को भारतीय जनता के श्रेष्ठ हितों का साधन करने के मामले में उनकी विश्वसनीयता असंदिग्ध थी। दुर्भाग्य से, ऐसा नहीं होना था, क्योंकि 11 जनवरी 1966 को, प्रधानमंत्री के पद पर केवल 19 महीने तक रहने के बाद उनका निधन हो गया।

शास्त्री का स्थान, जून 1966 में इंदिरा गांधी ने लिया।

अंत्यसंकेत

1. एल.पी. सिंह, *पोर्ट्रेट ऑफ़ लाल बहादुर शास्त्री*, रवि दयाल पब्लिशर्ज़, दिल्ली 1996, पृष्ठ 67, 68।
2. *भ्रष्टाचार निवारण, के सन्तानम् कमेटी की रिपोर्ट*, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, 31 मार्च, 1964, पृष्ठ 2।
3. *वही*, पृष्ठ 12, 13।
4. एल.पी. सिंह, पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 74, 75।

अध्याय 4

इंदिरा गांधी और प्रशासन की समस्याएं

इंदिरा गांधी 15 वर्ष की अवधि तक भारत की प्रधानमंत्री रहीं और यह समय दो भागों में बंटा हुआ था। विश्व-भर में कई लोग उन्हें भारत की अब तक की सबसे अधिक करिश्माई, सबसे अधिक साहसी और सबसे अधिक शक्तिशाली प्रधानमंत्री मानते हैं। 1971 में पाकिस्तान के विरुद्ध युद्ध में, जिसके फलस्वरूप बांग्ला देश की स्थापना एक स्वाधीन राज्य के रूप में हुई, अपनी निर्णयात्मक भूमिका के कारण उन्होंने अपने लिए विश्व के इतिहास में चिरस्थायी स्थान सुरक्षित कर लिया है।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि देश के आर्थिक विकास के लिए इंदिरा गांधी ने अपने यशस्वी पिता की नीतियों का उत्साहपूर्वक अनुपालन करने का निर्णय किया। वे स्वयं भी ऐसे समाजवादी ढंग के सामाजिक ढांचे में उत्कट विश्वास रखती थीं, जिसमें अर्थव्यवस्था की शिखरस्थ सत्ता राज्य के हाथों में रहती है तथा निजी क्षेत्र सरकारी नियमों के अंतर्गत और नियंत्रण में रहते हुए सहायक भूमिका अदा करता है। वास्तव में, वे तो यह चाहती थीं कि कतिपय महत्वपूर्ण आर्थिक तथा वित्तीय क्षेत्रों के कामकाज को सीधे सरकार के स्वामित्व में लाकर राज्य की भूमिका को और व्यापक बनाया जाए। प्रकट रूप से, इसका उद्देश्य यह था कि गरीब जनता के लाभ के लिए सरकारी कार्यक्रम बना कर उनका प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए। नए प्रधानमंत्री के रूप में उन्हें ऐसी कोई भी आर्थिक या राजनीतिक नीति अपनाने का अधिकार था जिससे, उनके विचार में, देश और आम जनता के सर्वश्रेष्ठ हितों की सिद्धि होती हो।

उन्हें विश्वास था कि नेहरू की बेटी होने के नाते, अपने आत्यंतिक सुधारवादी कार्यक्रम को लागू करने के लिए जो भी कदम वे उठायेंगी, उन्हें पूरा जनसमर्थन प्राप्त होगा। पर वे चाहती थीं कि कांग्रेस दल में - संसद में भी और देश में भी - उन्हें सम्पूर्ण तथा निष्कंटक नियंत्रण प्राप्त हो। समस्या थी 'सिंडिकेट' - एक ऐसा शब्द जिसका अर्थ था कांग्रेस दल के पुराने नेता। उनको अपने साथ लेकर चलना आसान नहीं था। यदि इंदिरा गांधी अपने मन की कर पातीं, तो उन सब को चलता कर देतीं। एक आश्चर्यजनक निर्णय करते हुए 1969 में उन्होंने, "सब कुछ या कुछ नहीं" का दांव खेला। उन्होंने कांग्रेस दल को विभाजित कर दिया। नाम की बात छोड़ें तो

जो उभर कर सामने आया, वह था एक नया कांग्रेस दल जिसकी निष्ठा केवल इंदिरा गांधी में थी। जिन्हें यह स्वीकार नहीं हुआ, वे इसे छोड़ गए और उन्होंने एक नया दल बना लिया। एक कठिन लड़ाई में, इंदिरा विजयी हो कर सामने आईं। वे जो चाहती थीं, उन्हें मिल गया - कांग्रेस दल तथा संसद में अपने दल के सदस्यों पर पूर्ण एवं अविवादित नियंत्रण। प्रधानमंत्री के रूप में वे अब देश की सर्वोच्च नेता थीं और उनके दल में उन्हें चुनौती देने वाला कोई नहीं था।

इस समय, भारत इतिहास के चौराहे पर खड़ा था। इंदिरा गांधी को ज्ञात होना चाहिए था कि उन्होंने विकास के लिए जिस आर्थिक मॉडल को अपनाने का निर्णय किया है उससे राज्य के स्वामित्व का दायरा और विस्तृत हो जाएगा। इसके साथ ही, परमिटों, लाइसेंसों और कोटों के माध्यम से निजी क्षेत्र पर भी सरकारी नियंत्रण और बढ़ जाएगा। और यदि सरकार सुदृढ़ निरोधक उपाय नहीं करती तो इन सब से भ्रष्टाचार के विशाल अवसर सुलभ हो जाएंगे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, महात्मा गांधी और डॉ. राधाकृष्णन् ने भ्रष्टाचार के घातक संकट के विरुद्ध स्पष्ट चेतावनियां दी थीं। सन्तानम् कमेटी ने भी, विस्तृत तथा सम्पूर्ण अध्ययन के बाद अपनी रिपोर्ट में कहा था कि राजनीतिक वर्ग में भी भ्रष्टाचार चिन्ताजनक हद तक फैल चुका है। इस के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए कमेटी ने सुस्पष्ट कानूनी और प्रशासनिक उपायों की अनुशंसाएं भी की थीं। इस पृष्ठभूमि में, नई प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा गांधी का यह कर्तव्य था कि सरकारी प्रशासन में भ्रष्टाचार पर अंकुश रखने तथा ईमानदारी एवं नैतिकता को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वे सन्तानम् कमेटी की अनुशंसाओं के क्रियान्वयन की प्रक्रिया को, जिसे उनके पूर्ववर्ती प्रधानमंत्री ने आरंभ किया था, जारी रखतीं। यदि वे ऐसा करने का निश्चय कर लेतीं तो उन्हें भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक सच्चे सिपाही का सम्मान प्राप्त होता। निस्संदेह, उन्हें आजीवन प्रधानमंत्री बने रहने के लिए तथा ग़रीबी उन्मूलन की उनकी नीतियों एवं विकास कार्यक्रमों को अपार जनसमर्थन प्राप्त होता। इस प्रकार वे देश के प्रशासनिक ढांचे में ईमानदारी और पारदर्शिता की अखंड परम्परा स्थापित कर सकती थीं। देश के चिरस्थायी कल्याण के लिए यह कितना शानदार अवसर था!

भ्रष्टाचार रूपी दानव के विरुद्ध महात्मा गांधी और डॉ. राधाकृष्णन् की चेतावनियों की ओर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सच्चे मन से ध्यान नहीं दिया। उलटे, उन्होंने इस समस्या को अपनी इस रहस्यमय टिप्पणी से ख़ारिज कर दिया : 'भ्रष्टाचार तो एक विश्वव्यापी तथ्य है।'

यह सच है कि उनका यह कहना शत-प्रतिशत सही था। परन्तु नैतिक दृष्टि से, इस टिप्पणी में निहित उनका आशय प्रशंसनीय नहीं था। आर.के. लक्ष्मण ने *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* में अपने एक कार्टून में अत्यंत खूबसूरती, हाज़िरजवाबी और व्यंग्यपूर्ण

अंदाज़ में इसे रेखांकित किया है।

इंदिरा गांधी वित्तीय दृष्टि से साधन सम्पन्न थीं और उन्हें अपने लिए किसी प्रकार की बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं थी। न ही उन्होंने अपने उत्तराधिकारियों के लिए धन संग्रह का प्रयत्न किया। पर पैसे की ज़रूरत तो उन्हें थी : अपने राजनीतिक दल के वित्तपोषण के लिए, अपने वफ़ादारों को पुरस्कृत करने के लिए, पूरे देश में अपने राजनीतिक अभियान को चलाने के लिए, आने वाले चुनावों में अपने प्रत्याशियों की सफलता सुनिश्चित बनाने के लिए और समय आने पर उचित उत्तराधिकार सुरक्षित करने के लिए।

क्या कहना ! लक्ष्मण कृत

धन्यवाद! आप तो जानते ही हैं कि यदि मुझे पता न होता कि यह एक विश्वव्यापी तथ्य है तो मैं सपने में भी इसे स्वीकार करने की बात नहीं सोचता।

यों अपने दल की राजनीतिक गतिविधियों को वित्तपोषित करने के लिए इंदिरा गांधी के धन चाहने में कुछ ग़लत नहीं था। सभी प्रजातांत्रिक देशों में, राजनीतिक दल पैसा मांगते हैं और इच्छुक दानदाता अपनी पसंद के दल की वित्तीय सहायता करने के लिए उसे पैसा देते हैं। पर यह सब खुलेआम और कानूनसम्मत तरीके से किया जाता है। सहायता राशियों का लेन-देन सामान्य बैंकिंग माध्यमों से होता है। सभी राजनीतिक दल इनका पूरा हिसाब-किताब रखते हैं, लेखा परीक्षक उनका समुचित प्रमाणन करते हैं और इन राशियों का अपेक्षित प्रकटीकरण पूर्ण रूप से

किया जाता है। ऐसा करने से, प्रजातांत्रिक प्रक्रिया का उच्छेदन करने के उद्देश्य से धन का दुरुपयोग करने के अवसर नहीं रहते। भारत में, इससे संबंधित कानून निरपवाद रूप से कठोर कभी नहीं रहा और राजनीतिक दल बैंकों के माध्यम से तथा नकदी द्वारा भी धन इकट्ठा करते रहे हैं। यह प्रक्रिया नकद धनराशियों के दुरुपयोग के द्वार पूरी तरह खोल देती है।

एस.एस. गिल के कथनानुसार, इंदिरा गांधी की सरकार में आवश्यक धन इकट्ठा करने का दायित्व वाणिज्य मंत्री को सौंपा गया था क्योंकि उनके पास बहुत शक्तियां थीं। और वे अपना काम इस प्रकार से सम्पादित करते थे :

> एल.एन. मिश्रा को वाणिज्य का स्वतंत्र राज्यमंत्री नियुक्त किया गया था। उन्होंने 'लाइसेंस-कोटा-परमिट-राज' का पूरा लाभ उठाया। प्रत्येक लाइसेंस, परमिट, और संस्वीकृति पर कीमत का लेबल लगा दिया। वे धन की विपुल राशियां इकट्ठी करते थे और बादशाह की तरह उनको वितरित करते थे। उनके घर से, भांति-भांति के लाभग्राहियों को, जिनमें केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं, पत्रकार और सौदेबाज़ भी शामिल होते थे, सीलबंद लिफ़ाफ़ों का भेजा जाना रोज़ का काम था। निस्संदेह, मिश्रा केवल एक कठपुतली थे जिसके सूत्र उस्ताद रणनीतिकार के हाथों में थे।
>
> मेरे एक सहयोगी ने, जो एक समय वाणिज्य सचिव रह चुके थे, मुझे इस संबंध में एक दिलचस्प घटना सुनाई थी। एक बड़े व्यापारिक घराने के एक प्रतिनिधि के बारे में यह विदित था कि वह अपने मालिकों की ओर से मिश्रा के कार्यालय में श्रद्धा-सुमन भेंट करने के लिए नियमित रूप से आता है। एक बार सचिव ने हंसी-हंसी में उससे पूछा कि यह कार्यकलाप कैसे सम्पन्न होता है। कुछ दिन बाद वह प्रतिनिधि एक नया, बड़ा ब्रीफ़केस लेकर उस (सचिव) के कार्यालय में आया। उसने कहा कि यह ब्रीफ़केस मंत्री जी के लिए है। इसके बाद वह मंत्री जी के कार्यालय में गया पर थोड़ी देर बाद वही ब्रीफ़केस लिए वापस आ गया। सचिव ने यह समझ कर कि मंत्री जी ने पैसा लेने से इंकार कर दिया, राहत की सांस ली। नहीं-नहीं, प्रतिनिधि ने स्पष्ट किया, उसने ब्रीफ़केस मंत्री जी के कार्यालय में जमा कर दिया है और वैसा ही दूसरा, ख़ाली ब्रीफ़केस लेकर लौट आया है ताकि किसी को सन्देह न हो।[1]

यहां यह कहना आवश्यक है कि विकासशील देशों के कई शासनाध्यक्षों ने अपने पद और सत्ता का उपयोग, केवल राजनीतिक उद्देश्यों के लिए ही नहीं, अपने और अपने परिवारों को धनाढ्य बनाने के उद्देश्य से भी काला धन इकट्ठा करने के लिए किया है। फिलिपाइन्स के राष्ट्रपति फ़र्डिनैंड मार्कोस, ज़ायर के राष्ट्राध्यक्ष मोबुटु तथा अनेक शासनाध्यक्षों ने कथित रूप से अरबों डालर स्विस बैंकों के गुप्त

खातों में भविष्य के लिए जमा कर रखे थे। इंदिरा गांधी इन सब से बिल्कुल अलग थीं। ऐसा कोई संकेत मात्र भी नहीं है कि उनके नाम से इकट्ठे किए गये धन का एक पैसा भी उनके निजी काम पर खर्च किया गया हो। इस सारी राशि का उपयोग केवल उनके राजनीतिक कामों के 'प्रबंधन' के लिए किया जाता था।

इंदिरा गांधी ने जब अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली तो उनके छोटे पुत्र संजय गांधी सत्ता के अतिसंवैधानिक केन्द्र बन गए। कैबिनेट मंत्री, मुख्यमंत्री और अन्य विशिष्ट व्यक्ति राज्य के महत्वपूर्ण विषयों पर प्रायः संजय गांधी की राय लेते थे।

1975 में घटी एक घटना ने देश की राजनीतिक स्थिति पर घोर विपत्तिकारक प्रभाव डाला। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने, एक मामूली चुनावी अनाचार के कारण, लोकसभा के लिए इंदिरा गांधी के चुनाव को निष्प्रभावी घोषित कर दिया। यदि इंदिरा गांधी अपने विवेक से काम लेतीं, तो वे निश्चय ही त्यागपत्र देकर दोबारा चुनाव लड़तीं और इस छोटे-से अन्तराल के लिए अपनी पार्टी के किसी छुटभैये के प्रधानमंत्री बनने की व्यवस्था कर देतीं। इसमें रंचकमात्र संदेह नहीं है वे शीघ्र ही, शानदार बहुमत के साथ जीत कर और अपनी नैतिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करके लौटतीं। पर संजय गांधी ने निर्णायक रूप से हस्तक्षेप किया। मुख्यतः संजय गांधी के प्रभाव के कारण ही, त्याग पत्र देने के स्थान पर, श्रीमती गांधी ने आपात स्थिति की घोषणा कर दी, संविधान को स्थगित कर दिया तथा राज्य शासन की सभी शक्तियां अपने हाथ में ले लीं। सभी स्वतंत्रताएं स्थगित कर दी गईं। बिना आरोप, रातों-रात, कितने ही लोगों को पकड़ कर कैद कर दिया गया। निर्दोष लोगों को परेशान करने के लिए पुलिस-एजेंसियों का दुरुपयोग किया गया।

सत्ता पर सम्पूर्ण और निरंकुश प्रभुत्व के अपने कार्यक्रम को साधने के लिए इंदिरा ने देश के प्रशासनिक ढांचे पर ध्यान देना आरंभ किया। 1947 से लेकर 1970 तक, कुछ अपवादों को छोड़कर, नौकरशाही के उच्च पदों पर स्थित लोगों, विशेषकर, भारतीय सिविल सर्विस और इसकी उत्तराधिकारी, भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों ने सत्यनिष्ठा तथा विषयनिष्ठता के उच्चतम स्तरों को बनाए रखा था।

1970 के दशक में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 'प्रतिबद्ध सिविल सेवा' के सिद्धान्त को निरूपित किया। केन्द्र सरकार के एक भूतपूर्व गृह सचिव माधव गोड़बोले के शब्दों में इस ने "सिविल सेवा में तबाही पैदा कर दी"। उन्होंने आगे चल कर और निम्नलिखित टिप्पणियां भी की हैं :

> इस अवधारणा की कड़ी आलोचना हुई क्योंकि इससे राजनीतिक निष्पक्षता के उस मूल सिद्धान्त पर प्रश्न चिह्न लग गया जिस के ऊपर सिविल सेवा की इमारत टिकी हुई है। सरकारी अधिकारियों की नई फ़सल ने, जो महत्वाकांक्षी थी और तेज़ी से आगे बढ़ना चाहती थी, तुरंत वर्चस्व प्राप्त कर लिया। इस

चूहादौड़ में जो नया नारा उभरा, वह था 'प्रतिबद्धता अपनाओ या बाहर जाओ'। सौभाग्य से इस नई पद्धति में बहुत से लोगों को ख़तरे दिखाई दिए और उन्होंने इस के विरुद्ध आवाज़ उठाई। फलस्वरूप, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अपने कदम पीछे हटाए और स्पष्ट किया : 'मुझे राजनीतिक दृष्टि से सुविधाजनक और चापलूस सरकारी अधिकारियों की आवश्यकता नहीं है। उनका काम स्पष्टवादिता से परामर्श देना है, पर उन्हें संसद द्वारा अनुमोदित, राज्य के उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। उन्हें उन कार्यक्रमों पर, जिनका वे संचालन करते हैं, पूरी आस्था होनी चाहिए।

इस शब्द जाल ने सत्य को छिपा लिया; राजनीतिक दृष्टि से लचीले और जी-हुज़ूर किस्म के सरकारी सेवकों के युग का सूत्रपात हुआ। जिन लोगों की सफलता की नई कहानियां सरकारी सेवकों के बीच प्रचारित होना आरंभ हुईं वे अधिकतर ऐसे लोग थे जो शासन करने वाले दल के प्रति प्रतिबद्ध थे; और यदि वे स्वयं सत्ताधीश के प्रति प्रतिबद्ध हों, तो और भी अच्छा।[2]

इंदिरा गांधी के कार्यकाल के अन्य पहलू इस पुस्तक का विषय नहीं हैं। केवल कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख आवश्यक है। यद्यपि उन्होंने देश पर सम्पूर्ण और निरंकुश सत्ता प्राप्त कर ली थी, फिर भी 19 महीनों के बाद स्वेच्छा से आपात स्थिति हटा दी और संविधान, कानून के शासन तथा प्रजातंत्र को पुनः स्थापित कर दिया। विश्व के इतिहास में ऐसे उदाहरण विरले ही होंगे जब किसी सर्वाधिकार प्राप्त शासक ने स्वेच्छा से सत्ता का त्याग कर दिया हो। इसके पश्चात् लोकसभा के लिए हुए चुनावों में कांग्रेस (आइ) को भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा : आपात स्थिति के दौरान किए गए भयंकर अत्याचारों से मतदाता क्रुद्ध थे। इंदिरा गांधी और संजय गांधी दोनों ने चुनाव लड़ा था पर हार गए थे। मई 1977 में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में, एक नई सरकार को प्रतिष्ठापित किया गया। यह 15 जुलाई, 1979 तक चली; देसाई ने जब लोकसभा में बहुमत खो दिया, तो त्यागपत्र दे दिया। 27 जुलाई, 1979 को चरणसिंह नए प्रधानमंत्री बने पर वे केवल 23 दिन सत्ता में रहे। उन्होंने 19 अगस्त, 1979 को त्यागपत्र दे दिया। इनमें से प्रत्येक प्रधानमंत्री का कार्यकाल इतना कम था कि वह भ्रष्टाचार को समाप्त करने में कोई सार्थक योगदान नहीं दे सकता था।

इस बीच, इंदिरा गांधी ने हार नहीं मानी थी। संजय गांधी का बल और प्रोत्साहन पाकर वे राजनीतिक लड़ाई लड़ती रहीं। जनवरी 1980 में हुए अगले लोकसभा चुनावों में वे 'गरीबी हटाओ' के नारे के बल पर विशाल बहुमत से सत्ता में लौटीं। संजय गांधी, जिन्होंने चुनाव अभियान का संचालन किया था एक बार फिर सत्ता का केन्द्र बने परन्तु मृत्यु के क्रूर हस्तक्षेप ने अपना काम किया। संजय गांधी एक हवाई दुर्घटना में 23 जून, 1980 को मारे गए।

इंदिरा गांधी बुरी तरह टूट गईं पर काम करती रहीं। जल्दी ही उन्होंने अपने दूसरे बेटे राजीव को उत्तराधिकार के लिए तैयार करने का निर्णय किया। पूरी प्रवीणता और अधिकार के साथ वे राजकाज चलाती रहीं। पर उनके एक कदम का परिणाम घातक सिद्ध हुआ। 5 जून 1984 को उन्होंने भारतीय सेना को, सिक्खों के सबसे पवित्र धार्मिक स्थल - अमृतसर स्थित स्वर्ण मंदिर - को घेरने और हमला करने का आदेश दिया ताकि सिक्ख चरमपन्थियों के विद्रोह को दबाया जा सके। इस का परिणाम भयंकर हत्याकांड के रूप में सामने आया। सिक्ख समुदाय अत्यंत उत्तेजित और आहत हुआ। 31 अक्तूबर 1984 को, उनके दो निजी अंगरक्षकों ने - जो दोनों सिक्ख थे - बदले की भावना से उन पर बन्दूकों से गोलियों की बौछार करके उनकी हत्या कर दी।

जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के पश्चात् भारत के राष्ट्रपति ने अपने आप फ़ौरन गुलज़ारी लाल नंदा को, जो कि उस समय कैबिनेट के वरिष्ठतम मंत्री थे, कार्यवाहक प्रधानमंत्री पद की शपथ दिला दी थी ताकि वे कांग्रेस संसदीय दल द्वारा नया नेता चुने जाने तक कामकाज चला सकें। लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद भी इसी कार्यविधि को अपनाते हुए, गुलज़ारी लाल नन्दा को ही, जो उस समय भी कैबिनेट में वरिष्ठतम थे, अंतरिम प्रधानमंत्री के पद की शपथ दिलाई गई थी। इंदिरा गांधी के कांग्रेस संसदीय दल द्वारा नेता चुन लिए जाने के बाद ही उन्हें लाल बहादुर शास्त्री की उत्तराधिकारिणी के रूप में प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई थी। यह चुनाव केवल एक औपचारिकता नहीं था। यह प्रजातांत्रिक प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग था। परन्तु इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद, तत्कालीन राष्ट्रपति ने सीधे राजीव गांधी को नया प्रधानमंत्री बनने के लिए आमंत्रित किया और उन्हें पद की शपथ दिलाई। राजीव गांधी का कांग्रेस संसदीय दल का नेता चुना जाना पूर्वनिश्चित ही था। और इस प्रकार अनिच्छा के साथ, राजीव गांधी ने अपनी मां के उत्तराधिकारी के रूप में प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया।

राजीव गांधी को विरासत में एक भ्रष्ट राज्यव्यवस्था और कलुषित प्रशासन मिले थे। इस बात की काफ़ी आशा थी कि वे भ्रष्टाचार से लड़ेंगे और भारत का पुनरुत्थान करेंगे।

अंत्यसंकेत

1. एस.एस. गिल, *द पैथौलॉजी ऑफ़ कॅरपशन*, हार्पर कोलिन्स पब्लिशर्ज़ इंडिया (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 69।
2. माधव गोड़बोले, 'कॅरपशन, पॉलिटिकल इन्टरफ़ियरेन्स एन्ड सिविल सर्विस', एस गुहन और सैम्युअल पॉल द्वारा संपादित *कॅरपशन इन इंडिया - एजेंडा फ़ॉर एक्शन* में, विज़न बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 63-64।

अध्याय 5

राजीव गांधी – एक शानदार प्रारंभ और एक त्रासद अन्त

श्रीमती इंदिरा गांधी की मृत्यु की आधिकारिक घोषणा 31 अक्तूबर 1984 को सायं 6 बजे की गई। उसी दिन, सायं 6 बज कर 20 मिनट पर भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी ज़ैल सिंह ने राजीव गांधी को भारत के नए प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलाई। श्रीमती गांधी के अंतिम संस्कार में भाग लेने आए विशिष्ट विदेशी अतिथियों की अगवानी उन्होंने जिस सौम्य गरिमा के साथ की और अपनी मां की चिता के पास जिस आत्म संयम के साथ वे खड़े रहे, उन दृश्यों को टेलीविज़न पर पूरे देश में देखा गया। इस से उन्होंने देश की जनता का न केवल स्नेह ही, अपितु सम्मान भी अर्जित कर लिया।

जैसा कि सर्वविदित है, राजीव गांधी ने किसी प्रकार की सत्ता प्राप्त करने की कामना नहीं की थी और राजनीतिक चालों से स्वयं को पूरी तरह अलग रखा था। सत्यनिष्ठा के मामले में उनकी छवि निष्कलंक थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में वे सर्वथा साफ़-सुथरे थे तथा अपनी पत्नी और बच्चों से बहुत प्यार करते थे।

अपने काम के प्रारंभ से ही, वे अपने सहयोगियों तथा अधीनस्थों के साथ आकर्षक मुसकान तथा शिष्ट ढंग के साथ पेश आते थे। राजकाज के मामलों में वे जाति, सम्प्रदाय, समुदाय, धर्म और भाषा संबंधी आग्रहों से सर्वथा मुक्त थे और सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्षता के पक्के समर्थक थे। ऐसा लगता था कि सदाचार और नैतिकता के मूल्यों पर उनकी आस्था है क्योंकि जल्दी ही उन्होंने ऐसे लोगों से किनारा कर लिया जो भ्रष्टता के लिए बदनाम हो चुके थे।

राजीव गांधी द्वारा काम को हाथ में लेते ही, ऐसा लगने लगा कि भारतीय राजनीति और शासन व्यवस्था में एक नये युग का आरंभ होने जा रहा है। यह तो साफ़ था कि उनके पास अनुभव नहीं है पर उन्होंने इस कमी को हृदयस्पर्शी उत्साह से पूरा करने के प्रयास किए। जल्दी ही उन्होंने भारत के प्रशासन को, जो भीतर तक भ्रष्ट हो चुका था, स्वच्छ करने की बात करना प्रारंभ कर दिया। और वे कांग्रेस दल को भी उन ठगों से मुक्त करना चाहते थे जिन्होंने पिछले शासन में चापलूसी से इस पर अधिकार कर लिया था और अपनी जेबें भरने में व्यस्त थे।

उनकी आंखों में जापान के औद्योगिक विकास की तर्ज़ पर ही भारत के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन और गति देने का स्वप्न भी था।

अपने कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए, राजीव गांधी ने जनादेश लेने का निर्णय किया, और यह उचित भी था। इसलिए उन्होंने दिसम्बर 1984 में आम चुनाव करवाने की घोषणा की। इस विषय में, दो बातें पूरी तरह राजीव गांधी के पक्ष में थीं। एक तो उनकी मां इंदिरा गांधी की हत्या के कारण सहानुभूति की लहर चल रही थी। दूसरे, आम जनता की यह सुदृढ़ धारणा थी कि राजीव गांधी अत्यंत ईमानदार हैं और देश की शासन व्यवस्था को नए सिरे से चलाने को कृतसंकल्प हैं। चुनावों का परिणाम चकित कर देने वाला था। राजीव गांधी के दल ने 543 में से 415 स्थान जीत कर एक महान् विजय प्राप्त की थी। लोकसभा चुनावों में किसी राजनीतिक दल द्वारा प्राप्त किए गए स्थानों में यह संख्या सब से अधिक थी। विरोधी पक्ष का तो लगभग सफ़ाया हो गया था।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत के इतिहास के चरम क्षणों में से एक क्षण यह था : सत्यनिष्ठा पर आधारित अपने कार्यक्रम के लिए इतना विशाल जनादेश पाकर राजीव गांधी द्वारा भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण करने का क्षण। संभावनाएं रोमांचकारी और आह्लादपूर्ण थीं। भारत और उसके करोड़ों लोगों का भविष्य एक व्यक्ति - राजीव गांधी - के हाथ में था। अपनी लोकप्रियता के चरमोत्कर्ष पर जवाहर लाल नेहरू को जैसी शक्ति प्राप्त थी, वैसी ही विस्मयकारी शक्ति इस समय राजीव गांधी के पास थी। जनता उस नवयुग की बेचैनी से प्रतीक्षा कर रही थी जिसमें एक ईमानदार, कुशल और संवेदनशील प्रशासन के द्वारा उनके कल्याण कार्यों को बढ़ावा मिलने वाला था। आम लोगों की नज़र में राजीव गांधी की छवि सत्यनिष्ठा के एक सिपाही की बन गई थी और उन्हें 'मिस्टर क्लीन' की उपाधि मिल गई थी। कितना भव्य था भारत के लिए यह क्षण! कितना महान् था यह अवसर, अवसाद भरे अतीत से छुटकारा पाने के लिए और एक नये अध्याय का प्रारंभ करने के लिए!

अपने प्रधानमंत्रित्व का पहला वर्ष समाप्त होने तक, राजीव गांधी ने भारत के साथ-साथ उन अन्य देशों - युनाइटिड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस और फ्रांस - में भी अपनी एक अत्यंत अनुकूल छवि स्थापित कर ली थी, जहां की उन्होंने यात्रा की थी। साफ़ दिखाई देता था कि अतीत की बुराइयों से उन्होंने पीछा छुड़ा लिया है। ऐसा लगने लगा था कि भ्रष्टाचार एवं भ्रष्टाचारियों का सफ़ाया करने के लिए वे कृतसंकल्प हैं।

दिसम्बर 1985 में, वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के शताब्दी समारोह में भाग लेने मुंबई गए। पूरे देश से आए कांग्रेसजनों की एक विशाल सभा में उन्होंने स्तब्ध कर

देने वाला, स्पष्ट और झकझोर कर रख देने वाला भाषण दिया। इस भाषण में सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार और दम्भ के विरुद्ध उनके हृदय के गहरे क्रोध और आक्रोश की अभिव्यक्ति साफ़ दिखाई देती थी :

> देश-भर में कांग्रेस के करोड़ों साधारण कार्यकर्त्ताओं के मन में कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति उत्साह भरा हुआ है। पर उनके सामने अड़चनें हैं, क्योंकि उनकी पीठ पर सत्ता तथा सिफ़ारिश के दलाल सवार हैं जो अपना संरक्षण देकर एक जन आन्दोलन को चंद लोगों को फ़ायदा पहुंचने वाली सामन्तशाही बना देना चाहते हैं। वे ऐसी गुटबंदियां कायम कर रहे हैं जिनके द्वारा कांग्रेस को लालच के जाल में उलझाकर वे स्वयं फलते-फूलते रहें। हम ऊंचे सिद्धान्तों और उच्च आदर्शों की बात करते हैं ताकि हम एक सबल और समृद्ध भारत का निर्माण कर सकें। पर हम किसी अनुशासन का, किसी नियम का, सार्वजनिक नैतिकता के किसी सिद्धान्त का पालन नहीं करते, सामाजिक जागरूकता प्रदर्शित नहीं करते, जन कल्याण के प्रति तनिक भी चिन्तित दिखाई नहीं देते। भ्रष्टाचार को केवल सहन ही नहीं किया जाता, बल्कि इसे नेता होने का प्रतीक भी माना जाता है। हमारी कथनी और करनी के बीच घोर असंगति है और यही हमारे जीने का ढंग बन गया है। हर कदम पर हमारी सामाजिक प्रतिबद्धता को हमारा निजी स्वार्थ कुचल रहा है।[1]

राजीव गांधी का यह तीखा भाषण उस तौर-तरीके पर बिना किसी लाग लपेट के किए गए कठोर प्रहार के समान था जिसका उपयोग पिछले शासन द्वारा देश के कामकाज को चलाने के लिए होता रहा था। नए प्रधानमंत्री भली-भांति जानते थे कि भ्रष्टाचार ने देश की व्यवस्था और प्रशासन को दूषित कर रखा है। वे यह भी जानते थे कि इसका परिणाम जनता के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ है। ऐसा समझा जाता है कि अपने एक वक्तव्य में उन्होंने कहा था कि कल्याणकारी कार्यों के लिए निर्धारित हर एक रुपये में से केवल 15 पैसे ही जनता तक पहुंचते हैं। दूसरे शब्दों में, निर्धारित राशि का 85 प्रतिशत भाग रास्ते में ही खुर्द-बुर्द कर दिया जाता है। यह निश्चय ही एक असहनीय स्थिति थी और इसे बदलना जरूरी था।

परन्तु, कितने ही कठोर क्यों न सही, केवल निन्दा के शब्द ही काफ़ी नहीं थे। भ्रष्टाचार के संकट के निवारण के लिए ठोस कदम उठाने भी ज़रूरी थे। सौभाग्य से, प्रधानमंत्री राजीव गांधी पहले ही अपने राजनीतिक दल तथा प्रत्यक्षतः, पूरे देश को भ्रष्टाचार मुक्त करने के अपने इरादे की घोषणा कर चुके थे। अब उन्हें केवल इतना करना था कि वे स्पष्ट रूप से तथा समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार उस इरादे को क्रियान्वित करना प्रारंभ करते। भ्रष्टाचार ने उस समय इतना व्यापी और घृणित स्वरूप धारण नहीं किया था जितना कि आज। यदि प्रधानमंत्री ने स्वयं

ठोस कदम उठाए होते और अंत तक इस दिशा में अग्रसर रहते, तो इस पर अंकुश लगाया जा सकता था। राजीव गांधी ऐसा कोई भी कानून बना सकते थे जो उनके मतानुसार राजनीतिक वर्ग और नौकरशाही में सदाचार को सुनिश्चित बनाने के लिए उपयुक्त होता। वे अपनी इच्छानुसार ऐसे किसी भी तंत्र की स्थापना कर सकते थे जो सतर्कता के लिए आवश्यक होता और जिससे कानूनी प्रक्रिया के अंतर्गत भ्रष्टाचार के अपराधी सिद्ध होने वाले लोगों को शीघ्र और सख्त दंड दिया जा सकता। वे 'सार्वजनिक पदों' पर नियुक्त सभी लोगों के लिए आचरण के समुचित नियम बनाने और उन्हें कड़ाई से लागू करने की व्यवस्था कर सकते थे और इस पद की परिभाषा के अन्तर्गत राजनीतिक और प्रशासनिक नियुक्तियों में काम करने वाले सभी लोगों को शामिल कर सकते थे। मंत्रियों, संसत्सदस्यों तथा विधायकों आदि के लिए उपयुक्त जीवन स्तर को संभव बनाने तथा यह व्यवस्था करने के लिए कि उन्हें 'बाहरी साधनों' पर आश्रित न रहना पड़े, वे उच्चस्तरीय कमेटियां स्थापित कर सकते थे जो बिना किसी दम्भ के, वस्तुपरक दृष्टि से उनके लिए उचित वेतनमानों के विषय पर विचार कर सकतीं। वे सार्वजनिक रूप से 'प्रतिबद्ध' नौकरशाही के घातक सिद्धान्त को अस्वीकार कर सकते थे तथा उस की राजनीतिक निष्पक्षता को बहाल कर सकते थे जो कि प्रजातांत्रिक प्रशासन के लिए अत्यावश्यक थी। वे क्रमिक एवं सुनियोजित ढंग से 'लाइसेंस परमिट कोटा राज' को समाप्त कर सकते थे और सरकार तथा व्यापारियों के संबंधों के बीच भ्रष्टाचार के चलन को बहिष्कृत कर सकते थे।

सन्तानम् कमेटी की अनुशंसाएं तो पहले से ही उपलब्ध थीं और उनमें किसी भी अगली कार्रवाई के लिए आधार की व्यवस्था थी। आवश्यकता महसूस होने पर एक और कार्यदल बनाया जा सकता था जो कि और अधिक व्यापक सुझाव दे सकता।

राजीव गांधी इतना ही नहीं, इससे भी अधिक काम कर सकते थे - उनके राजनीतिक दल के किसी भी व्यक्ति की चूं-चपड़ के बिना। संसद में अपने विशाल बहुमत के चलते वे किसी भी विधेयक को स्वीकृति दिलवा सकते थे।

भारत को एक नया मोड़ देने का एक स्वर्णिम अवसर भाग्यलक्ष्मी ने राजीव गांधी को प्रदान किया था। पर भारत ने सत्यनिष्ठा के इस राजमार्ग पर चलने के इस अवसर को खो दिया क्योंकि ठीक इसी समय राजीव गांधी का ध्यान जनता की सब से महत्वपूर्ण आवश्यकता - ईमानदार सरकारी प्रशासन - से दूर हट कर, राजकाज के दूसरे पहलुओं की ओर आकर्षित हो गया।

इन में से एक विषय, सेना के लिए, स्वीडन से बोफ़ोर्स की फ़ील्ड तोपों की ख़रीद से संबंधित था। इस सौदे को समझने के लिए इसकी थोड़ी-सी पृष्ठभूमि के विषय में जानना सहायक होगा।

इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व के दौरान, भारतीय सेना इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि भारत को 115 एम एम व्यास की मैदानी तोपें खरीद कर अपनी प्रतिरक्षा क्षमता को सुदृढ़ करना चाहिए। इसके लिए पूछताछ प्रारंभ की गई और आवश्यक प्रक्रिया का श्रीगणेश किया गया। 31 अक्तूबर, 1984 को जब राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा गांधी का स्थान ग्रहण किया, तब प्रतिरक्षा मंत्रालय की विषय-सूची में इस काम को प्राथमिकता प्राप्त थी। तत्कालीन प्रतिरक्षा सचिव एस.के. भटनागर के कथनानुसार, प्रधानमंत्री राजीव गांधी की नई सरकार का यह 'निर्णय था कि अब के बाद प्रतिरक्षा सौदों की बातचीत और उनको तय करने में किसी बिचौलिये का कोई स्थान नहीं होगा।' उन्होंने यह भी कहा था कि 'यह सौदा पूरी तरह और केवलमात्र एक ओर भारत सरकार तथा दूसरी ओर निर्माताओं के बीच होगा।'

प्रधानमंत्री राजीव गांधी के इस निर्णय के अनुसार 3 मई 1985 को, प्रतिरक्षा सचिव भटनागर ने 4 प्रत्याशियों के वरिष्ठतम प्रतिनिधियों की एक बैठक बुलाई। ये चार प्रत्याशी उस समय 155 एम एम तोपों की आपूर्ति के लिए प्रतिद्वन्द्वी थे। इस बैठक में भटनागर ने चारों प्रतिनिधियों को सूचित किया कि 'भारत सरकार विदेशी आपूर्तिकर्त्ताओं के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय बिचौलियों को स्वीकार नहीं करेगी।' इसलिए उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि यदि उन्होंने कोई कमीशन भारतीय बिचौलियों को देने के लिए निर्धारित कर रखी है तो वे अपने-अपने प्रस्तावों में से उपयुक्त राशि कम कर दें। भटनागर ने इन प्रतिनिधियों को यह चेतावनी भी दी 'कि यदि भारत सरकार को पता चला कि अनुबन्ध के सिलसिले में किसी फ़र्म ने किसी बिचौलिये की नियुक्ति की है तो उसे सौदे के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा।' भटनागर के अनुसार, 'यह चेतावनी', पहले उद्धृत कीमतों के कम किए जाने का एक बहुत बड़ा कारण थी।[2]

इन बोलियों के पुनर्मूल्यांकन के बाद 2 आपूर्तिकर्त्ताओं का नाम छोटी-सूची में दर्ज किया गया। ये थे : फ्रांस की सौफ़्मा और स्वीडन की बोफ़ोर्स। ठीक इस अवसर पर, स्वीडन के प्रधानमंत्री ओलोफ़ पाल्मे ने स्वयं इस क्षेत्र में प्रविष्ट होने का निर्णय किया। उन्होंने अक्तूबर 1985 में, न्यूयॉर्क में प्रधानमंत्री राजीव गांधी के साथ मुलाकात के दौरान, यह मुद्दा उठाया। तत्कालीन प्रतिरक्षा सचिव भटनागर ने इस बात की पुष्टि की है (संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट, पैरा 7.11)। इस मीटिंग के दौरान हुई बातचीत की विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है पर ऐसा कुछ तो अवश्य घटित हुआ जिसके फलस्वरूप इस सौदे में आगे कोई ठोस प्रगति होने से पूर्व ओलोफ़ पाल्मे तथा बोफ़ोर्स-प्रबंधन के बीच विचार-विमर्श आवश्यक बन गया। उधर स्वीडन में ओलोफ़ पाल्मे ने शीघ्रता से अपना यह काम

पूरा किया और राजीव गांधी से एक और मुलाकात का निर्णय किया। उनके अनुरोध पर यह यात्रा जनवरी 1986 के उत्तरार्द्ध में होनी तय हुई।

ओलोफ़ पाल्मे भारत की अनौपचारिक यात्रा पर आए और व्यक्तिगत बातचीत के लिए राजीव गांधी से मिले। भटनागर के अनुसार, इस बैठक में प्रधानमंत्री ओलोफ़ पाल्मे ने प्रधानमंत्री राजीव गांधी को सूचित किया कि बोफ़ोर्स ने भारत के प्रतिरक्षा मंत्रालय के साथ बिना किसी बिचौलियों के, सौदे को सम्पन्न करने की इच्छा व्यक्त की है।

यही वह बैठक थी जिसमें वस्तुतः दोनों प्रधानमंत्रियों ने बोफ़ोर्स का सौदा तय किया था। यह साफ़ दिखाई देता था कि दोनों प्रधानमंत्रियों ने अपना-अपना मनोरथ पूरा कर लिया था। ओलोफ़ पाल्मे ने अपने देश के लिए मोटा रक्षा-सौदा हासिल कर लिया था और राजीव गांधी ने अपनी शर्तों पर बिना किसी बिचौलिये के, एक ईमानदार, पारदर्शी सौदा तय कर लिया था जिसमें किसी को कोई दलाली या प्रोत्साहन-धन दिए जाने की व्यवस्था नहीं थी। इसके बाद अधिकारियों को सौदे का अनुबंध तैयार करने और उस पर हस्ताक्षर करने का काम करना था।

दुर्भाग्य से, नियति के क्रूर हाथों ने इसके तुरंत बाद प्रहार किया जिससे यह घनिष्ठ संबंध वहीं समाप्त हो गया। 28 जनवरी, 1986 को प्रधानमंत्री ओलोफ़ पाल्मे की गोली मार कर हत्या कर दी गई, एक ऐसे हत्यारे द्वारा जिसकी पहचान आज तक नहीं हो सकी। पर चूंकि, बोफ़ोर्स का मामला पहले ही निपटाया जा चुका था, इसलिए इस दुखद घटना का किसी प्रकार का प्रभाव इस सौदे पर नहीं पड़ा।

प्रधानमंत्री राजीव गांधी स्टॉकहोम गए और उन्होंने 15 मार्च, 1986 को अंत्येष्टि में भाग लिया। वे एकमात्र शासनाध्यक्ष थे जिन्हें इस अवसर पर बोलने का सम्मान प्राप्त हुआ। उन्होंने एक संयत और शालीन भाषण दिया।

उसी दिन, इससे पूर्व, राजीव गांधी स्वीडन के नए प्रधानमंत्री इंग्वार कार्लसन से मिले थे। राजदूत ओज़ा के अनुसार, संवेदना व्यक्त करने के तुरन्त बाद राजीव गांधी मतलब के मुद्दे पर आ गए। उन्होंने इंग्वार कार्लसन को बताया कि उन्होंने हौवित्ज़र तोप का अनुबंध स्वीडिश सरकार से सौदे की वित्तीय शर्तों के बारे में कुछ स्पष्टीकरण प्राप्त हो जाने के बाद, स्वीडिश कम्पनी ए बी बोफ़ोर्स को देने का अपना निर्णय फाइल में दर्ज कर दिया है। प्रधानमंत्री इंग्वार कार्लसन ने राजीव गांधी का धन्यवाद किया और सुझाव दिया कि दोनों ओर के सम्बद्ध अधिकारी आपस में बैठ कर इस मामले को साफ़ कर लें। स्वीडिश पक्ष से कार्ल जोआन ओबर्ग और भारत की ओर से प्रधानमंत्री कार्यालय में अतिरिक्त सचिव चिन्मय गरेखान उसी शाम आधे घंटे से भी कम समय के लिए बैठे और मामला तय कर लिया। अब यह अनुबंध अपने अंतिम रूप में, हस्ताक्षरों के लिए तैयार था।[3]

प्रधानमंत्री राजीव गांधी स्टॉकहोम से अगले ही दिन, अर्थात् 16 मार्च 1986 को रवाना हो गए। 17 मार्च 1986 को अपने कार्यालय में वापस आकर उन्होंने बोफ़ोर्स के सौदे को अंतिम रूप से हरी झंडी दे दी। इसके पश्चात् प्रतिरक्षा मंत्रालय के अधिकारियों ने आवश्यक संस्वीकृतियां प्राप्त करने और संबंधित अनुबंध पर हस्ताक्षर करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए बोफ़ोर्स फाइल पर आवश्यक काम किया। यह एक बहुत बड़ा सौदा था और इस के लिए अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता थी। जैसा कि सर्वविदित है, भारत सरकार द्वारा, सरकारी खरीददारी के लिए निर्धारित सख्त कार्यविधि के अन्तर्गत, विभिन्न संबंधित अधिकारियों और मंत्रियों तथा उपयुक्त मामलों में प्रधानमंत्री तक को, प्रस्ताव के सभी अंगों की स्वीकार्यता पर अपने अनुमोदन को व्यक्त करने के लिए फ़ाइल के ऊपर हस्ताक्षर करने होते हैं। भारतीय नौकरशाही की भारी-भरकम कार्यशैली और पग-पग पर लिए जाने वाले लम्बे समय के बारे में तो दुनिया जानती है। पर यह कोई साधारण मामला नहीं था क्योंकि स्वयं प्रधानमंत्री इसके अंतिम वार्ताकार थे। इसके बावजूद, जिस तेज़ी के साथ, बोफ़ोर्स फ़ाइल, जो 1.3 अरब अमेरिकी डॉलर के खरीद सौदे से संबंधित थी, एक मेज़ से दूसरे मेज़ पर पहुंचती रही और जिस ढंग से यह सारा क्रम, जिसमें कई अधिकारी, 2 मंत्री और स्वयं प्रधानमंत्री सम्मिलित थे, केवल 6 दिनों में सम्पन्न कर लिया गया, वह सरकारी निर्णयों की प्रक्रिया में फुर्ती का एक अभूतपूर्व तथा अपराजेय रिकॉर्ड है।

इस प्रकार, 24 मार्च 1986 तक प्रतिरक्षा मंत्रालय द्वारा बोफ़ोर्स सौदे से संबंधित सारी औपचारिकताएं पूरी कर ली गईं। स्थलसेनाध्यक्ष ने 17 जनवरी 1986 को, पहले ही यह प्रमाणपत्र दे दिया था कि जो भी प्रस्ताव आए हैं, उनमें बोफ़ोर्स हौवित्ज़र तोप सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त, उसी महीने के आरंभ में, अर्थात् 10 मार्च 1986 को, बोफ़ोर्स ने प्रतिरक्षा मंत्रालय को इस आशय का आश्वासन देते हुए कि इस सौदे में कोई मध्यस्थ नहीं है, एक पत्र भेजा था। इस मामले में, कि 'कोई मध्यस्थ नहीं' है, भटनागर विशेष रूप से स्पष्ट थे, जब उन्होंने बाद में यह कहा था कि '.... यह बिल्कुल साफ़ था कि अंतिम सौदा तय करने से पहले हम पूरी तसल्ली करेंगे .... अनुबंध को अंतिम रूप देने से पूर्व इस शर्त का पूरा किया जाना अनिवार्य था।'[4]

इसी उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में 24 मार्च 1986 को भारत सरकार तथा बोफ़ोर्स के प्रतिनिधियों के बीच बोफ़ोर्स तोप के अनुबंध पर हस्ताक्षर हुए। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने स्वयं हस्तक्षेप करते हुए स्वीडन के प्रधानमंत्री के साथ बातचीत करके यह सुनिश्चित किया था कि इस सौदे में, स्पष्ट स्वीकृति के अनुसार, किसी मध्यस्थ की कोई भूमिका न रहे न किसी को रिश्वत या प्रोत्साहन-धन या ऐसी ही कोई

और रकम दी जाए और इस प्रकार, करार की शर्तों के अनुसार इसमें पूरी ईमानदारी बरती जाए।

बोफ़ोर्स के सौदे को उस समय इसी नज़र से देखा गया और शायद हमेशा ऐसे ही इसे देखा जाता। एक वर्ष बीत गया और इस सौदे के विषय में कोई नई बात नहीं हुई। फिर अचानक 16 अप्रैल 1987 को स्टॉकहोम में स्वीडिश रेडियो के एक प्रसारण में कहा गया कि बोफ़ोर्स ने भारत के इस रक्षा सौदे को हासिल करने के लिए, स्विस बैंकों के माध्यम से, किन्हीं बिचौलियों को रिश्वत की बड़ी-बड़ी रकमें दी हैं। भारत की जनता इस घोषणा से विचलित हो उठी और लोकसभा तथा प्रेस में एकदम ज़बर्दस्त हंगामा पैदा हो गया।

प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने दो टूक शब्दों में कहा कि बोफ़ोर्स के सौदे में उन्हें किसी मध्यस्थ के होने का कतई ज्ञान नहीं है। इस गर्मागर्म मुद्दे पर लोकसभा में 20 अप्रैल 1987 को हुई बहस के दौरान, प्रधानमंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित बयान दिया :

> ... प्रधानमंत्री पाल्मे ने मुझे विश्वास दिलाया था कि कोई मध्यस्थ या दलाल इसमें नहीं होंगे। इसी आधार पर यह काम किया गया था। हमें किसी न किसी व्यक्ति की बात को तो सच मानना ही पड़ता है और जब एक देश का प्रधानमंत्री उस कंपनी के साथ, जिससे सौदा होने जा रहा हो, गहराई से बातचीत करके, हमें यह विश्वास दिलाए कि सौदे में कोई मध्यस्थ नहीं है, तो हमें एक आदमी के शब्द को सत्य मानना ही पड़ेगा ... आप हमें कोई प्रमाण दीजिए कि इसमें कोई बिचौलिए हैं या रिश्वत, पुरस्कार अथवा दलाली दी गई है, तो हम कार्रवाई करेंगे और देखेंगे कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितने ही ऊंचे पद पर हो, बच कर न निकल सके। जहां तक हमारी जानकारी है, निश्चित रूप से इसमें कोई दलाल शामिल नहीं है। हमें कंपनी ने और स्वीडिश सरकार ने यह विश्वास दिलाया है कि कोई दलाल इसमें नहीं है। हमें स्वीडिश सरकार से टेलेक्स प्राप्त हुआ था जिसमें यह कहा गया था कि उन्होंने जांच कर ली है और उसी के आधार पर उन्होंने 'नहीं' कहा है ...

इसके बावजूद, स्वीडिश रेडियो अपनी बात पर स्थिर रहा और, वास्तव में, उसने अपने वक्तव्य पर और भी बल दिया, जब 21 अप्रैल 1987 को, स्वीडिश नैशनल रेडियो कंपनी (स्वेनिजेस रिस्करेडियो ए बी) के प्रमुख मिस्टर ओव जोन्सन ने निम्नलिखित सार्वजनिक बयान दिया : 'हमारी समाचार-रिपोर्ट कि बोफ़ोर्स ने भारतीय सौदा हासिल करने के लिए रिश्वत दी है, हमारे समाचार-विभाग को स्टॉकहोम से प्राप्त जानकारी पर आधारित है। इस जानकारी को समाचार-

कसौटी पर पूरी तरह जांचा गया है तथा इसके स्रोतों का प्रचलित प्रथा के अनुसार मूल्यांकन करके ही इसे प्रकाशित किया गया है। हमारी जानकारी पक्की है।'

स्वीडन और भारत, दोनों में इस बात को लेकर पैदा हुए सार्वजनिक आक्रोश को देखते हुए, बोफ़ोर्स ने एक लिखित रिपोर्ट में यह स्वीकार किया कि उन्होंने भारतीय सौदे के संबंध में कतिपय अनाम पार्टियों को कुछ भुगतान किए थे पर दावा किया कि ये भुगतान 'अनुबंध के अनुसार विपणन तथा प्रतिक्रय से संबंधित परामर्श-सेवाओं की प्रतिपूर्ति के सिलसिले में किए गए थे।' भले ही यह सीमित स्वीकृति थी, पर यह इस बात की स्वीकृति तो थी ही कि बोफ़ोर्स ने कुछ अन्य लोगों को गुप्त भुगतान किए थे। इसलिए इस मामले की छानबीन करना आवश्यक था। इस संदर्भ में, स्वीडिश सरकार ने स्वीडिश नैशनल ऑडिट बोर्ड को तुरंत छानबीन करने का आदेश दिया।

ऑडिट बोर्ड ने अपना काम मुस्तैदी से पूरा किया और अपनी रिपोर्ट स्वीडिश सरकार को दे दी। इस रिपोर्ट की एक प्रति नई दिल्ली स्थित स्वीडिश दूतावास ने भारत सरकार को सौंप दी। पर रिपोर्ट को सौंपने से पहले स्वीडिश सरकार ने उसके कुछ भागों को मिटा दिया। रिपोर्ट जैसी भी थी, इसमें इस बात की पुष्टि की गई थी कि बिचौलियों या प्रतिनिधियों को भुगतान किया गया था। इसमें यह भी कहा गया था कि यह भुगतान किसी सुस्पष्ट उद्देश्य से अथवा किसी काम के लिए नहीं किया गया था। पर इस दलाली को लेने वालों के नाम तथा उससे संबंधित बैंकिंग लेनदेन के विवरण रिपोर्ट से मिटा दिए गए थे। बोफ़ोर्स ने स्वीडन में लागू एक कानून के अधीन वाणिज्यिक गोपनीयता का दावा करते हुए नाम ख़ारिज कर दिये थे।

भारत में बोफ़ोर्स का मामला सुलगता रहा। संसद में उठा हंगामा थमने का नाम ही नहीं ले रहा था। इसे देखते हुए, मामले की जांच के लिए एक संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया। समिति ने रक्षा मंत्रालय की गवाही हासिल की। उसने बोफ़ोर्स के एक दल को भी आमंत्रित किया और कुछ ऐसे विवरण प्राप्त किए जो अभी तक उपलब्ध नहीं थे। समिति ने स्वीडिश सरकार के अधिकारियों से जानकारी प्राप्त करने के लिए एक टीम को स्वीडन भेजा। इसके अलावा समिति ने एक ऐजेंसी का उपयोग उस जानकारी की जांच करने के लिए किया जो कि बोफ़ोर्स ने उन पार्टियों के संबंध में दी थी, जिन्हें पैसा दिया गया था।

समिति की जांच के फलस्वरूप, निम्नांकित बातें सामने आईं :

1. अनुबंध संबंधी अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए, बोफ़ोर्स ने, निम्नलिखित तीन कंपनियों को 'समापन' शुल्क दिया था :

   (*i*) स्वेन्स्का इंकार्पोरेटिड, पानामा में पंजीकृत - 18.84 करोड़ स्वीडिश क्रोनर।

(*ii*) मोरेस्को/मॉइनिआओ एसए (पीआइटीसीओ), स्विट्ज़रलैंड में पंजीकृत - 8.1 करोड़ स्वीडिश क्रोनर।

(*iii*) ए.इ. सर्विसिज़ लि., यू.के. में पंजीकृत - 5.0 करोड़ स्वीडिश क्रोनर।

भुगतान की गई कुल राशि - 31.94 करोड़ स्वीडिश क्रोनर (5.0 करोड़ अमेरिकी डालरों से अधिक)।

2. प्रशासनिक सहायता सेवाओं के लिए, विन चड्ढा की भारत स्थित एनाट्रॉनिक जनरल कार्पोरेशन को मासिक भुगतान किए गये थे। इस कंपनी को 'समापन' शुल्क नहीं दिया गया।

छानबीन करने के लिए नियुक्त एजेंसी द्वारा की गई जांच से यह पता चला कि तीन में से पहली दो कंपनियां नकली - 'डमी' - हैं। तीसरी, यू.के. में रजिस्टर्ड, ए.इ. सर्विसिज़ लि. सक्रिय है। इस कम्पनी ने 15 नवम्बर 1985 को एबी बोफ़ोर्स के साथ 'परामर्श' सेवाओं के लिए एक क़रार किया था। विक्रय-अनुबंध 1 अप्रैल 1986 से पहले-पहले मुकम्मल हो जाने की शर्त पर इस कम्पनी को कुल बिक्री-रकम का 3 प्रतिशत दिए जाने की बात तय हुई थी। इस कम्पनी ने बोफ़ोर्स के लिए जो काम किया था वह केवल यह था कि इसने बोफ़ोर्स के तत्कालीन अध्यक्ष, मार्टिन आर्दबो को, 'बातचीत के तरीके और समय तथा अनुबंध की अन्तर्वस्तु' के बारे में व्यक्तिगत रूप से कुछ परामर्श दिया था। बोफ़ोर्स इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सकी कि क्यों अचानक नवम्बर 1985 में इस कम्पनी की सेवाओं की आवश्यकता पड़ी और दलाली में इतनी बड़ी रकम देना क्यों मान लिया गया।

उस समय, इन तीन कम्पनियों के धूम्रपट के पीछे खड़े व्यक्तियों की पहचान के संबंध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी।

संयुक्त संसदीय समिति ने अपनी बेहतरीन योग्यता के अनुरूप इस विषय की जांच की और, अन्ततः, समिति निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंची :

1. तकनीकी दृष्टि से बोफ़ोर्स तोप उत्कृष्ट थी।
2. रक्षा मंत्रालय ने सौदे से संबंधित बातचीत सर्वश्रेष्ठ ढंग से की थी।
3. जो कीमत दी गई, वह सभी प्रस्तावों में सब से कम थी।
4. बातचीत में कोई भारतीय, या अभारतीय, मध्यस्थ नहीं था।
5. किसी - भारतीय या अभारतीय - को कोई दलाली या रिश्वत नहीं दी गई।

संक्षेप में, संयुक्त संसदीय समिति को बोफ़ोर्स सौदे में कुछ भी अनुचित दिखाई नहीं दिया और इसने अपनी रिपोर्ट में राजीव गांधी के पक्ष को सर्वथा उचित ठहराया।

संयुक्त संसदीय समिति की इस रिपोर्ट की स्वीकृति के साथ प्रधानमंत्री राजीव गांधी तथा उनकी सरकार के लिए तो बोफ़ोर्स सौदे का अध्याय समाप्त हो गया, पर 1989 के अगले चुनाव में बोफ़ोर्स मुख्य मुद्दा बन गया। वी.पी. सिंह ने अपने ज़ोरदार अभियान में देश के प्रत्येक भाग में सार्वजनिक सभाओं में इस विषय पर भाषण दिए। 1984 के चुनावों में जहां राजीव गांधी की कांग्रेस को लोकसभा में 543 में से 415 स्थान प्राप्त हुए थे, वहां इस बार वह केवल 197 स्थान प्राप्त करके बुरी तरह पिछड़ गई और बहुमत खो बैठी। राजीव गांधी को त्यागपत्र देना पड़ा और उनके स्थान पर वी.पी. सिंह प्रधानमंत्री बने। बोफ़ोर्स सौदे की जांच पुनः आरंभ की गई और तब से चल रही है।

21 मई 1991 को एक त्रासद घटना में राजीवगांधी की नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गई और इस प्रकार नियति ने उन्हें अपनी निर्दोषता सिद्ध कर पाने से वंचित कर दिया। शोक का विषय है कि एक अत्यंत सौम्य और स्पष्टवादी व्यक्ति, जिसने छोटी-सी आयु में ऊंची संभावनाओं के साथ प्रधानमंत्रित्व आरंभ किया था, अपने जीवन के वसंत में ही मृत्यु का शिकार हो गया।

स्विस अधिकारियों से जो जानकारी केन्द्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआइ) को अभी तक प्राप्त हुई है, उससे यह पता चलता है कि ऊपर लिखी तीन कम्पनियों में से एक - ए.इ. सर्विसिज़ लिमिटिड - को बोफ़ोर्स ने 72 लाख अमेरीकी डालर दिये थे। यह रकम अन्त में, इटली के एक व्यापारी, ओटावियो क्वात्रोची को, जो अब मलेशिया में रहता है, मिली। इस मामले की सुनवाई कर रहे न्यायालय ने अब सीबीआइ के आरोप पत्र को मंजूरी दे दी है और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर आगे की कार्रवाई करने का निर्णय किया है। अभी भी इस के निष्कर्षों से बोफ़ोर्स भुगतानों के रहस्य से पर्दा उठने की संभावना है।

बोफ़ोर्स सौदे के बाद के 14 वर्षों में, भ्रष्टाचार की समस्या ने एक दानव का रूप ग्रहण कर लिया है। वास्तव में, हाल ही में प्रकाश में आए 1000 करोड़ रुपयों के घोटालों के सामने बोफ़ोर्स फीका पड़ गया है। और जैसा कि हम अगले अध्यायों में देखेंगे, भ्रष्टाचार तेज़ी से और अधिक बढ़ा है।

अंत्यसंकेत

1. एस.एस. गिल, *द पेथालॉजी आफ़ कॅरप्शन*, हार्पर कोलिन्स पब्लिशर्स इंडिया (प्रा.) लि., नई दिल्ली 1988, पृष्ठ 82।
2. बोफ़ोर्स सौदे की जांच के लिए नियुक्त संसदीय समिति के समक्ष, रक्षा सचिव एस.के. भटनागर की गवाही, समिति की रिपोर्ट के पैरा 7.7 और 7.10, भारत सरकार का प्रशासन, नई दिल्ली 1988।,
3. बी.एन.ओझा, *द एम्बेस्सेडर्स एविडेंस*, कोणार्क पब्लिशर्ज प्राइवेट लि., नई दिल्ली 1997, पृष्ठ 15, 16।
4. *संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट*, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, अनुच्छेद 7.15।

अध्याय 6

राजीव गांधी के बाद के काल में भ्रष्टाचार में कैंसर जैसी वृद्धि

1989 के आम चुनावों के बाद से, जब राजीव गांधी के कांग्रेस दल ने लोकसभा में अपना वर्चस्व खो दिया, अब तक भारत में 6 प्रधानमंत्री रहे हैं - वी.पी. सिंह, चंद्रशेखर, पी.वी. नरसिंह राव, एच.डी. देवेगौड़ा, आइ.के. गुजराल और वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी। ये सब अपने पद पर बने रहने के लिए अपने सहयोगी दलों तथा/अथवा बाहर के समर्थकों पर आश्रित रहे हैं। इनमें से चार - वी.पी. सिंह, चंद्रशेखर, एच.डी. देवेगौड़ा और आइ.के. गुजराल तो अपने सहयोगियों और समर्थकों की अस्थिर मानसिकता के कारण अपने पद पर एक वर्ष का समय भी पूरा नहीं कर पाए। जहां तक भ्रष्टाचार की भयंकर समस्या का प्रश्न है, इनमें से कोई भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सका क्योंकि इन का कार्यकाल बहुत छोटा था। वी.पी. सिंह ने बोफ़ोर्स के भुगतानों की जड़ तक पहुंचने का प्रयास किया पर कोई ख़ास सफलता उन्हें नहीं मिली। प्रधानमंत्री गुजराल सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार से दुखी थे और उन्होंने स्वाधीनता दिवस के अपने भाषण में इसका उल्लेख भी किया था। पर उन्होंने दुखी मन से यह स्वीकार किया कि उनके पास कोई जादू की छड़ी नहीं है जिसके ज़ोर पर वे इस दानव को भगा सकें।

श्री पी.वी. नरसिंह राव, जो 21 जून 1991 को प्रधानमंत्री बने, पांच वर्ष का अपना कार्यकाल पूरा करने में समर्थ रहे यद्यपि कांग्रेस का बहुमत थोड़ा कम था। वे बाहरी समर्थन को जुटा पाने में सफल रहे और, कई लोगों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि, यह व्यवस्था टूटी नहीं। राव तथा उनके वित्तमंत्री मनमोहन सिंह को आधुनिक भारत के इतिहास में इस बात के लिए सदैव सम्मानजनक स्थान प्राप्त रहेगा कि उन्होंने ऐसे अत्यावश्यक आर्थिक सुधारों को लागू करके औद्योगिक प्रगति का पथ प्रशस्त किया, जोकि जनसाधारण के कल्याण के लिए अनिवार्य थे।

और भ्रष्टाचार? नरसिंह राव अपने पाण्डित्य और सौम्य शालीनता के लिए सुख्यात और समादृत थे। पिछली सरकारों में उन्हें मंत्रित्व का भी पर्याप्त अनुभव था। कांग्रेस के भीतर वे सर्वप्रिय थे तथा एक वयोवृद्ध राजनेता के रूप में उन्हें सम्मान प्राप्त था। जब 1991 में राजीव गांधी की नृशंस हत्या हुई, तो निराश

कांग्रेस दल एक नेता की तलाश में था। कुछ वरिष्ठ कांग्रेसजन राजीव गांधी की विधवा पत्नी सोनिया गांधी को नया नेता बनाना चाहते थे पर इस प्रयास को सफलता नहीं मिली। फिर इस काम के लिए कांग्रेस दल ने नरसिंह राव को उनके स्वैच्छिक अवकाश ग्रहण से वापस बुलाया।

सर्वोच्च पद पर ऐसे विद्वान् और विलक्षण व्यक्ति के आने पर यह काफ़ी उम्मीद बंधी थी कि अब भ्रष्टाचार को खुली छूट प्राप्त नहीं रहेगी। पर यह आशा भी ज़्यादा दिन नहीं रही। उनके कार्यकाल में भ्रष्टाचार के लोकापवाद - मंत्रिपरिषद् के सदस्यों, मुख्यमंत्रियों, यहां तक कि नरसिंह राव के विरुद्ध भी - रोज़ की बात बन गए। बहुत-सी पुस्तकों में विस्तारपूर्वक उन ग़लत तरीक़ों का वर्णन किया गया है जो ऐसे प्रत्येक काण्ड में अपनाए गए थे। इनमें शेयरों और प्रतिभूतियों से संबंधित हर्षद मेहता घोटाला जो बैंक अधिकारियों से मिल कर किया गया था और जिसके कारण कितने ही सामान्य शेयरधारकों को भयंकर नुकसान हुआ था, चीनी घोटाला, यूरिया घोटाला, चारा घोटाला, स्वास्थ्य विभाग का घोटाला इत्यादि शामिल हैं। एक केंद्रीय मंत्री के पास उसके निवास स्थान पर नकद तीन करोड़ रुपये पाए गए। एक मंत्री के बारे में यह सुना गया कि वह राजधानी, नई दिल्ली में सरकारी आवास आबंटित करने के लिए वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों से रिश्वत लेता है। निर्लज्ज और निःशंक भ्रष्टाचार का यह एक और उदाहरण था। इस प्रकार यह घिनौनी दास्तान चलती जा रही है और घोटालों की सूची निरंतर लम्बी होती जा रही है।

पूरे देश का परिदृश्य अत्यंत अंधकारमय और निराशाजनक है। राष्ट्र के प्रत्येक कार्य-व्यापार में भ्रष्टाचार का ज़हर रिस रहा है। इस प्रवृत्ति का सबसे घृणित पहलू उस पैशाचिकता में दिखाई देता है जो प्रत्येक सरकारी कार्यालय में साधारण जनता के असह्य कष्ट का कारण बनी हुई है। आइए, संक्षेप में इस भयानक एवं दुर्दमनीय प्रतीत होने वाली प्रवृत्ति की ओर देखें।

अध्याय 7

सत्यनिष्ठा और आदर्शों में तेज़ी से आती हुई व्यापक गिरावट

नौकरशाही

अगस्त 1947 में जब भारत स्वाधीन हुआ, उस समय देश की नौकरशाही को कार्यकुशल, अनुशासित तथा उस समय के अपने उत्तरदायित्वों के प्रति समर्पित और पर्याप्त समझा जाता था। इस पर सरकारी कर्मचारियों के काफ़ी कड़े आचरण नियम लागू होते थे। इस नौकरशाही के सर्वोच्च संवर्ग को 'भारतीय सिविल सर्विस' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त थी। इसके सदस्यों की तुलना संसार के सर्वश्रेष्ठ सरकारी अधिकारियों से की जाती थी।

1988 में भारतीय नौकरशाही को, संसार क्या, एशिया की सब से निकृष्ट सेवाओं में गिना गया। यह निर्णय हांगकांग स्थित एक 'विचार-सरोवर' का था जिसका नाम 'पोलिटिकल एंड इकोनॉमिक रिस्क कंसल्टेंसी' है और यह ऐसे व्यापारियों के हाल में ही किए गए एक सर्वेक्षण पर आधारित था जिनकी एशिया के देशों की नौकरशाही के साथ संवाद की प्रक्रिया चलती रहती है। इस सर्वेक्षण के परिणाम पूरे क्षेत्र के व्यापारिक-प्रतिष्ठानों और चेम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स में प्रचारित किए गए थे।

10 अंकों के पैमाने पर, 2.53 अंकों के साथ सिंगापुर को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला और 9 अंकों पर वियतनाम को सब से निकृष्ट (देखें तालिका 7.1)।

इस रिपोर्ट के संबंध में 11 मार्च 1998 के अपने संपादकीय में *द इकोनॉमिक टाइम्स* ने निम्नलिखित टिप्पणी की थी :

> यह सचमुच उस देश के लिए खेदजनक स्थिति है जिसे किसी समय अपने प्रशासन की गुणवत्ता, अपनी नौकरशाही के कार्मिकों की निष्ठा और उनके ज्ञान पर गर्व था। हर लिहाज़ से, अपनी प्रशासकीय संस्था पर से हमारे सामूहिक विश्वास का बुरी तरह से क्षरण हुआ है। जब तक हमारी विशाल सरकारी सेवा के तंत्र में आमूल रूप से ऐसे सुधार के उपाय नहीं किए जाते - जिनसे एक फलती-फूलती मार्किट अर्थव्यवस्था के समुचित संचालन में उसका सहयोग प्राप्त हो सके - तब तक उसे नए सिरे से संस्कार सम्पन्न करना संभव

नहीं है। भारतीय प्रशासन की आज की अमान्य अवस्था राष्ट्र की प्रगति के लिए किए जा रहे प्रयासों में एक गंभीर रुकावट है। इससे कार्यव्यापार का खर्चा बढ़ता है, मार्किट-शक्तियों का मार्ग अवरुद्ध होता है, सार्वजनिक धन बर्बाद होता है और यह एक ऐसी विचारधारा के आधार पर पनपती है जिसके अन्तर्गत राज्य अपने हाथ में अनावश्यक कार्यों को तो ले लेता है पर अपने आधारभूत कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाता। इससे पहले कि मूलभूत सुधारों को लागू किया जाए, इस विचारधारा को नया रूप देना होगा।[1]

तालिका 7.1: पोलिटिकल एंड इकोनॉमिक रिस्क कंसल्टेंसी, हांगकांग द्वारा एशियाई नौकरशाहियों संबंधी निर्धारण 1998

कुशलता का दर्जा	*देश*	*अंक*
1.	सिंगापुर	2.53
2.	हांगकांग	3.11
3.	मलेशिया	5.43
4.	ताइवान	6.25
5.	जापान	6.69
6.	थाइलैंड	6.88
7.	फिलिपाइन्स	7.25
8.	चीन	7.33
9.	भारत	8.00
10.	इंडोनेशिया	8.00
11.	दक्षिणी कोरिया	8.27
12.	वियतनाम	9.00

स्वाधीनता के बाद से, आर्थिक गतिविधियों में राज्य की भूमिका में वृद्धि हो जाने के कारण, भारतीय नौकरशाही के आकार में अनियंत्रित ढंग से वृद्धि हुई है। केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की संख्या 1948 में 14.4 लाख से बढ़ कर 1997 में 38.7 लाख तक जा पहुंची थी। प्रशासन की पद्धति और निर्णय करने के तौर-तरीके लगभग वैसे ही धीमे और सुस्त हैं जैसे कि वे स्वाधीनता से पहले थे, जब सरकारी प्रशासन का उद्देश्य और लक्ष्य केवल कानून और व्यवस्था को बनाए रखना और हर प्रकार से यथास्थिति की रक्षा करना था। और यह सब प्रशासनिक सुधार आयोग के हस्तक्षेप के बावजूद है, जिसकी स्थापना अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही, लाल बहादुर शास्त्री ने, मुख्यतः 'लालफीताशाही' को यथासंभव कम कर के शासनप्रणाली में परिवर्तन करने और निर्णय लेने की गति को तेज़ करने के उद्देश्य से की थी। इस आयोग द्वारा दी गई भारी-भरकम रिपोर्ट

और उसमें की गई लम्बी चौड़ी अनुशंसाओं का कोई प्रभाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। लोगों की नज़र में पूरी नौकरशाही लापरवाह, अकुशल, घमण्डी और भ्रष्ट है। निस्संदेह, अब भी कई अधिकारी हैं जो ईमानदार हैं पर उनकी संख्या नगण्य है तथा निरन्तर घटती जा रही है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (आइएएस) भी, जो भारतीय सिविल सर्विस (आइसीएस) की उत्तराधिकारिणी है, बदनामी से बची हुई नहीं है। अब इसे कुशल और प्रभावी नहीं समझा जाता, न ही अब यह सत्यनिष्ठा के उदाहरण के रूप में जानी जाती है। नौकरशाही के सभी संवर्गों में, जिनमें आइएएस के अधिकारी भी शामिल हैं, भ्रष्टाचार के उदाहरण सामने आए हैं पर इनमें उस से अधिक चौंका देने वाला एवं जघन्य उदाहरण और कोई नहीं है जिसका वर्णन नीचे किया गया है।

16 जनवरी, 1998 को एन.सी. सक्सेना, आइएएस अधिकारी तथा ग्रामीण क्षेत्रों एवं रोज़गार मंत्रालय में भारत सरकार के सचिव ने भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव आर.एस. माथुर को निम्नांकित पत्र लिखा था :[2]

> दो दिन पहले मैं भारतीय सार्वजनिक प्रशासन संस्थान (आइआइपीए), नई दिल्ली में भारतीय वन सेवा के अधिकारियों (जो सभी यू.पी. संवर्ग के हैं और उत्तर प्रदेश के विभिन्न ज़िलों में कार्यरत हैं) के समक्ष भाषण देने के लिए गया था। ये वहां एक उदग्र समन्वित कार्यक्रम में भाग ले रहे थे। चर्चा के दौरान उन्होंने शिकायत की कि उत्तर प्रदेश के कई ज़िलों में, रोज़गार बीमा योजना (इएएस) के कोष की वहां के कलेक्टरों एवं ज़िला ग्रामीण विकास एजेंसियों (डीआरडीए) के अधिकारियों द्वारा नीलामी की जाती है। चूंकि इएएस का कोष किसी विभाग विशेष के लिए पूर्वनिर्धारित नहीं होता और काम कुछ इस प्रकार के हैं जिनके प्रकल्प कई विभागों - जैसे सार्वजनिक निर्माण विभाग, कृषि, बाग़बानी, मृदासंरक्षण, वन, लघु जल-सिंचाई आदि - द्वारा तैयार किए जा सकते हैं, विभिन्न विभागों द्वारा अनौपचारिक रूप से बोली लगाई जाती है और जो विभाग कलेक्टर को सबसे अधिक रिश्वत देने में सफल हो जाता है, उसे ही प्रकल्प के लिए इएएस की रकम मिल जाती है। उक्त कार्यक्रम के प्रतिभागियों के अनुसार रिश्वत की राशि पूरी रकम का लगभग 30 प्रतिशत रहती है। यह आरोप भी लगाया गया है कि यह सारी रकम स्थानीय राजनीतिज्ञों, बिचौलियों और डीआरडीए के अधिकारियों में बांट दी जाती है। इसके अंदर वह रिश्वत और दलाली शामिल नहीं है, जिन्हें 'अनुबंध' हासिल कर लेने वाले विभाग के अधिकारी, आपस में बांट लेते हैं। उक्त कार्यक्रम में भाग लेने वाले अधिकारियों की आम राय यह थी कि इएएस के धन का 50 से 60 प्रतिशत

भाग इस प्रकार रिश्वत और भ्रष्टाचार में ख़र्च होता है और लोगों को मिलने वाले लाभ में कम से कम पचास प्रतिशत की कमी हो जाती है।

चूंकि उस क्षेत्र में काम करने वाले अधिकारियों द्वारा लगाए गए ये आरोप अत्यंत गंभीर हैं, मैंने यह उचित समझा कि आपको इनसे अवगत करा दूं ताकि आप तकनीकी टीमों का गठन करके उन्हें कुछ, इधर-उधर से चुने गए, खण्डों की शत-प्रतिशत जांच करने के लिए भेज सकें।

इस पत्र की प्रतिकृति, 10 फरवरी 1998 को *द पॉयनियर* ने अपने नई दिल्ली संस्करण में प्रकाशित की थी। इसके साथ ही टिप्पणियां और कुछ और विवरण भी थे जिनसे पता चलता था कि एन.सी. सक्सेना ने नीलामी की जिस प्रथा का उल्लेख किया था, वह उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त कई अन्य प्रदेशों में भी व्याप्त है। *द पॉयनियर* द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के कुछ अंश नीचे दिए जा रहे हैं :

यह एक ऐसी नीलामी है जिसके विषय में कभी किसी ने नहीं सुना। जिस वस्तु की नीलामी हो रही है वह है सार्वजनिक कोष - ग्रामीण निर्धनों के लिए नियत हज़ारों करोड़ रुपये। नीलामी करने वाले और बोली लगाने वाले दोनों एक ही हैं - नौकरशाह और राजनीतिज्ञ।

रोज़गार बीमा योजना (इएएस) का उद्घाटन बड़ी धूमधाम से 2 अक्तूबर 1993 को किया गया था। इसके अन्तर्गत, देश के 23 राज्यों और 4 केन्द्र शासित प्रदेशों में फैले 393 ज़िलों के 3206 पिछड़े खण्डों के ग्रामीण श्रमिकों को कृषि की दृष्टि से मंदी के 100 दिनों के दौरान सुनिश्चित रोज़गार देने की व्यवस्था है। अब तक केन्द्र और राज्य सरकारों ने कुल मिला कर 4,500 करोड़ रुपये इस योजना पर खर्च किए हैं।

ज़िला स्तर पर, इस कार्यक्रम का संचालन ज़िला ग्रामीण विकास एजेंसी (डीआरडीए) द्वारा ज़िलाधीश - डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर अथवा डिप्टी कमिश्नर - की अध्यक्षता में किया जाता है।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक के कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारियों का, जिन्होंने इएएस के अन्तर्गत उपयोग किए गये धन के बारे में जांच की है, कहना है कि धन की नीलामी की यह प्रथा अन्य राज्यों में भी फैली हुई है।

पिछले वर्ष की गई सर्वांगीण जांच के दौरान लेखा परीक्षकों ने पाया कि ज़िलाधीश, विकास खंड अधिकारी और राजनीतिज्ञ इस परियोजना के धन से अपनी जेबें भरते रहे हैं।

उदाहरणार्थ, नागालैंड में राज्य ग्रामीण विकास एजेंसी के परियोजना निर्देशक ने भारतीय स्टेट बैंक, कोहिमा के बचत खाता (सं. 012/4835) में से 11.20 करोड़ रुपये निकाल कर अपने नाम से सावधि जमा खाते में जमा करवा दिए। इस

खाते में यह पैसा 180 दिन तक रहा और इससे 56 लाख रुपये ब्याज प्राप्त हुआ। उक्त अधिकारी ने प्रकल्प राशि वापस स्टेट बैंक के खाते में जमा कर दी पर ब्याज की रकम अपने खाते में ही रहने दी।

अनुमान है कि अन्य राज्यों में, व्यक्तिगत खातों में रक्खे गए ऐसे धन की राशि 111 करोड़ रुपये से अधिक है।

नागालैंड में और भी कई गंभीर अनियमितताएं थीं। दीमापुर और मोन ज़िलों में 15.45 लाख रुपये की वेतन राशि श्रमिकों के बदले विधायकों को दे दी गई। 15.45 लाख रुपये की ही एक और रकम कुछ विशिष्ट व्यक्तियों, उनके निजी सचिवों और सरकारी अधिकारियों में बांट दी गई और 8.45 लाख रुपये एक राजनीतिक दल के दो पदाधिकारियों में वितरित कर दिए गए।

महाराष्ट्र में, ज़िला मृदासंरक्षण अधिकारी, मालेगांव (नासिक) ने 32.82 लाख रुपये 22 ऐसे स्वैच्छिक संगठनों को ख़ैरात कर दिए जो न तो पंजीकृत थे, न ही उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में कभी काम किया था।

एक और गंभीर अनियमितता सामने आई है, वह यह कि जिस काम को ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों और मज़दूरों को सौंपा जाना चाहिए था, उसे निजी ठेकेदारों को सौंप दिया गया।

आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, सिक्किम, तमिलनाडु, गुजरात और पश्चिम बंगाल में 193 करोड़ रुपये के मूल्य का काम निजी ठेकेदारों और बिचौलियों को दिया गया।

और जिन ग़रीबों को वर्ष में 100 दिन की रोज़गार राशि का भरोसा दिलाया गया था उन्हें केवल 16 से 19 दिन तक की राशि ही मिली और उसमें से भी कई लोगों को न्यूनतम निर्धारित वेतन से कहीं कम दर पर।

यह उल्लेखनीय है कि जिन ज़िलाधिकारियों पर यह आरोप था कि उन्होंने रोज़गार बीमा योजना की राशियों की नीलामी की है, उनमें से कुछेक को छोड़कर अधिकतर, आइएएस अधिकारी थे।

एक और उदाहरण और उसके बाद, भारत की नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के संबंध में, और कुछ लिखना आवश्यक नहीं होगा। 13 मार्च, 1998 के *द इंडियन एक्सप्रेस* में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, एक जनहित याचिका की सुनवाई के दौरान पटना उच्च न्यायालय ने कहा था कि बिहार में सरकारी सेवक पूरी तरह भ्रष्ट हैं तथा वे बिहार की छवि पर कलंक हैं। इससे एक दिन पूर्व ही, भारत सरकार के ग्राम विकास सचिव, एन.सी. सक्सेना ने, बिहार सरकार के मुख्य सचिव, बी.पी. वर्मा को अपने एक पत्र में दो टूक शब्दों में लिखा था कि बिहार

के अधिकारी भ्रष्ट और अकुशल लोग हैं और वे समाज के कमज़ोर वर्गों के लिए नियत धन को लूट कर अपने राजनीतिक आक़ाओं की जेबें भरने में लगे हैं। यह समाचार देते हुए, *द पायनियर* ने अपने 13 मार्च, 1998 के अंक में आगे जानकारी दी कि बिहार में, जहां केन्द्र सरकार की, ग़रीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए नियत सहायता राशि का एक बहुत बड़ा भाग वास्तव में सरकारी कर्मचारियों ने ठेकेदारों और राजनीतिज्ञों के साथ सांठ-गांठ कर के लूट लिया है, एक दर्जन वरिष्ठ नौकरशाहों और 1200 से अधिक राजपत्रित अधिकारियों के ख़िलाफ भ्रष्टाचार के आरोप हैं। इस रिपोर्ट में उन वरिष्ठ अधिकारियों के नाम थे जिन पर भ्रष्टाचार के आरोप हैं और जो प्रशासन के उच्चतम पदों पर हैं, जैसे, सदस्य, राज़स्व बोर्ड, श्रम आयुक्त, अतिरिक्त वित्त आयुक्त, डिवीज़नल आयुक्त, ज़िला मैजिस्ट्रेट, उत्पाद शुल्क आयुक्त आदि। इनमें से अधिकतर अधिकारी आइएएस के सदस्य थे।

दुःख की बात है कि भारत की सर्वोच्च नौकरशाही की आज यह दशा हो गई है जबकि 1947 में इसे देश का गौरव माना जाता था।

पुलिस

देश-भर में, पुलिस को मिलने वाला वेतन शोचनीय रूप से कम है। ऐसे में, यदि वे कानून के अन्तर्गत अपनी शक्ति का उपयोग अतिरिक्त आय के लिए करें तो क्या आश्चर्य? यदि किसी नागरिक को कोई शिकायत हो तो सुनवाई से पहले उसके लिए रिश्वत देना ज़रूरी है और इस शिकायत का कुछ समाधान हो, इसके लिए कुछ और देना पड़ता है। प्रत्येक इलाके में, बाहुबलियों ने गिरोह बना रक्खे हैं जो दुकानदारों तथा अन्य व्यक्तियों से 'सुरक्षा' धन की वसूली करते हैं। ये ठग इलाके के पुलिस कर्मचारियों को साप्ताहिक भुगतान करते हैं ताकि ये अपना धंधा निर्भीकता से चलाते रहें। और पुलिस विभाग के उच्च पदों की कहानी भी इससे अलग नहीं है। कभी-कभी तो पुलिस कर्मचारियों को दूसरे पुलिस कर्मचारियों को ही रिश्वत देनी पड़ती है। नीचे एक मज़ेदार किस्सा उद्धृत किया गया है जो कि *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* के नई दिल्ली संस्करण में 21 मई, 1998 को प्रकाशित हुआ था :

पुलिस द्वारा पुलिस को रिश्वत

एक साधारण नागरिक का एक पुलिस कर्मचारी को रिश्वत देना तो ख़बर नहीं है, पर आज भी एक पुलिस कर्मचारी का दूसरे पुलिस कर्मचारी को रिश्वत देना एक समाचार ही माना जाएगा। कोलकाता में, एक यातायात-सिपाही का किसी ट्रक चालक की खिड़की में हाथ डाल कर हफ्ता वसूल करना वैसा ही दैनिक दृश्य है जैसा प्रतिदिन सूर्योदय होना। कई इलाकों में फेरी वाले तथा दुकानदार

स्थानीय थाने में कर्तव्यस्वरूप 'तोला' अदा करते हैं। पुलिसबल अपने इन अधिकारों के प्रति अत्यंत जागरूक है। एक बार वाम मोर्चा सरकार के एक भूतपूर्व मंत्री ने एक यातायात-सिपाही को रंगे हाथों पकड़ लिया और उसे पुलिस मुख्यालय ले गया। इसकी प्रतिक्रिया वहां की प्रभावशाली पुलिस यूनियन में बहुत तीखी हुई थी। पर जब एक सब-इंस्पेक्टर को सुरक्षित यात्रा के लिए दो पुलिसकर्मियों को रिश्वत देनी पड़े, तो निश्चय ही यह चिन्ता का विषय बन जाता है। एक रात की बात है, दक्षिणी कोलकाता के एक थाने का कोई सब-इंस्पेक्टर स्कूटर पर जा रहा था, पिछली सीट पर उसका बेटा बैठा था। संभवतः उन्हें उत्तरी कोलकाता के किसी अस्पताल जाना था। उन दोनों में से किसी ने भी हैल्मट नहीं पहना हुआ था जो कि सरकारी आदेशों के अनुसार, पहनना अनिवार्य है। सब-इंस्पेक्टर ने वर्दी नहीं पहन रक्खी थी। दो पुलिसकर्मियों ने उन्हें रोका और उनसे 250 रुपये मांगे। सब-इंस्पेक्टर ने अपना परिचय दिया पर उसके पास लाइसेंस तथा दूसरे काग़ज़ भी नहीं थे। पुलिसकर्मियों ने गुस्से से कहा कि बिना हैल्मेट स्कूटर चलाने वाला हर व्यक्ति अपने को पुलिसवाला बताता है और यह सब नहीं चलेगा। या तो वह रकम अदा करे, नहीं तो ...। सब-इंस्पेक्टर ने वही किया जैसा उसे आदेश हुआ, पर उसने स्थानीय थाने में शिकायत कर दी। डिवीज़न के उपायुक्त ने मामले की जांच करवाने का आश्वासन ...।

निर्धारित सीमा से प्रायः अधिक बोझ लाद कर ले जाने वाले ट्रक चालक जानते हैं कि पुलिस नाकों को पार कैसे किया जा सकता है। उन्हें हर नाके पर काग़ज़ का एक टुकड़ा दिखाना और देना होता है - 100 रुपये का एक नोट, और बस वे आगे बढ़ जाते हैं; वैसे ही जैसे कार चालक, जो टोल-चुंगियों पर निर्धारित रकम अदा करते हैं।

यदि आप नई दिल्ली में कार चला रहे हों, तो आप जैसा चाहें वैसा चल सकते हैं। उदाहरण के लिए, आप दाएं या बाएं, किसी भी ओर से, दूसरे वाहन से आगे निकल सकते हैं और यदि आप भारी वाहन ले जा रहे हैं, तब तो आपको किसी को रास्ता देने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि आप किसी छोटी यात्री कार में हैं तो बुद्धिमत्ता इसी में है कि कोई ख़तरा मोल न लें। यातायात बाईं ओर से आए या दाईं ओर से, गुज़र जाने दें। यातायात के न कोई नियम हैं, न उनका पालन किया जाता है, बस एक को छोड़कर। लाल बत्ती पर आगे न निकलें क्योंकि यदि आप निकले और आगे यातायात पुलिसकर्मी हुआ तो वह आपको रुकने का संकेत देगा। आपको रुकना ही चाहिए। वह आपके सामने हाथ बढ़ाएगा, प्रत्यक्षतः आप से आपका ड्राइविंग लाइसेंस लेने के लिए। पर यदि आप समझदार हैं तो आप 100 रुपये का नोट उसकी हथेली पर रख दीजिए और मज़े से निकल जाइए।

सच तो यह है कि देश के कुछ भागों में, यदि किसी व्यक्ति के पास पुलिस को देने के लिए पर्याप्त पैसा है और स्थानीय बड़े लोगों के साथ जान पहचान है, तो वह हत्या करके भी साफ़ बच सकता है। दूसरी ओर, निर्दोष लोगों को तंग करने या उनसे पैसे एंठने के लिये पुलिस की मिलीभगत से उन पर मामले दर्ज भी किए जा सकते हैं और उन पर कार्रवाई भी की जा सकती है।

यह कोई बढ़ा-चढ़ा कर की जा रही बात नहीं है। बिल्कुल नहीं। आज का यथार्थ यह है कि आम नागरिक इस बात का भरसक प्रयत्न करते हैं कि वे ख़ामोशी से ज़िन्दगी बिताएं और पुलिस के फेर में पड़ने से बचें। कई इलाकों में, पुलिस के संबंध में यह संदेह रहता है कि वह चोरों और डाकुओं से मिली हुई है। जनता की आम धारणा यह है कि पुलिस अब एक ऐसा बल नहीं रहा जो सुरक्षा प्रदान करता हो अपितु ऐसा बन गया है जो परेशानियां खड़ी करता है। निस्संदेह आज भी पुलिस बल में कुछ ईमानदार लोग हैं पर उनकी संख्या नगण्य है। इस दुखद स्थिति का एक मुख्य कारण यह है कि उनको दिया जाने वाला वेतन बहुत कम है। हर पल बढ़ती हुई कीमतों के इस दौर में, पुलिसकर्मी अपने वेतन के द्वारा किसी प्रकार भी जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते। वे अपने बच्चों को उचित शिक्षा नहीं दिला सकते। वे उचित चिकित्सा का ख़र्च नहीं उठा सकते। अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प ही नहीं है। पर एक बार पतन के इस रास्ते पर चल निकलने पर, वे पतन के गर्त में चलते ही चले जाते हैं। बहुत से वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों, जिनमें इंडियन पुलिस सर्विस (आइपीएस) के सदस्य भी शामिल हैं, के विरुद्ध भी शिकायतें हैं। गोडबोले के अनुसार, उन शिकायतों में, "मानवाधिकारों का व्यापक उल्लंघन, कई चरित्रहीन अधिकारियों द्वारा अपने पद और अधिकारों का खुला दुरुपयोग, पुलिस, अपराधियों और राजनीतिज्ञों के बीच निकट-सम्पर्क, उद्योगपतियों, व्यापारियों, राजनीतिज्ञों इत्यादि के साथ अवांछित नर्मी तथा ऐसी ही कई और शिकायतें सम्मिलित हैं। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों तथा अल्पसंख्यकों के प्रति सहानुभूति के अभाव के कारण समाज में पुलिस की छवि और भी बिगड़ गई है।"[3] इन सब के कारण समाज में अराजकता का वातावरण बन गया है और इसमें पुलिस बल को मित्र के रूप में नहीं अपितु एक संभावित शत्रु के रूप में देखा जाता है। एक सभ्य समाज की तो नींव ही आज बुरी तरह से हिल गई है और यदि स्थिति को सुधारने के उपाय तुरंत न किए गए तो निकट भविष्य में ही यह ढांचा बिखर जाएगा।

न्यायपालिका

भारत की सभी महान् संवैधानिक संस्थाओं में से सर्वोच्च न्यायालय को अभी भी उसकी सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता और निष्पक्षता के लिए इस देश की जनता द्वारा

सर्वाधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इसके लिए ईश्वर का धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि यदि भारत के सर्वोच्च न्यायालय को भी कलंक लग गया होता तो उसके आगे जाने के लिए कोई स्थान बचता ही नहीं। सुप्रीमकोर्ट की न्यायिक सक्रियता और 'जनहित मुकदमा' चला सकने की संवैधानिक व्यवस्था होने के कारण ही आज देश के कुछ उच्चतम महानुभाव कटघरे में खड़े हैं और आपराधिक मामलों में अभियुक्त बने हुए हैं।

राज्य स्तर पर, यद्यपि उच्च न्यायालयों की छवि पूरी तरह स्वच्छ तो नहीं है, पर अभी भी वे निष्पक्ष न्याय के सुरक्षित आश्रयस्थल माने जाते हैं।

ज़िला स्तर पर और नीचे के स्तरों पर तो देश की न्यायपालिका भयंकर अव्यवस्था का शिकार है। न्यायिक प्रक्रिया बहुत धीमी, कभी न ख़त्म होने वाली है। न्यायालयों में लम्बित मुकदमों की संख्या गिनती के बाहर है। सम्पत्ति के अधिकार से संबंधित एक दीवानी मामला, कुछ महीनों या कुछ सालों तक नहीं, युगों तक लटका रहता है। सुनवाई की तारीख़ें मुकर्रर की जाती हैं और थोथे कारणों से स्थगित कर दी जाती हैं। और जब निर्णय किया भी जाता है तो यह आवश्यक नहीं कि वह वस्तुपरक गुणवत्ता के आधार पर हो। अधीनस्थ न्यायिक प्रणाली भ्रष्टाचार की सड़ांध से भरी पड़ी है।

29 जून 1998 को राष्ट्रमंडल देशों के लिए 'न्याय तक पहुंच' पर एक कार्यशाला आयोजित की गई थी। उसमें उद्घाटन भाषण देते हुए देश के सम्मानित और समादृत विधि विशेषज्ञ सोली सोराबजी ने, जो इस समय भारत के महान्यायवादी के उच्च पद पर हैं, देश की न्यायिक पद्धति में व्याप्त अराजकता के संबंध में कुछ तीखी टिप्पणियां की थीं। उन्होंने कहा था, 'यदि न्यायप्रणाली को देश में इसी प्रकार पहुंच से दूर बने रहने दिया गया तो परिणाम यह होगा कि लोग न्याय के अधिकार से वंचित हो जाएंगे और सड़क का कानून चल निकलेगा'। उन्होंने यह भी कहा था कि न्याय को शीघ्रगामी और प्रभावी बनाने के लिए न्यायिक प्रक्रिया में तुरंत परिवर्तन लाए जाने की अत्यधिक आवश्यकता है।[4]

सोराबजी के वक्तव्य के पश्चात्, 1 जुलाई, 1998 के अंक में *'द एशियन एज'* ने अपने सम्पादकीय में भ्रष्टाचार के दानवी ताण्डव को भारतीय न्यायपालिका में व्याप्त अराजकता के लिए उत्तरदायी ठहराया। इस सम्पादकीय में, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं, सारी बात, स्पष्ट और निस्संकोच शब्दों में कह दी गई है।

अंदर की बात

महान्यायवादी सोली सोराब जी का यह कहना ग़लत नहीं है कि पहुंच से दूर बनी रहने पर न्याय प्रणाली अन्ततः न्याय से वंचित करने वाली और सड़क का कानून

स्थापित करने वाली सिद्ध होगी। परन्तु जिस पद पर वे इस समय हैं, वहां रहते हुए वे संभवतः यह स्वीकार नहीं कर सकते कि न्यायव्यवस्था का स्थान सड़क के कानून ने पहले से ही ले रखा है क्योंकि एक औसत नागरिक के लिए न्याय उपहास का विषय बन चुका है। न्यायालयों के मामले हमेशा खिंचते चले जाते हैं और, परिणामस्वरूप, ईमानदार नागरिक कठिनाइयों से जूझता रहता है। उदाहरण के लिए, जैसा कि सोराबजी ने भी कहा है, किराएदार से अपना फ़्लैट ख़ाली करवाने का प्रयास कर रहे एक आदमी के सामने प्रायः एक स्थगन आदेश - स्टे ऑर्डर - पेश कर दिया जाता है जिसका सीधा मतलब यह है कि उसे वह वस्तु हासिल करने के लिए, जो उसकी अपनी है, लम्बी लड़ाई में झोंक दिया गया है। विकल्प ... या तो इस आशा में वह जीवन-भर प्रतीक्षा करता रहे कि एक दिन वह घर उसका हो जाएगा और वह उस दिन तक जीवित रहेगा जब वह जाकर उसमें रह सके, या फिर तुरंत कार्रवाई करे। ऐसे में अपराध जगत् सहायक सिद्ध होता है और ख़ासतौर पर सम्पत्ति के विवादों को सुलझाने के लिए अपराधियों को भाड़े पर लेने की प्रथा बढ़ रही है। सभी राज्यों में सम्पत्ति संबंधी मुकदमों की संख्या न्यायालयों में लम्बित पड़े मामलों में सब से अधिक है और इनमें अत्यंत निर्धन लोगों से धनाढ्य लोगों तक सभी फंसे हैं। न्यायालयों की धीमी प्रगति से तंग आकर, एक या दूसरी पार्टी कानून को अपने हाथ में ले लेती है और हिंसा तथा मृत्यु की वारदातों से ज़िले भरे पड़े हैं। न्याय प्रणाली का पुनरवलोकन निस्संदेह आवश्यक है। पर राज्यशासन का यह एक ऐसा पहलू है जिसकी ओर किसी भी सत्तासीन सरकार का ध्यान जाता दिखाई नहीं देता। स्वयं न्यायपालिका इस सच्चाई से लगभग आंखें मूंद कर बैठी है कि न्यायालयों पर इतना बोझ पड़ा हुआ है कि वे न्याय देने की अपेक्षा, वास्तव में, न्याय नकारने का काम कर रहे हैं। जनसाधारण की तकलीफें इस सच्चाई से और बढ़ गयी हैं कि न्याय प्रणाली के रेशे-रेशे में भ्रष्टाचार धंसा हुआ है और इस के कारण इसका क्षरण हो रहा है। निचले स्तर के न्यायालय विशेष तौर पर इसके शिकार हैं। इसका परिणाम यह है कि ज़िला स्तर पर न्याय की खोज में भटकते हुए ग़रीब देहाती के लिए यह मरुमरीचिका जैसा बन गया है। वह न्यायालय में उस वस्तु को हासिल करने जाता है, जो उसी की है और वहां से अपनी सारी जमा पूंजी लुटा कर, ख़ाली जेब लौटता है। यही कारण है कि स्थानीय राजनीतिज्ञ पहले तो विरोधी धड़ों को स्थानीय न्यायालय में मुकदमा दर्ज कराने के लिए तैयार करता है, और फिर उन्हें अलग ले जाकर, न्यायालय के बाहर ही फैसला करवा देता है और इस प्रकार अपनी जेब भर लेता है। ऐसा इसलिए संभव होता है कि वह उन्हें यह समझा कर अपनी फ़ीस लेता है कि यदि वे न्यायालय में मुकदमा लड़ते रहे तो उनका बहुत-सा पैसा और समय, दोनों ही ख़र्च

होगा - और ये दोनों कीमती हैं। न्यायालयों के इर्द-गिर्द निहित स्वार्थों का एक उद्योग पनप रहा है जिसका उद्देश्य, जितना अधिक से अधिक बन पड़े, पैसा उमेठना है। जो इस से अनभिज्ञ हैं, उनके लिए दिल्ली के पटियाला न्यायालयों का दर्शन एक अनुभव सिद्ध हो सकता है। जब तक ड्यूटी पर बैठे क्लर्क की फैली हथेली पर कोई रकम न रखी जाए तब तक कोई काम नहीं हो पाता। वकील इस पैसे का इंतज़ाम अलग से रखते हैं और बाद में मुवक्किल के बिल में जोड़ देते हैं। अब यह आवश्यक हो गया है कि प्रतिष्ठित विधिवेत्ता मिल कर व्यवस्था में व्याप्त दोषों पर गहराई से विचार करें। यह भी आवश्यक है कि पुनरवलोकन के साथ-साथ एक ठोस कार्ययोजना और जीर्णोद्धार के उपाय सुनिश्चित किए जाएं ताकि भारतीय नागरिकों को सच्चे अर्थों में न्याय उपलब्ध हो सके। अन्यथा, जिस माफ़िया ने पहले से ही नियन्त्रण कर रखा है वह मालिक बन बैठेगा और आज न्यायालयों के बाहर जो कुछ हो रहा है, न्यायालयों के भीतर होने वाला सब कुछ उसी का अंग और अनुषंगी बन कर रह जाएगा।

न्यायिक कार्यकलाप में परेशान करने वाली एक और भ्रष्टाचारमूलक प्रणाली है। दीवानी मुकदमा दायर करने वाला वादी तो स्वाभाविक ही इस बात के लिए उत्सुक होता है कि मामला तेज़ी से आगे बढ़े। दूसरी ओर प्रतिवादी यह प्रयत्न करता है कि हर संभव साधन से जितना बन पड़े, कार्रवाई में विलम्ब हो। जब सुनवाई की तारीख़ निश्चित होती है, तो वादी अपने वकील, गवाहों और दस्तावेज़ों के साथ न्यायालय में उपस्थित होता है। इन सब को जुटाने के लिए उसका काफ़ी ख़र्च हो चुका होता है। प्रतिवादी को केवल इतना करना होता है कि वह एक अर्हता प्राप्त डॉक्टर से बीमारी का प्रमाणपत्र पेश करके, बीमारी के आधार पर अनुपस्थित रह जाए। यह प्रमाणपत्र थोड़े से रुपये देकर आसानी से प्राप्त हो जाता है। फिर प्रतिवादी का वकील अपने मुवक्किल की बीमारी के आधार पर मामले की सुनवाई के लिए कोई और तारीख़ निश्चित करने के लिए आवेदन पत्र दाख़िल करता है। वह इस बात की व्यवस्था, न्यायालय के क्लर्क को रिश्वत दे कर, पहले से ही कर लेता है कि क्लर्क की सिफ़ारिश मान कर न्यायालय का पीठासीन अधिकारी सुनवाई को स्थगित करने के आदेश को पारित कर दे। वादी बेचारा, भय का मारा, देखता रह जाता है। अगली सुनवाई पर इस नाटक को दुहराया जाता है। इस तरह यह मुकदमा चलता रहता है। साधारणतः दूसरे मुकदमे भी, प्रत्येक न्यायालय में प्रतिदिन स्थगित होते रहते हैं और पीठासीन अधिकारी तथा क्लर्क की जेबें गर्म होती रहती हैं। कुछ अवसरों पर, जब उपयुक्त 'प्रोत्साहन-धन' पेशगी मिल जाता है तो पीठाधिकारी स्वयं बीमार पड़ जाता है और उस दिन के लिए निश्चित सभी मुकदमे स्थगित हो जाते हैं। न्यायालय भी खुश, प्रतिवादी भी खुश। दुखी है तो

केवल वादी, जो राहत और न्याय की तलाश में है। ज़िला स्तर की न्यायपालिका, जो पहली सीढ़ी पर जनता की समस्याओं के साथ निपटती है, भ्रष्टाचार से भरी पड़ी है। सारी की सारी स्थिति एक मज़ाक है।

दांडिक न्याय प्रशासन की निवारक प्रक्रिया न केवल क्षीण होती जा रही है, अपितु सर्वथा समाप्त-सी हो गई है। यह प्रवृत्ति एक दिन किसी विनाशक स्थिति को जन्म दे सकती है। ऐसा सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष और संविधान समीक्षा आयोग के वर्तमान अध्यक्ष एम.एन. वेंकटचलैय्या ने नई दिल्ली में 17 फरवरी, 1999 को नई दिल्ली में, दांडिक न्याय पर गठित एक पैनल को संबोधित करते हुए कहा था। न्यायमूर्ति वेंकटचलैय्या ने मानवीय गरिमा और चरित्र के अधःपतन और व्यक्ति के भ्रष्ट हो जाने पर गहरी चिंता व्यक्त की थी। इसी अवसर पर बोलते हुए, दिल्ली के पुलिस आयुक्त वी.एन. सिंह ने दांडिक न्याय व्यवस्था की पद्धति की दुरवस्था के लिए, 'पुलिस, राजनीतिज्ञों और अपराधियों के अन्तर्बंधन, पुरानी पड़ चुकी कानून प्रणाली, बदलते हुए अपराध परिदृश्य में गतिशील प्रबंधन के अभाव तथा जनता के सहयोग की कमी को दोषी ठहराया था।'[5]

तो यह है भारतीय न्याय प्रणाली की दुर्दशा। दांव पर लगे हैं, कानून का शासन और व्यक्ति की स्वतंत्रता।

शिक्षा

ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की दशा दयनीय है। भ्रष्टाचार के कारण, अध्यापकों की नियुक्ति बड़े लोगों की सिफ़ारिश के आधार पर होती है। वे वेतन तो लेते हैं पर पढ़ाते नहीं के बराबर हैं। शहरी क्षेत्रों में विद्यालयों और महाविद्यालयों का प्रबंध तो बेहतर है पर शिक्षण का स्तर जिस कोटि का होना चाहिए, वैसा नहीं है। अध्यापकों ने अपनी आय को बढ़ाने का एक नया तरीका निकाला है। जिन संस्थाओं में वे नियुक्त हैं, उनकी कक्षाओं में तो वे नाममात्र पढ़ाई करवाते हैं पर अपने घरों में ट्यूशन कक्षाएं चलाते हैं और मोटी फ़ीसें वसूल करते हैं। जो छात्र परीक्षाओं में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना चाहते हैं, और अतिरिक्त कीमत देने की स्थिति में हैं, उनके लिए इन कक्षाओं में शामिल होना आवश्यक है। जिनके पास समुचित साधन नहीं हैं उन्हें अपना रास्ता खुद निकालना पड़ता है।

स्वाधीनता के समय जो विश्वविद्यालय स्थापित थे, उन्हें उत्कृष्टता के केन्द्र माना जाता था। तब से कई और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई है, जिनकी आवश्यकता थी भी। कुछ सम्माननीय अपवादों को छोड़ कर, शेष सभी भ्रष्टाचार और राजनीतिक षडयंत्रों के गढ़ बन चुके हैं। अध्यापकों की नियुक्ति प्रायः उनके

राजनीतिक संबंधों और जाति के आधार पर होती है, योग्यता के आधार पर नहीं। कुलपतियों को दलगत राजनीति के आधार पर चुना जाता है।

अधिकतर महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा ली जाने वाली परीक्षाओं तथा प्रदान की जाने वाली उपाधियों की विश्वसनीयता समाप्त हो चुकी है। पॉयनियर के नई दिल्ली संस्करण के 25 जनवरी 1999 के अंक में सीबीआइ के भूतपूर्व निर्देशक जोगिन्दर सिंह ने अपने एक लेख में इस दुर्दशा का भयावह चित्र निम्नलिखित शब्दों में खींचा है :

(भ्रष्टाचार की) समस्या शिक्षा के द्वार के भीतर भी प्रवेश कर गई है। हाल ही की एक रिपोर्ट के अनुसार, ऐसा एक बहुत बड़ा बाज़ार है जो सब प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ख़ाली अंकसूचियों की आपूर्ति करता है। ऐसा बताया जाता है कि स्नातक से नीचे की उपाधि के लिए ख़ाली अंकसूची तथा उसके अनुरूप प्रमाणपत्र 17000 रुपये में उपलब्ध हैं, तथा स्नातकोत्तर उपाधि 20,000 रुपये या उससे अधिक में, और पी.एचडी. 40000 से 60000 रुपये में मिलती है। किस्मत साथ दे तो बिना परिश्रम किए, इन प्रमाणपत्रों की सहायता से, क्लर्क या प्राध्यापक की या ऐसी अन्य नौकरियां जिनमें स्वतंत्र लिखित परीक्षाएं नहीं ली जातीं, प्राप्त की जा सकती हैं। वास्तविकता यह है कि केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसइ) की एक परीक्षा में परीक्षकों ने, सभी परीक्षार्थियों से खुले तौर पर कहा कि उनमें से प्रत्येक परीक्षार्थी 1000 रुपये देने पर स्वतंत्रतापूर्वक नकल कर सकता है। हमारी व्यवस्था में हर बुराई को कालीन तले छिपा देने की प्रवृत्ति है। यदि इस प्रणाली के अंतर्गत मेधावी विद्वानों और छात्रों के स्थान पर नकलचियों और नकली उपाधिधारकों को ही प्रोत्साहन प्राप्त होना है, तो ऐसी शिक्षा प्रणाली के लिए अधिक धन की व्यवस्था करने से क्या लाभ होगा? चारों ओर अधोगति और अनुशासनहीनता का वातावरण है। उस पर एक आम धारणा यह बन गई है कि आदमी सचमुच कत्ल करके भी बच कर निकल सकता है।

कुल मिला कर, भारत में शिक्षा दुरवस्था में है। भविष्य के लिए अच्छे नागरिकों के निर्माण के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे। विद्यालयीन शिक्षा के कोई उत्कृष्टता-केन्द्र नहीं हैं। सौभाग्य से एक अपवाद है - तकनीकी शिक्षा। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आइआइटी.) ने शिक्षा के अत्यंत उच्च मानदंड स्थापित किए हैं और वे कायम हैं। इनकी तुलना किसी भी देश की ऐसी सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं से की जा सकती है। तकनीकी शिक्षा की दूसरी संस्थाओं, विशेषकर तेज़ी से विकसित हो रही कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी से संबंधित संस्थाओं ने भी अच्छा यश अर्जित किया है। भारतीय प्रबंधन संस्थाओं की भी बहुत प्रतिष्ठा है। देश की शिक्षा

प्रणाली के मरुस्थल में ये प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थान हरियाली के उत्साहवर्द्धक द्वीप हैं। आम शिक्षा का सारा क्षेत्र एक ही सर्वव्याप्त बीमारी से ग्रस्त है - भ्रष्टाचार की बीमारी।

चिकित्सा सेवाएं

ग़रीबों को ग्रामीण क्षेत्रों में दवाखानों और शहरी क्षेत्रों में, सरकारी चिकित्सा संस्थाओं के माध्यम से चिकित्सा-सहायता प्रदान की जाती है। दवाखानों में पूरे साधन नहीं हैं और डॉक्टर प्रायः ग़ायब रहते हैं। वे वेतन तो नियमित रूप से सरकारी ख़जाने से लेते हैं पर चलाते निजी व्यवसाय हैं।

जहां तक सरकारी अस्पतालों में सफ़ाई और स्वास्थ्य संवेदनशीलता का प्रश्न है, उनकी दशा, नई दिल्ली सहित लगभग सभी स्थानों पर, घृणित रूप से निकृष्ट है। दवाइयों, चिकित्सा आपूर्तियों और रखरखाव के लिए नियत किये गए धन का एक बहुत बड़ा भाग इन अस्पतालों के प्रबंधकों की जेबों में पहुंच जाता है। कुछ ही समय पूर्व, दिल्ली के सबसे महत्वपूर्ण अस्पताल के अधीक्षक को भ्रष्टाचार के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया था। दूसरे स्थानों की दशा क्या हो सकती है, इसका अनुमान भली-भांति लगाया जा सकता है। संक्षेप में, मुख्यतः भ्रष्टाचार के दानव के कारण ही, ग़रीबों को उचित और सामयिक चिकित्सा सहायता मिलने का कोई आश्वासन नहीं है।

निजी दवाखाने, रोगविज्ञान प्रयोगशालाएं और अस्पताल इससे काफ़ी अच्छी हालत में हैं। उनका रख-रखाव आमतौर पर ठीक होता है, सफ़ाई और स्वास्थ्य-सुरक्षा के स्तर ठीक रखे जाते हैं और उनका संचालन अच्छे ढंग से किया जाता है। वहां के डॉक्टरों की टीमें उचित योग्यता प्राप्त और शिष्ट होती हैं।

सड़कें

देश के अधिकतर क्षेत्रों में, सड़कों की अवस्था दयनीय है। क्यों? भ्रष्टाचार के कारण। नई सड़कों के लिए निर्धारित धनराशि का एक भाग हड़प लिया जाता है। यह काम निर्माण के स्तर को घटा कर किया जाता है। नई सड़कों के निर्माण का काम पूरा होते ही उनमें गड्ढे पड़ जाते हैं और उनकी मरम्मत ज़रूरी हो जाती है। मरम्मत के लिए नियत धन का बड़ा भाग निजी जेबों में पहुंच जाता है। वे लोग, जिन्हें पर्यवेक्षण का और यह सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि काम अनुबंध में निर्दिष्ट स्तरों के अनुरूप हो, स्वयं भ्रष्ट हैं। इंजीनियर, अधिकारी, राजनीतिज्ञ - सबने अपनी-अपनी जेब गरम करने के लिए हाथ मिला रखे हैं।

परिणाम अत्यंत भयावह हैं। सड़कों की बदहाली के कारण, यातायात धीमा पड़ जाता है, लाने-ले जाने का ख़र्च बढ़ जाता है, वाहनों को नुकसान होता है और

उनकी मरम्मत पर अतिरिक्त ख़र्च करना पड़ता है। अपर्याप्त और अकुशल ढांचे का विपरीत प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। पर बचाव का कोई रास्ता ही नहीं है।

मिलावट

भ्रष्टाचार के चिन्ताजनक प्रसार के संबंध में अब तक जो कुछ कहा गया है, शायद वह पर्याप्त न हो, इसीलिए अगस्त 1998 में एक अत्यंत पैशाचिक अपराध का समाचार आया : रसोई बनाने के लिए व्यापक रूप से प्रयोग किए जाने वाले सरसों के तेल में मिलावट। सरसों का तेल बनाने वाले व्यापारियों को पता चला कि सरसों के बीज जितनी मात्रा में उपलब्ध हैं, उनसे उतना तेल नहीं निकलेगा जितने की मांग बाज़ार में है। आपूर्ति की कमी के कारण बाज़ार में सरसों के तेल के भाव बढ़ गए थे। पैसा बटोरने के लालच में उन्होंने सरसों के बीजों में विषैले बीज मिला कर उनसे तेल निकालने और इस प्रकार आपूर्ति बढ़ाने का निर्णय किया। अंतिम-उत्पाद दिखने में सरसों के तेल जैसा ही था। पैसे के लालच ने उन्हें इतना अंधा बना दिया था कि उन्होंने बाज़ार में इस सम्मिश्रण को, सामान्य सरसों के तेल के रूप में बेचने के लिए दे दिया। जिन्होंने इस मिश्रित तेल का सेवन किया, उनमें से दर्जनों मारे गए और सैंकड़ों भयंकर रूप से बीमार पड़ गए। यह पैशाचिक अपराध, वास्तव में किसी सोचे समझे हत्याकांड से कम नहीं था और ऐसा करने वालों को कठोर दंड मिलना चाहिए था।

इस उदाहरण से पता चलता है कि किस सीमा तक कुछ लोगों के मन भ्रष्ट हो चुके हैं। और ख़तरनाक मिलावट का यह कोई अकेला उदाहरण नहीं है। कुछ दुकानों में नकली दवाइयां झूठे लेबलों के साथ मिलती हैं। यह सब हमें कहां ले जाएगा? उत्तर स्पष्ट है। जब राष्ट्र एक बार नैतिक आचरण से गिर जाता है, तो मनुष्य में अन्तर्निहित आसुरी प्रवृत्ति उस पर आधिपत्य स्थापित कर लेती है। इसके बाद कुछ लोग पतन के कितने गहरे गर्त में धंस सकते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है।

व्यापार और उद्योग

भारत में भ्रष्टाचार का एक बहुत बड़ा भाग व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में जन्म लेता है। कुछ थोड़े-बहुत ही थोड़े-से सम्माननीय अपवादों को छोड़ कर, इस क्षेत्र में विचरने वाले लोगों के मन में न कोई संकोच है, न नियमों - व्यापारिक नैतिकता के नियमों - की कोई परवाह। केवल एक ही सिद्धान्त है - साधनों की चिन्ता छोड़ कर, जितना अधिक, जितना शीघ्र, धन कमा सकते हो, कमाओ। बाकी सब तो इस का परिणाम ही है।

व्यापार का कुछ अंश हिसाब-किताब की पुस्तकों से बाहर रखा जाता है। यह काला धन है, जिसकी परिभाषा यह है कि इस पर लगने वाला कर सरकारी कोष में जमा नहीं कराया जाता। यह काला धन पूरे देश में पैदा हो रहा है और प्रतिवर्ष यह बेहिसाब मात्रा में इकट्ठा होता है। इस धन का उपयोग, इसका स्वामी स्वेच्छा से अन्य कामों के साथ-साथ ऐसे निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए कर सकता है, जो 'रिकार्ड के बाहर' हों :

1. देश की समानांतर काली अर्थव्यवस्था का, जो कि सफ़ेद अर्थव्यवस्था के साथ अत्यंत जटिल ढंग से उलझी हुई है, वित्तपोषण करना।
2. 'बेनामी' सौदों में सम्पत्ति खरीदना।
3. विभिन्न प्रकार के सरकारी काम करवाने के लिए, सत्तास्थित राजनीतिज्ञों - मंत्रियों, संसत्सदस्यों आदि - को, ब्रीफ़केसों या सूटकेसों में छिपा कर मोटी-मोटी रकमें भेंट करना।
4. सत्ता तथा संरक्षण के पदों पर आसीन अधिकारियों को पैसा देना।
5. करों की देयता में अधिक से अधिक कमी करवाने के उद्देश्य से, विभिन्न करों - आय कर, निगम कर, सम्पत्ति कर, सीमा शुल्कों, उत्पाद शुल्कों - का निर्धारण करने वाले संबंधित अधिकारियों को पैसा देना।
6. चरम कोटि की विलासिता की जीवन-शैली अपनाना।
7. राजनीतिज्ञों और अधिकारियों के मनोरंजन के लिए खुले हाथों ख़र्च करना।
8. 'गुप्तदान' की मोटी-मोटी रकमें विभिन्न देवी-देवताओं के पूजास्थलों पर भेंट करना ताकि उन्हें इस लोक में उनका आशीर्वाद और क्षमा मिल सके और परलोक में सुरक्षित स्थान।

आइए, क्षण भर के लिए कल्पना करें एक वैकल्पिक परिदृश्य की। यदि दैवीकृपा से ऐसा चमत्कार हो जाए कि काले धन का यह विशाल भण्डार सफ़ेद बन कर बही-खातों में आ जाए तो उस से दिये जाने वाले कर की राशि इतनी होगी कि राजकोषीय घाटा समाप्त हो जाएगा, ग़रीबी उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों, शिक्षा, स्वच्छ जल, चिकित्सा सहायता आदि के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था हो सकेगी तथा सरकारी कर्मचारियों को इतना वेतन मिल सकेगा जिससे 'ज़रूरत पर आधारित' भ्रष्टाचार की आवश्यकता नहीं रहेगी।

अब उस नुकसान के आकार का ध्यान कीजिए और हिसाब लगाइए जो कि देश की जनता के साथ किया है उन लोगों ने, जिन्होंने निर्लज्जतापूर्वक व्यापारियों को सफ़ेद धन को चोरी छिपे, काले धन में बदल कर, तथा कर न देकर उन्हें सार्वजनिक ख़ज़ाने को लूटने के लिए प्रोत्साहित किया है; और यह सिर्फ़ इसलिए

कि इस लूट का एक भाग वे हासिल कर सकें। कितनी निर्दयता से इन नेताओं ने उन निर्धनों, निरीहों, विश्वास करने वाले लोगों के साथ विश्वासघात किया है, जिनमें से करोड़ों आज भी, स्वाधीनता के 53 वर्ष बाद भी, ग़रीबी के अभिशाप को ओढ़े हुए जी रहे हैं!

तो यह है आज के भारत की भयानक और विचलित कर देने वाली तस्वीर - राष्ट्र जीवन के हर पहलू, हर कोने और किनारे में उफ़नते भ्रष्टाचार की तस्वीर। 3 फरवरी 2000 को भ्रष्टाचार के एक मामले में अपना आदेश सुनाते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्र को, वर्तमान स्थिति में निहित गंभीर ख़तरों के बारे में एक सख़्त चेतावनी दी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने दो टूक शब्दों में कहा था कि यदि भ्रष्टाचार पर शीघ्रातिशीघ्र प्रभावी रोक नहीं लगाई गई तो 'सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक' व्यवस्था के छिन्न-भिन्न हो जाने की संभावना है। न्यायालय ने यह भी कहा था कि 'सभ्य समाज में भ्रष्टाचार कैंसर जैसा रोग है, जिसे समय रहते न पहचानने पर वह निश्चित रूप से सांघातिक हो जाता है और उसके परिणाम विनाशकारी होते हैं।' न्यायालय का यह भी कहना था कि भ्रष्टाचार प्रजातंत्र और सामाजिक व्यवस्था का विरोधी है क्योंकि यह केवल साधारण अर्थों में ही जनता के विरुद्ध नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य और लक्ष्य ही जनता को संत्रस्त करना है।[6]

क्या अब भी पुनरुत्थान संभव है? हमें उसको संभव बनाना ही होगा। ऐसा संभव होना ही होगा। परन्तु इसके लिए आवश्यकता है दो वर्गों में व्याप्त भ्रष्टाचार की वर्तमान स्थिति के मूलभूत कारणों को वस्तुनिष्ठा के साथ पहचानने की तथा सत्य के पथ का दृढ़ता, बल्कि कठोरतापूर्वक अनुसरण करते हुए, निर्भीकतापूर्वक, बिना आडम्बर या खेद के, उन्हें बताने की। ये दो वर्ग वे हैं जिनके हाथों में राजकाज चलाने की अंतिम सत्ता है - एक तो राजनीतिक वर्ग, अर्थात् जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि, और दूसरे उच्चपदस्थ नौकरशाह, अर्थात् आइएएस के सदस्य। ऐसा कर के ही दृढ़ संकल्प के साथ इलाज के उचित और व्यावहारिक उपायों पर विचार करना और उन्हें क्रियान्वित करना संभव हो सकेगा।

अंत्यसंकेत

1. एडिटोरियल कमेंट्स, *द इकोनॉमिक टाइम्स*, 11 मार्च 1998।
2. जॉन विल्सन, "कॅरप्ट आफ़िसर्ज़ ऑक्शन पब्लिक फंड्स", *द पॉयनियर*, 10 फरवरी 1998।
3. माधव गोडबोले, 'कॅरपश्न, पॉलिटिकल इंटरफ़ियरेन्स एंड द सिविल सर्विस', एस. गुहन और सेम्युअल पाल (सं.), *कॅरपश्न इन इंडिया - एजेंडा फ़ार एक्शन* में, विज़न बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 62।
4. 'एडिटोरियल कमेंट्स', *द एशियन एज*, 1 जुलाई 1998।
5. 'क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम ऑलमोस्ट एब्सेंट : एनएचआरसी चीफ़', *द हिन्दुस्तान टाइम्स*, 18 फरवरी 1999।
6. राकेश भटनागर, 'एस सी कॉल टु रूट आउट कैन्सर ऑफ़ कॅरपश्न', *द टाइम्स आफ़ इंडिया*, 4 फरवरी 2000।

अध्याय 8

तो फिर क्या करे भारत?

भारत में भ्रष्टाचार के तथ्यमूलक इतिहास के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचना अनुचित नहीं होगा कि यदि नए भारतीय राज्य के संस्थापक कर्णधारों ने देश में सत्यनिष्ठा की स्थापना और सम्पुष्टि, ख़ासतौर पर भ्रष्टाचार की रोकथाम की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया होता और इस उद्देश्य से मंत्रियों, संसत्सदस्यों, विधायकों तथा सभी सार्वजनिक पदों पर नियुक्त व्यक्तियों के लिए नैतिक आचरण के कठोर नियमों की न केवल स्थापना अपितु उन पर दृढ़ता से चलने की पक्की व्यवस्था की होती, तो आज देश की यह दुर्दशा न होती।

उनके ऐसा न करने के कारण, उच्च राजनीतिक पदों पर बैठे अधिकाधिक लोग आसानी से सत्ता के प्रलोभनों का शिकार होते चले गए। इसके साथ ही, भ्रष्टाचार का विष, जिसका उद्गम उच्च राजनीतिक स्तर पर हुआ था, रिसते-रिसते, एक के बाद दूसरे मुकाम पर, राजनीति के निचले सोपानों और वहां से 'जी हज़ूर' किस्म के नौकरशाहों तक होता हुआ, एक सैलाब बन कर पूरे देश में फैल गया।

परन्तु इस दुःखभरी कहानी में ही भविष्य के लिए आशा की एक किरण भी झलकती है। यदि भारत की गिनती आज संसार के सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में होती है तो इसका कारण यह नहीं है कि हमारे देशवासी मूल रूप से ही भ्रष्ट हैं क्योंकि वास्तविकता यह है कि वे ऐसे नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि शताब्दियों की जर्जरित कर देने वाली निर्धनता को झेलते रह कर भी वे सच्चे हृदय से धार्मिक रहे हैं और आज भी हैं। अत्यंत प्राचीन काल से ही वे सदाचार और नैतिकता की अलिखित संहिता का पालन करते आए हैं। वे सब के सब, बिना किसी धार्मिक भेदभाव के, दूरदर्शन पर धारावाहिक *महाभारत* देखना पसंद करते हैं, क्योंकि यह उन सब के हृदयों में नैतिकता के समान तारों को झंकृत करता है और उन्हें सत्य और सदाचार के पथ पर चलने की प्रेरणा देता है। इतना ही नहीं, राजनीति एवं नौकरशाही में, सत्ता एवं संरक्षण के ऊंचे पदों पर आज भी ऐसे लोगों के उत्साहप्रद उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने सदैव सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा के पथ का अनुसरण किया है। इसका अर्थ यह है कि आज भी भारत को एक सुदृढ़ आधार प्राप्त है और भ्रष्टाचार के पथ पर भारत अभी उस मुकाम तक नहीं पहुंचा, जहां से लौटना संभव न हो।

इसके बावजूद, वर्तमान दृश्य का यथार्थ तो यही है कि स्थिति ख़तरनाक है। अतः जो संकट आज के तथा आने वाले भारत के लोगों के सामने हैं उन्हें पूरी तरह समझना अत्यावश्यक है। भारत में भ्रष्टाचार अब केवल रिश्वत लेने या देने तक ही सीमित नहीं रहा। सत्य यह है कि इसने अत्यंत व्यापक, भयावह तथा घातक रूप ले लिया है। इसने सत्ता और अधिकार के पदों पर बैठे अधिकतर लोगों एवं व्यापार, वाणिज्य, उद्योग तथा अन्य व्यवसायों में लगे कई लोगों के मन और मस्तिष्क को दूषित और भ्रष्ट कर दिया है। कहीं कोई रुकावट, कोई नैतिक अंकुश नहीं रहा। स्वार्थ सिद्धि के लिए कुछ भी करना पड़े, उसमें कुछ बुरा, कुछ घृणित नहीं। ग़रीबों के लिए निर्धारित धन को नौकरशाह और राजनीतिज्ञ लूट रहे हैं। और लाखों करोड़ों ग़रीब अब भी दयनीय दशा में जी रहे हैं। पीने के लिए स्वच्छ जल, शौचालयों की सुविधा, चिकित्सा सहायता, शिक्षा - ये सब उनकी पहुंच से बाहर हैं। जिन परिस्थितियों में वे जीते और मरते हैं, उन्हें सुन कर कलेजा मुंह को आता है। देश के आर्थिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध किया जा रहा है और विदेशी निवेश को हतोत्साहित किया जा रहा है - सर्वभक्षी भ्रष्टाचार के कारण ही। जब एक बहुत बड़े राज्य का मुख्यमंत्री ही, अधिकारियों और व्यापारियों की मिलीभगत के साथ सरकारी कोष को करोड़ों रुपयों का चूना लगा दे, तो विधिसम्मत सरकारी प्रशासन का अन्त निकट आया ही समझना चाहिए।

इस धारा को रोकने और मोड़ने का समय अभी है, यहीं है। ज़रूरत है, राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए अपने नैतिक मूल्यों की सांझी विरासत पर आधारित, एक नए, सुविचारित कार्यक्रम की और सभी लोगों को सरकारी कामकाज तथा राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन के सभी पक्षों में पारदर्शी सत्यनिष्ठा के आदर्श के साथ जोड़ने की। नई सहस्राब्दी में अपनी आधिकारिक नियति की प्राप्ति के लिए, देश को ऐसे उपाय खोजने होंगे जिनसे हम एक ईमानदार और नैतिकतामूलक राज्यव्यवस्था, एक कुशल, सहानुभूतिसम्पन्न और भ्रष्टाचारविहीन प्रशासन तथा एक ज़िम्मेदार, मूल्यनिष्ठ समाज की स्थापना के अपने लक्ष्य तक पहुंच सकें।

ऐसे दूसरे प्रजातांत्रिक देश हैं जो कभी भ्रष्टाचार से लगभग पूरी तरह ग्रस्त थे। उन्होंने सोच समझ कर एक ऐसा कार्यक्रम तैयार किया जिसके अंतर्गत चुनाव प्रणाली में तथा सरकारी कामकाज, विशेषकर सार्वजनिक सेवाओं में मूलभूत सुधार किए जाने की व्यवस्था थी। उन्होंने उस कार्यक्रम को अपनाया, क्रियान्वित किया - साहस के साथ, दृढ़संकल्प के साथ। और वे भ्रष्टाचार की दलदल से उबरने में सफल हुए। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड में, जिसका 'सार्वजनिक जीवन अठारहवीं शताब्दी में भ्रष्टाचार के लिए बुरी तरह बदनाम था', 50 वर्ष के थोड़े से समय में ही ऐसा असाधारण परिवर्तन आया कि वह अपनी सार्वजनिक ईमानदारी के लिये

विख्यात हो गया।[1] इस उपलब्धि का मुख्य श्रेय वहां की लिबरल पार्टी के नेता डब्ल्यू.इ. ग्लैडस्टोन की भविष्यदृष्टि को जाता है, जो पहले तो 1850 के दशक में वहां के वित्तमंत्री[2] रहे थे और फिर 1868 से 1894 के बीच चार बार प्रधानमंत्री बने। उन्होंने सुधार के उपायों की एक लम्बी शृंखला का श्रीगणेश किया। इन सुधारों का उद्देश्य सेना में भर्ती होने के लिए पैसे देने जैसी प्रथाओं को समाप्त करना, राज्य के अधिकारियों के बीच भ्रष्टाचार को परिभाषित करके उसे निषिद्ध घोषित करना, पार्टी-पदों को छोड़ कर, शेष सरकारी सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए प्रतिस्पर्द्धात्मक परीक्षाओं का आरंभ करना, सार्वजनिक पदों पर काम के बदले फ़ीस के स्थान पर वेतन देने की व्यवस्था करना और वित्तीय मामलों की संसद द्वारा जांच करवाने की प्रणाली को स्थापित करना था।[3]

और सबसे महत्वपूर्ण यह, कि ग्लैडस्टोन ने 1883 में संसद द्वारा 'भ्रष्ट तथा ग़ैरकानूनी व्यवहार अधिनियम' पारित करवाया।

इस अधिनियम ने चुनावी भ्रष्टाचार की ऐसी सुस्पष्ट व्याख्या की जैसी कि उससे पहले कभी नहीं हुई थी। इसने सब प्रकार के सेवा-सत्कार को निषिद्ध घोषित कर दिया और उपहारों तथा 'भेंट' इत्यादि के अधिकतर रूपों को भी अवैध बना दिया। इस अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक संसदीय क्षेत्र पर चुनाव के लिए ख़र्च की जा सकने वाली राशि की भी कड़ी सीमाएं तय कर दी गईं और चुनावी ख़र्च की रिटर्नों को स्वतंत्र सार्वजनिक अधिकारियों के यहां और, बाद में, न्यायालयों में दाख़िल करने की कठोर व्यवस्था की गई। पहली बार इस व्यवस्था को राजनीतिज्ञों के हाथों से लेकर न्यायालयों के हाथों में सौंपा गया। ये दोनों व्यवस्थाएं तब से अब तक बराबर लागू हैं। बल्कि खर्च की यथार्थ सीमाएं तो पहले से भी अधिक कड़ी हो गई हैं : 1994 में प्रति प्रत्याशी, प्रति क्षेत्र खर्च की उपरिसीमा केवल लगभग 5000 पाउंड थी (इंग्लैंड में ऐसे 651 क्षेत्र हैं)।

जिन उद्देश्यों से पैसा ख़र्च किया जा सकता है यदि उन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित कर दिया जाए तो चुनावी भ्रष्टाचार को मिलने वाले प्रोत्साहन में काफ़ी कमी आ सकती है। इस दृष्टि से 1883 का कानून निस्संदेह एक उपलब्धि है। जब प्रजातांत्रिक चुनाव, ब्रिटेन में रिवाज बन गये, तब राजनीतिक और सार्वजनिक मानस में दो सिद्धान्त सुदृढ़ता से स्थापित हो गए। एक, चुनावों में निजी और संबंधित राजनीतिक दल का खर्च अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर होना चाहिए और दो, न्यायसंगत स्पर्द्धा के लिए राज्य का कर्तव्य है कि वह चुनावी ख़र्च को सख़्ती के साथ सीमित रक्खे।[4]

इन उपायों के द्वारा, प्रधानमंत्री ग्लैडस्टोन, निस्संदेह संसद और सरकार में अपने सहयोगियों की सहायता से, अपने देश को भ्रष्टाचार की खाई से निकाल

कर सत्यनिष्ठा के उस ऊंचे धरातल पर ले जाने में सफल हुए जहां वह आज भी टिका हुआ है। भारत के प्रधानमंत्री भी ऐसे ही परिणाम हासिल कर सकते हैं। वे भारत को नई दिशा दे सकते हैं।

यह काम भारत की क्षमता से बाहर नहीं है। भारत के पास ऐसे साधन हैं जिनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। जैसा कि पिछले एक अध्याय में हम कह आए हैं, इस के पास सर्वोत्कृष्ट विशेषज्ञ कार्मिकों - वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकी-विशेषज्ञों, कम्प्यूटर-विशेषज्ञों, वाणिज्यिक एवं वित्तीय प्रबंधकों, लेखाकारों, वकीलों, डॉक्टरों, शल्य-चिकित्सकों, शिक्षाशास्त्रियों आदि - का विश्व का सबसे बड़ा भंडार है। भारत आज संसार के औद्योगिक देशों के बीच सिर उठा कर खड़ा है और यहां के व्यापार एवं उद्योग जगत् के नेताओं को संसार के उन्नत अग्रणी औद्योगिक देशों के नेताओं के समकक्ष माना जाता है। देश की उच्चपदस्थ नौकरशाही की गुणवत्ता का स्तर अब भी सर्वश्रेष्ठ है यद्यपि इसके दृष्टिकोण और काम के तौर-तरीकों में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। यदि सर्वोच्च नेतृत्व नैतिकता और ईमानदारी से सम्पन्न हो, ढांचागत सुविधाओं में सुधार हो जाए और यथार्थवादी एवं जनहितकारी नीतियां, दम्भ त्याग कर, बनाई जाएं तो भारत के उपलब्ध मानव संसाधन आज भी सम्पूर्ण कुशलता के साथ राष्ट्रीय पुनरुत्थान और विकास के किसी भी कार्यक्रम को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं।

भारत की एक अन्य अमूल्य सम्पत्ति यहां की स्वतंत्र और जागरूक प्रेस है जिसके साथ अनेक ऐसे संपादक तथा राजनीतिक समीक्षक जुड़े हैं जिन्हें संसार के ऐसे सर्वश्रेष्ठ लोगों के समकक्ष माना जा सकता है। वे प्रजातंत्र में जनता के हितों के सर्वश्रेष्ठ संरक्षक हैं और राष्ट्रीय पुनरुत्थान के किसी भी सुविचारित कार्यक्रम को वे निस्संदेह प्रोत्साहन और समर्थन प्रदान करेंगे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारी सीमाओं की रक्षा करने वाली हमारी सशस्त्र सेनाएं उत्कृष्ट गुण सम्पन्न हैं और राजनीति से ऊपर हैं।

हमारे लिए जो सबसे आवश्यक बात है वह है सर्वोच्च राजनीतिक पदों पर ईमानदार नेतृत्व की खोज। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, भ्रष्टाचार का विष सर्वोच्च राजनीतिक स्तर से ही रिसना आरंभ हुआ था। अतः यह आवश्यक है कि सफ़ाई का काम वहीं से आरंभ किया जाए। आज भारत को सबसे अधिक आवश्यकता एक परिष्कृत और सच्चे राजनीतिक वर्ग की है। उतना ही महत्वपूर्ण भारतीय नौकरशाही के उच्च वर्गों में नए प्राणों का संचार करना है।

सर्वोच्च पदों पर ईमानदार राजनीतिक और प्रशासकीय नेतृत्व मिलने पर, एक ईमानदार राज्यव्यवस्था, एक स्वच्छ प्रशासन और एक नैतिकतामूलक समाज की स्थापना की दिशा में विश्वासपूर्वक आगे बढ़ना संभव है।

अगले अध्याय में हम उन समस्याओं पर ध्यान देंगे जो राजनीतिक वर्ग से, अर्थात् संसत्सदस्यों, राज्य विधानसभाओं के सदस्यों और केन्द्र एवं प्रदेशों के मंत्रियों से संबंधित हैं। दसवें अध्याय में हम नौकरशाही के सर्वोच्च संवर्ग - आइएएस से जुड़े प्रश्नों पर विचार करेंगे। इस सेवा से संबंधित सभी विषयों - आचरण, जवाबदेही, पारदर्शिता, सत्यनिष्ठा तथा वेतन - पर व्यक्त किए गए सभी विचार और सुझाव, आवश्यक परिवर्तनों के साथ, अन्य सभी सेवाओं, जिनका भारतीय प्रशासन के साथ संबंध है, जैसे, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय राजस्व सेवा, रेलवे सेवाएं, भारतीय वन सेवा, केन्द्रीय सचिवालय सेवा, राज्यों के न्यायिक संवर्ग इत्यादि पर भी लागू समझे जाने चाहिए। एक ऐसी व्यवस्था का सृजन करने की आवश्यकता है जिससे सारा प्रशासन, सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व द्वारा, इस योग्य बन सके कि वह अपना कामकाज पारदर्शिता, सत्यनिष्ठा, कुशलता और राजनीतिक निष्पक्षता के साथ करने में न केवल समर्थ हो सके, अपितु ऐसा करना उसके लिए अनिवार्य हो जाए।

आइए, भविष्य का रास्ता खोजने के लिए इन एक दूसरे से जुड़ी समस्याओं पर विचार करें।

अंत्यसंकेत

1. जॉर्ज मूडी-स्टुअर्ट, *ग्रैंड कॅरपश्न*, वर्ल्डव्यू पब्लिकेशन्स, ऑक्सफ़ोर्ड, यू.के., 1997, पृष्ठ 57।
2. डोनाटेला डैला पोर्टा एंड वेस मेनी (सं.), *डेमोक्रेसी एंड कॅरपश्न इन यूरोप*, पिन्टर, लंदन और वाशिंगटन, 1996, पृष्ठ 105।
3. ड्रयूज़ी गेविन और टोनी बुचर, *द सिविल सर्विस टुडे*, ब्लैकवैल, ऑक्सफोर्ड, यू.के., 1988, पृष्ठ 43।
4. डोनाटेला डैला पोर्टा एंड वेस मेनी (सं.), *उप. उद्धृत*, पृष्ठ 108।

अध्याय 9

राजनीतिक वर्ग में भ्रष्टाचार और सुधार का संभव उपाय

पिछले कुछ अध्यायों में हमने इस बात पर विचार किया है कि राजनीतिक क्षेत्र में आज व्याप्त भ्रष्टाचार मुख्य रूप से हमारे नए राष्ट्र के संस्थापकों की उस असफलता का परिणाम है जिसके चलते वे केन्द्र और प्रदेशों में सत्ता और प्रभाव के पदों पर आरूढ़ लोगों पर नियंत्रण रख सकने की कोई प्रभावशाली व्यवस्था नहीं कर पाए। उन्होंने इतिहास की तथा महात्मा गांधी की इस चेतावनी की उपेक्षा कर दी कि 'सत्ता में भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति होती है' और, इसलिए, भ्रष्टाचार को दूर रखने के लिए कुछ उपाय करने आवश्यक हैं। यह तो इस अवसादजनक कहानी का केवल एक भाग था। इस समस्या का एक दूसरा पक्ष है जिस की ओर हम अब मुड़ेंगे।

सभी प्रजातांत्रिक देशों में राष्ट्रीय विधायिकाओं के (और जहां-जहां प्रान्तीय विधायिकाएं हैं, उनके) निर्वाचित सदस्यों और सरकार के मंत्रियों को उनकी सेवाओं के लिए वेतन, भत्ते आदि मिलते हैं। इस पारिश्रमिक की राशि का निर्णय सार्वजनिक सेवाओं के लिए पारिश्रमिक से संबंधित वहां की राष्ट्रीय नीति के अनुरूप किया जाता है।

शासनाध्यक्ष सरकार और देश को नेतृत्व प्रदान करते हैं, वे सभी मंत्रालयों और विभागों के कामकाज में तालमेल स्थापित करते हैं तथा देश की शासन व्यवस्था के लिए अंतिम रूप से ज़िम्मेदार होते हैं। मंत्रियों पर गंभीर राष्ट्रीय दायित्व होते हैं और उनके निर्णय राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और राज्यव्यवस्था को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। राष्ट्रीय विधायिकाओं के सदस्य कानून बनाते हैं और कमेटियों तथा अंतर्वेशित माध्यमों से सरकारी गतिविधियों का अनुश्रवण करते हैं। इस प्रकार शासनाध्यक्षों, मंत्रियों और राष्ट्रीय विधायिकाओं के सदस्यों के उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य अत्यंत महत्वपूर्ण और श्रमसाध्य हैं। स्पष्ट रूप से यह आवश्यक है कि इन नेताओं के पारिश्रमिक उनके ऊंचे उत्तरदायित्वों और राजनीतिक पदों की गरिमा के अनुरूप हों। यह भी आवश्यक है कि ये वेतन ऐसे हों जिनसे लोक सेवा की ओर उच्च योग्यता प्राप्त, समाज में सम्मानित, प्रतिष्ठित और अचल सत्यनिष्ठा वाले

व्यक्ति आकर्षित हो सकें तथा उन पदों पर बने रह सकें। ली क्वान यू के शब्दों में, केवल वही लोग "अपने देशवासियों को ऐसी सरकार दे सकते हैं जो ईमानदार हों तथा उनकी सुरक्षा करने में समर्थ और सक्षम हों; जो एक सुस्थिर और सुव्यवस्थित सामाजिक वातावरण में सभी को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान कर सकें - एक ऐसा सामाजिक वातावरण जिसमें वे एक अच्छा जीवन जी सकें और अपनी संतान को इस योग्य बना सकें कि वह उन से बेहतर साबित हो।"[1]

प्रत्येक देश अपने राजनीतिक शासकों को दिए जाने वाले पारिश्रमिक के मानदंड स्वयं निर्धारित करता है। आमतौर पर, यह काम स्थायी समितियों को सौंपा जाता है। इन समितियों के सदस्य लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति होते हैं। ये स्थायी समितियां इस बात को ध्यान में रखते हुए कि व्यापार और उद्योग में वहां के वरिष्ठ अधिकारियों के वेतनमान क्या हैं, अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत करती हैं। निजी क्षेत्र के साथ तुलना करने का अभिप्राय उनके साथ समानता स्थापित करना न होकर यह निश्चित करना होता है कि कहीं बहुत अधिक विषमता तो नहीं है। वेतन, कम से कम, इतना तो होना ही चाहिए जिससे शासनाध्यक्ष, मंत्री और संसत्सदस्य एक ऐसा जीवनस्तर अपना पाने में समर्थ हों जो उनके राजनीतिक पद की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इस मामले में एक यथार्थवादी और समुचित उदारतायुक्त दृष्टिकोण अपनाया जाना अत्यावश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कहीं सत्ता में निहित प्रलोभन-प्रवृत्ति राजनीतिक वर्ग को भ्रष्ट करने में सफल न हो जाए। ऐसा करके ही कोई देश एक स्वच्छ, ईमानदार, प्रभावी और कुशल सरकारी प्रशासन के स्थापित होने की अपेक्षा कर सकता है।

आइए, अब तालिका 9.1 देखें जिसमें विभिन्न विकसित और विकासशील देशों के शासनाध्यक्षों को दिए जाने वाले पारिश्रमिकों के आंकड़े दिए गए हैं। इस तालिका तथा तालिका सं. 9.2 और 9.3 में प्रस्तुत आंकड़े 1995 में दिए गए पारिश्रमिकों से संबंधित हैं। तब से लेकर अब तक इन पारिश्रमिकों में काफी वृद्धि हो चुकी है क्योंकि इस दौरान इन का तीन बार वार्षिक पुनरवलोकन हो चुका है। फिर भी, अपने इसी रूप में ये विदेशों में तथा भारत में दिए जाने वाले वेतन में तुलना के लिए विश्वसनीय आधार प्रस्तुत करते हैं। भारत से संबंधित आंकड़ों को 1999 तक अद्यतन कर दिया गया है।

तालिका 9.1 को मुख्यतः *सिंगापुर टाइम्स* के 24 फरवरी 1996 के अंक में दिए गए तुलनात्मक आंकड़ों के आधार पर तैयार किया गया है। आस्ट्रेलिया, मलेशिया और भारत संबंधी आंकड़े सरकारी रिपोर्टों, समाचार पत्रों तथा अन्य विश्वसनीय सूत्रों से प्राप्त किए गए हैं। वार्षिक वेतन के आंकड़ों को 12 से विभाजित कर दिया गया है ताकि उनसे मासिक वेतन को निकाला जा सके।

सिंगापुर के मासिक वेतन संबंधी सही आंकड़े वास्तव में यहां दिए गए आंकड़ों से कम हैं पर कुछ अतिरिक्त वार्षिक राशियां जो वहां दी जाती हैं, उनको देखते हुए ये आंकड़े सही हैं। तालिका के अंतिम कॉलम में जो आंकड़े रुपयों में दिखाए गए हैं उन्हें एक डॉलर की कीमत 42 रुपये की दर से आंक कर तदनुसार परिवर्तित किया गया है।

तालिका 9.1: कुछ विकसित और विकासशील देशों के शासनाध्यक्षों के वेतन के नमूने की तुलनात्मक विवरणी

देश का नाम	*वेतन*		
	अमेरिकी डॉलरों में वार्षिक वेतन	*अमेरिकी डॉलरों में मासिक वेतन*	*तदनुसार रुपयों में मासिक वेतन*
सिंगापुर	812,858	67,738	2,845,003
जापान	395,049	32,921	1,382,672
जर्मनी	320,156	26,680	1,120,546
स्विट्ज़रलैंड	300,765	25,064	1,052,678
संयुक्त राज्य	200,000	16,667	700,000
दक्षिण अफ्रीका	150,766	12,564	527,681
आस्ट्रेलिया	141,242	11,770	494,347
फ्रांस	136,533	11,378	477,866
मैक्सिको	133,551	11,129	467,429
ब्रिटेन	129,189	10,766	452,162
स्वीडन	119,738	9,978	419,083
कनाडा	98,852	8,238	345,982
इटली	82,655	6,888	289,293
थाइलैंड	54,394	4,533	190,379
मलेशिया	50,520	4,210	176,820
ज़िम्बाबवे	48,582	4,049	170,037
भारत	5,000	417	17,500

स्रोत : मुख्यतः *सिंगापुर टाइम्स*, दिनांक 24 फरवरी 1996, में प्रकाशित एक रिपोर्ट पर आधारित

कोई भी समझदार व्यक्ति इस बात से इंकार नहीं करेगा कि भारत के प्रधानमंत्री का काम संसार के सब से कठिन और श्रमसाध्य उत्तरदायित्वों में से एक है। भारत संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है, इसकी जनसंख्या एक अरब के लगभग है और मतदाताओं की संख्या क़रीब 60.50 करोड़। भारत के प्रधानमंत्री की ज़िम्मेदारियां बे-हिसाब हैं और उनका विस्तार दिमाग़ को घुमा देने वाला है। यदि 50 या उससे अधिक प्रजातांत्रिक देशों की सूची उन के कामों की जटिलता को ध्यान में रख

कर बनाई जाए तो यह लगभग निश्चित है कि भारत का स्थान सबसे ऊपर के कुछ देशों में होगा।

और भारत के प्रधानमंत्री के पारिश्रमिक की स्थिति क्या है? यह इस प्रकार है - वेतन 4000 रुपये मासिक, व्ययिकभत्ता 1500 रुपये, 400 रुपये रोज़ाना की दर से 12000 रुपये मासिक भत्ता; कुल मिलाकर यह 17,500 रुपये मासिक बनता है जो 417 अमरीकी डॉलरों के बराबर होता है। भारत के प्रधानमंत्री को मुफ्त, सुसज्जित आवास मिलता है पर यह तो एक दो अपवादों को छोड़ कर सभी शासनाध्यक्षों को मिलता ही है। उन्हें प्रतिमास 8000 रुपये चुनाव क्षेत्र-भत्ते के रूप में भी मिलते हैं जो कि 190 50 अमरीकी डॉलरों के बराबर हैं। पर यह राशि उनके चुनाव क्षेत्र की यात्रा का ही मासिक खर्च है। यह चुनाव क्षेत्र काफ़ी लंबा-चौड़ा होता है और इसकी औसत जनसंख्या 18 लाख के लगभग होती है।

तालिका 9.2: कुछ विकसित तथा विकासशील देशों के कैबिनेट मंत्री के वेतन की तुलनात्मक विवरणी

देश का नाम	*वेतन*		
	अमेरिकी डॉलरों में वार्षिक वेतन	*अमेरिकी डॉलरों में मासिक वेतन*	*तदनुसार रुपयों में मासिक वेतन*
सिंगापुर	574,476	47,873	2,010,666
स्विट्ज़रलैंड	300,765	25,064	1,052,678
जापान	288,312	24,026	1,009,092
जर्मनी	167,038	13,920	584,633
संयुक्त राज्य	148,400	12,367	519,400
दक्षिण अफ्रीका	115,806	9,651	405,321
ब्रिटेन	106,845	8,904	373,958
स्वीडन	101,317	8,443	354,610
आस्ट्रेलिया	92,481	7,707	323,684
मैक्सिको	90,422	7,535	316,477
कनाडा	81,723	6,810	286,031
फ्रांस	72,941	6,078	255,294
थाइलैंड	49,622	4,135	173,677
इटली	45,085	3,757	157,798
ज़िम्बाबवे	25,569	2,131	89,492
भारत	4,857	405	17,000

स्रोत : मुख्यतः *सिंगापुर टाइम्स* दिनांक 24 फरवरी 1996 में प्रकाशित एक रिपोर्ट पर आधारित

तालिका 9.1 को देखने से पता चलता है कि भारत के प्रधानमंत्री के पारिश्रमिक का कुल जोड़, ज़िम्बाबवे, मलेशिया और थाइलैंड के प्रधानमंत्रियों के पारिश्रमिक का केवल दसवां भाग बनता है।

तालिका 9.2 में सूचित देशों के एक कैबिनेट मंत्री के वेतन का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

भारत में एक कैबिनेट मंत्री का पारिश्रमिक प्रधानमंत्री के पारिश्रमिक के बराबर है, अन्तर केवल इतना है कि प्रधानमंत्री को व्यय भत्ता 1500 रुपये मिलता है जब कि कैबिनेट मंत्री को 1000 रुपये। इस प्रकार भारत के एक कैबिनेट मंत्री को 4000 रुपये मासिक वेतन, 1000 रुपये मासिक व्ययिक भत्ता, 400 रुपये प्रतिदिन अथवा 12000 रुपये मासिक दैनिक भत्ता मिलता है जो कुल जमा 17000 रुपये होता है। *इस प्रकार एक कैबिनेट मंत्री को मिलने वाले वेतन के मामले में भी भारत का स्थान उपरोक्त तालिका में सब से नीचे है।*

आइए, अब संसत्सदस्यों (एम पी) अथवा राष्ट्रीय विधायकों के वेतन देखते हैं। इन्हें तुलनात्मक तालिका 9.3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 9.3: कुछ विकसित और विकासशील देशों की राष्ट्रीय संसद/विधायिका के सदस्य के वेतन के नमूने की तुलनात्मक विवरणी

देश का नाम	*वेतन*		
	अमेरिकी डॉलरों में वार्षिक वेतन	*अमेरिकी डॉलरों में मासिक वेतन*	*तदनुसार रुपयों में मासिक वेतन*
जापान	235,382	19,615	823,837
जर्मनी	136,503	11,375	477,761
संयुक्त राज्य	133,600	11,133	467,600
इटली	126,331	10,528	442,159
फ्रांस	89,639	7,470	313,737
ब्रिटेन	68,832	5,736	240,912
कनाडा	65,793	5,483	230,276
सिंगापुर	65,174	5,431	228,109
आस्ट्रेलिया	58,550	4,879	204,925
दक्षिण अफ्रीका	52,768	4,397	184,688
मैक्सिको	49,725	4,144	174,038
स्विट्ज़रलैंड	47,263	3,939	165,421
थाइलैंड	36,740	3,062	128,590
ज़िम्बाबवे	11,013	918	38,546
भारत	4,571	381	16,000

स्रोत : मुख्यतः *सिंगापुर टाइम्स* दिनांक 24 फरवरी, 1996 में प्रकाशित एक रिपोर्ट पर आधारित

आश्चर्य नहीं कि तालिका 9.3 में भी भारत को सब से नीचे स्थान मिला है। इस समय भारत की संसद के, जोकि एक अरब जनता का प्रतिनिधित्व करती है, निचले सदन में 545 सदस्य और उच्च सदन में 250 सदस्य हैं। देश की सरकार, निचले सदन, जिसे लोकसभा कहते हैं, के प्रति उत्तरदायी है और जब तक उसे इस सदन का विश्वास प्राप्त रहता है, तभी तक यह अपने पद पर बनी रह सकती है। इस प्रकार प्रत्येक संसत्सदस्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सम्मानित राजनीतिक व्यक्ति है।

एक संसत्सदस्य का वेतन 4000 रुपये मासिक है। इसके अतिरिक्त उसे 400 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से उतने दिनों का दैनिक भत्ता मिलता है जितने दिन वह संसद के कार्य से राजधानी में रहता/रहती है। अन्य दिनों में यह दैनिक भत्ता नहीं मिलता। इस प्रकार भारत की संसद के सदस्य को वर्ष के एक भाग में कुल जमा 16000 रुपये मासिक और शेष भाग में 4000 रुपये का घटा हुआ मूल वेतन मिलता है। दूसरे देशों के विधायकों और भारतीय विधायकों को मिलने वाले वेतन में तुलना की दृष्टि से यहां भारतीय विधायकों का मासिक वेतन 16000 रुपये लिया गया है, हालांकि उनका औसत मासिक वेतन इससे कहीं कम बनता है।

यदि भारत के एक संसत्सदस्य का वेतन 16000 रुपये मासिक मान भी लिया जाए, तो भी यह

1. ज़िम्बाबवे के एक संसत्सदस्य के वेतन के 42% से कम है;
2. थाइलैंड के एक संसत्सदस्य के वेतन के 12.5% से कम है;
3. मैक्सिको के एक संसत्सदस्य के वेतन के 9.5% से कम है; और
4. दक्षिणी अफ्रीका के एक संसत्सदस्य के वेतन के 9% से कम है;

ऊपर की तालिकाओं से साफ़ पता चलता है कि भारत के प्रधानमंत्री, मंत्रियों और संसत्सदस्यों को मिलने वाले वेतन अन्य देशों में उनकी बराबरी के पदाधिकारियों से मिलने वाले वेतनों की तुलना में बहुत कम हैं। वास्तव में, ऊपर दिखाई विषमता की तुलना में वास्तविक विषमता काफ़ी अधिक है। इसका कारण यह है कि वेतन संबंधी भारतीय आंकड़े वर्ष 1999 से संबंधित हैं जब कि अन्य देशों की स्थिति वर्ष 1995 की है। इन अन्य देशों में से अधिकतर देशों के वेतन संबंधी आंकड़े 1999 में बढ़ाए जा चुके हैं। इस प्रकार भारत के मंत्रियों और विधायकों को दिए जाने वाले वेतनों और तालिकाओं में दिए गए देशों के मंत्रियों और विधायकों को मिलने वाले वेतनों के बीच अंतर और भी अधिक हो जाता है। इसके अलावा, हर हाल में, भारतीय पारिश्रमिक अपने आप में भी उन उच्च पदों के लिए अपर्याप्त हैं जिनसे वे संबंधित हैं। क्या कोई प्रधानमंत्री, मंत्री या संसत्सदस्य कह सकता/सकती है कि वह 17,500 रुपये या 16000 रुपये के सकल वेतन के साथ नई दिल्ली जैसे

शहर में अपने आम घरेलू ख़र्च चला सकता/सकती है? उत्तर नकारात्मक ही होगा। निस्संदेह, यदि इनमें से किसी पदाधिकारी के पास दूसरे निजी साधन हों तो वह एक रुपये मासिक में निर्वाह कर लेगा/लेगी। परन्तु एक ग़रीब व्यक्ति क्या करेगा? भारत के ये राजनीतिक पद चंद पैसे वाले लोगों के लिए ही नहीं हैं। वे ग़रीबों के लिए भी खुले हैं और होने भी चाहिए। तो फिर यह पारिश्रमिक इस कद्र कम क्यों हैं? इस मामले में भारत के सरकारी नेताओं की नीति क्या रही है? आइए, इस मामले को और गहराई से देखें।

भारत में, मंत्रियों और संसत्सदस्यों के पारिश्रमिकों का निर्धारण संसदीय विधेयकों द्वारा किया जाता है। पर किसी भी विषय पर बनाए जाने वाले कानून का प्रारूप देश के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा समय-समय पर किए गए नीतिगत निर्णयों पर आधारित होता है। तो फिर इन उच्च राजनीतिक पदाधिकारियों के वेतन के स्तर से संबंधित प्रश्न और उससे जुड़े, नियमित पुनरवलोकन और वेतनवृद्धि के प्रश्न पर भारत की नीति क्या रही है? इसका उत्तर यह है कि स्वाधीनता से लेकर अब तक भारत पर शासन करने वाले नेताओं ने इस अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर सोच-विचार करने की बात ही कभी नहीं उठाई।

प्रधानमंत्री, मंत्रियों और संसत्सदस्यों के वेतनों की नियतकालिक पुनरवलोकन का निर्धारण करने वाले सिद्धान्तों से संबंधित किसी ऐसी नीति की घोषणा भी कभी नहीं की गई जिससे इस विषय पर संसदीय कानून बनाने का आधार ही मिल पाता। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इस विषय का पूरे सरकारी प्रशासन के स्वरूप और उसकी सत्यनिष्ठा पर गहरा प्रभाव पड़ता है, किसी भी ज़िम्मेदार और दूरदर्शी सरकार के लिए आवश्यक था कि वह इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करती और जो लोग देश के प्रशासनिक ढांचे में सबसे अधिक महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित हैं, उनके पारिश्रमिकों के निर्धारण और नियत कालिक पुनरवलोकन के लिए कुछ सुस्पष्ट और न्याय संगत मानदंडों की स्थापना करती। भारत में ऐसा नहीं हुआ। इस प्रकार के, ज़िंदगी की ज़रूरतों से जुड़े मामले में देश के संस्थापक नेताओं द्वारा बरती गई ऐसी लापरवाही समझ से परे है। समय-समय पर तदर्थ निर्णय किये जाते रहे हैं और उन्हें संसदीय विधेयकों में शामिल किया जाता रहा है।

राज्य के इन उच्च पदाधिकारियों के पारिश्रमिकों का निर्धारण स्वाधीनता के आरंभिक दिनों से अब तक समय-समय पर, जिस ढंग से होता रहा है, उसकी भी एक रोचक कहानी है।

इस विषय पर पहला संसदीय विधेयक 'मंत्रियों के वेतन और भत्तों का विधेयक, 1952' था। इस विधेयक के तहत, प्रधानमंत्री और कैबिनेट मंत्रियों का वेतन

1952 में 2,250 रुपये मासिक निर्धारित किया गया। जीवन-निर्वाह की कीमतों में, विशेषकर 1970 के बाद से, तेज़ी से हुई वृद्धि के बावजूद अगले 32 वर्षों - अर्थात् 1985 तक इस वेतन में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। 1952 में जो अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (एआइसीपीआइ) 104 था (1949 में 100), वह 1985 में 722 तक पहुंच चुका था। इस हिसाब से, यदि एआइसीपीआइ के इतने अधिक चढ़ाव और उसके फलस्वरूप आधारभूत जीवन-निर्वाह के खर्च में होने वाली वृद्धि के अनुसार वेतन को समायोजित किया जाता, तो 1952 में निर्धारित किया गया 2,250 रुपये मासिक वेतन 1985 में बढ़ कर 15,260 रुपये मासिक हो जाना चाहिए था। इस प्रकार 1950 में निर्धारित 2,250 रुपये के वेतन का मूल्य 1952 में रुपये का केवल पंद्रह प्रतिशत रह गया था। इससे निस्संदेह ईमानदार मंत्रियों को, विशेषतः उन्हें, जिनकी अपनी कोई निजी आय नहीं, बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा होगा। 1985 में, ऐसी ही स्थिति में तत्कालीन सरकार ने प्रधानमंत्री तथा कैबिनेट मंत्रियों के वेतन पर पुनर्विचार करने का निर्णय किया। ऐसा करने के पश्चात्, उसने प्रधानमंत्री और मंत्रियों के वेतन के संबंध में एक ऐसा हास्यास्पद निर्णय किया जिसका उदाहरण शायद ही विश्व की किसी और ज़िम्मेदार सरकार के निर्णयों में कहीं मिले। सरकार इस परिणाम पर पहुंची कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि प्रधानमंत्री और मंत्रियों को संसत्सदस्यों से अधिक वेतन दिया जाए जो कि उस समय 400 रुपये मासिक था। एक संसत्सदस्य का वेतन, जो कि बहुत कम था, बढ़ा कर मंत्री के बराबर किया जाना तो निस्संदेह एक बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय होता। पर ऐसा नहीं किया गया। उलटे, 1985 में संसद में एक बिल पास करके प्रधानमंत्री और मंत्रियों का वेतन, जो कि उस समय 2,250 रुपये मासिक था, कम करके 400 रुपये मासिक कर दिया गया जिससे यह एक संसत्सदस्य के वेतन के स्तर पर आ गया। अप्रैल 1988 तक मंत्रियों और संसत्सदस्यों के वेतन इसी स्तर पर बने रहे, उस के बाद इन्हें बढ़ा कर 1500 रुपये मासिक कर दिया गया। पूरे दस वर्ष बाद, अर्थात् 1998 में प्रधानमंत्री, मंत्रियों और संसत्सदस्यों का वेतन बढ़ा कर 4000 रुपये मासिक किया गया।

जहाँ तक संसत्सदस्यों का प्रश्न है, 'संसत्सदस्यों के वेतनों और भत्तों के विधेयक-1954' में 400 रुपये के वेतन और संसद का काम करने के दिनों में 21 रुपये के दैनिक भत्ते की व्यवस्था थी। जनता के सर्वोच्च प्रतिनिधियों के लिए 400 रुपये मासिक का वेतन तो उस समय भी बहुत ही कम था। भारत के एक अवर सचिव तक का प्रारंभिक वेतन भी उस समय 800 रुपये था। आश्चर्य की बात है अगले 34 वर्षों तक इसमें कोई वृद्धि नहीं की गई हालांकि इस दौरान

जीवन-निर्वाह का ख़र्च काफी बढ़ चुका था। 1988 में वेतन को बढ़ा कर 1500 रुपये मासिक कर दिया गया और भत्ते को 200 रुपये प्रतिदिन। एक बार फिर, अगले दस वर्ष तक कोई वृद्धि नहीं की गई। 1998 में वेतन को बढ़ा कर 4000 रुपये प्रति मास कर दिया गया और दैनिक भत्ता 400 रुपये प्रतिदिन।

जैसा कि हमने देखा, प्रधानमंत्री का कुल मासिक पारिश्रमिक 17,500 रुपये (417 अमेरिकी डॉलर या 260 ब्रिटिश पाउंड) है और एक कैबिनेट मंत्री का 17,000 रुपये (405 अमेरिकी डॉलर या 253 ब्रिटिश पाउंड)। जब संसद सत्र चल रहा हो तो एक संसत्सदस्य का पारिश्रमिक कुल 16,000 रुपये (381अमेरिकी डॉलर अथवा 238 ब्रिटिश पाउंड) होता हैं और जब न चल रहा हो तो केवल 4000 रुपये (95 अमेरिकी डॉलर या 59 ब्रिटिश पाउंड) रह जाता है। किसी भी वस्तुपरक मानदंड से ये पारिश्रमिक अत्यंत कम है। एक अत्यंत साधारण जीवन-शैली के लिए भी ये सर्वथा अपर्याप्त है। और हमें यह भी याद रखना चाहिए कि मंत्रियों और संसत्सदस्यों को दो स्थानों पर घर रखना पड़ता है - एक नई दिल्ली में और दूसरा अपने गृह-नगर में। इसका अपवाद केवल वही संसत्सदस्य हैं जो राजधानी के ही निवासी हैं। तो फिर इन के लिए खर्च चलाने का साधन क्या है? स्पष्टतः, या तो निजी सम्पत्ति या फिर भ्रष्टाचार। व्यापार या उद्योग जगत् के कई लोग अथवा धनवान् अपराधी और ठग इन उच्च पदस्थ महानुभावों के 'मित्र' हैं जो इनकी 'मेज़ तले सहायता' करने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं। इसके अतिरिक्त, कहा जाता है कि इस प्रकार की परिस्थिति का उपयोग उच्च पदस्थ नेताओं द्वारा कुछ चुने हुए संसत्सदस्यों की असंदिग्ध वफ़ादारी खरीदने के लिए, समय समय पर उन्हें रुपयों के 'पैकेट' देकर भी किया गया है। इस काम के लिए धन 'मेज़ तले' प्राप्त किए गए काले धन से, जो कि परमिट, कोटा और लाइसेंस के बदले हासिल किया गया था, जुटाया गया था। यह सुखद व्यवस्था रिश्वत या 'पैकेट' देने और लेने वाले, दोनों के लिए भले ही सुविधाजनक रही हो पर इससे पूरे देश में भ्रष्टाचार फैल गया है।

यह सर्वविदित है कि मंत्रियों और संसत्सदस्यों के वेतन संबंधी निर्णय उच्चतम राजनीतिक स्तर पर किए जाते हैं। ऐसे कौन से कारण हैं जिनके चलते इन निर्णायकों ने उच्च राजनीतिक पदों पर नियुक्त व्यक्तियों के लिए इतने कम वेतन निर्धारित किए? ऐसा दिखाई पड़ता है कि उन लोगों की यह साबित करने की इच्छा थी कि मंत्री और संसत्सदस्य उस वेतन से अपना घर नहीं भरना चाहते जो सार्वजनिक धन से प्राप्त होता है। इस विषय में निर्णय करने वालों को पता था, या फिर पता होना चाहिए था, कि उनके इस कदम के परिणाम क्या होंगे - राजनीतिक वर्ग में व्यापक भ्रष्टाचार! यह कैसी मानसिकता है जो देश की जनता

के सामने सादगी और सत्यनिष्ठा की मरीचिका फैला देती है, यह जानते-बूझते हुए भी कि वास्तविकता तो भ्रष्टाचार का सागर है? इस मानसिकता के लक्षण क्या हैं? स्पष्ट ही ये *दम्भ* और *पाखंड* हैं जिनका उद्देश्य जनता को बहकाना है। पर जनता को बेवकूफ़ नहीं बनाया जा सकता। आप सड़क पर चलते किसी भी साधारण व्यक्ति से राजनीतिज्ञों के संबंध में उस की राय पूछ कर देखिए। इस बात की संभावना बहुत कम है कि वह सम्मानसूचक हो।

यदि यह कहा जाए कि भारत जैसा ग़रीब देश इससे ऊंचे वेतन दे सकने में समर्थ नहीं है, तो हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि भारत के लिए भ्रष्टाचार का बोझ ढो सकना और भी कठिन है। वास्तविकता यह है कि भ्रष्टाचार का कुल खर्च देश पर उस खर्च से करोड़ों गुना अधिक पड़ता है जो एक ईमानदार शासक वर्ग के लिए थोड़े-से अधिक वेतन का प्रावधान करने पर आता है। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, पूरे देश में ऐसे लोगों की संख्या 5,203 से अधिक नहीं है जो प्रधानमंत्री, प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों, कैबिनेट मंत्रियों, संसत्सदस्यों और प्रदेशों की विधान सभाओं के सदस्यों के पदों पर बैठते हैं। बात को स्पष्ट करने के लिए एक ही उदाहरण काफ़ी है। हर वर्ष केन्द्र और राज्य सरकारें नई सड़कें बनाने तथा वर्तमान सड़कों के रख-रखाव पर हज़ारों करोड़ रुपये का प्रावधान करती हैं। यह आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि इतनी बड़ी राशि का एक बहुत बड़ा भाग बेईमान अधिकारियों तथा राजनीतिज्ञों द्वारा हज़म कर लिया जाता है और देश के कई भागों में सड़कों की दशा अत्यंत दयनीय बनी रहती है। इससे सड़कों पर चलने वाले मोटर-वाहनों के आने-जाने में रुकावट पड़ती है, इसका प्रभाव देश की आर्थिक गतिविधि पर पड़ता है जो सुस्त पड़ जाती है। क्या देश हर वर्ष इस नुकसान को सहन कर सकता है? इसके अतिरिक्त, यदि ज़िम्बाबवे, थाइलैंड, मलेशिया और मैक्सिको, जो सभी विकासशील देश हैं, अपने राजनीतिक अधिकारियों को अच्छा वेतन दे सकते हैं तो भारत क्यों नहीं?

देश में ईमानदार एवं कुशल राज्यशासन चलाने के लिए कोई भी कीमत बहुत बड़ी नहीं है। भ्रष्टाचार के कारण ही जनता के कल्याण के कार्यक्रम सफल नहीं हो पाते। बिना ईमानदार राजनीतिक वर्ग के न तो प्रशासन न्यायानुकूल हो सकता है, न कानून का राज्य चल सकता है और, अन्ततः, न ही स्वतंत्रता कायम रह सकती है। इस प्रकार यह एक विचित्र मानसिकता है जिसके अनुसार मंत्रियों और संसत्सदस्यों को अपेक्षाकृत कम तथा अपर्याप्त वेतन देकर दरिद्रता की दशा में रखा जाता है ताकि वे अपनी आत्मा को बेच दें और भ्रष्टाचारी बन जाएं। एक बात यह भी है कि सर्वोच्च पदों पर आसीन नेता गुप्तचर एजेंसियों की सहायता से इन लोगों के भ्रष्टाचार के छिपे कारनामों के कच्चे चिट्ठे तैयार करवाते हैं तथा उनके

माध्यम से इन्हें अपने वश में रखते हैं। इस धूर्तसाधन से वे सर्वोच्च नेता राजनीतिज्ञों की गर्दन पर अपनी पकड़ बनाए रखने में भले ही सफल हो जाएं, देश के प्रशासनतंत्र को तो इससे भारी हानि होती है।

एक तर्क यह दिया जा सकता है कि अच्छा वेतन सत्यनिष्ठा की कोई गारंटी नहीं है तथा जो भ्रष्ट रहना चाहते हैं, वे भ्रष्ट रहेंगे ही। बहुत ऊंचा वेतन पाने वाले राजनीतिज्ञों के उदाहरण दिए जा सकते हैं जिन पर बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार में लिप्त होने के आरोप हैं। विभिन्न महाद्वीपों के कई देशों के बहुत से राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्री ऐसे लोगों में शामिल हैं। यह बिल्कुल सच है कि ऊंचा वेतन सत्यनिष्ठा की कोई गारंटी नहीं है। परन्तु यह भी सच है कि समुचित वेतन उन लोगों को, जो ईमानदार रहना चाहते हैं, बेदाग़ बने रहने का अवसर प्रदान करता है। पूर्वी एशिया के कई देशों में, समुचित ऊंचे वेतन देने की नीति से प्रशासन में सत्यनिष्ठा को प्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिला है। कम और अपर्याप्त वेतन भ्रष्टाचार के लिए खुला निमंत्रण है। ऐसे लोगों को भी, जो अपनी आत्मा को कलंकित नहीं करना चाहते और सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा का अनुसरण करना चाहते हैं, पर उनके पास अपने अन्य निजी साधन नहीं हैं, केवल अपनी आवश्यकताओं, अपनी अनिवार्य पारिवारिक आवश्यकताओं, को पूरा करने के लिए भ्रष्टाचार के सामने घुटने टेकने को विवश होना पड़ता है। और जब, एक बार, बेईमानी की ओर उनके कदम उठ जाते हैं तो फिर लौटना तो लगभग असंभव ही हो जाता है।

इस प्रकार, आज, भारत में राजनीतिक वर्ग का एक बड़ा भाग अत्यधिक भ्रष्टाचारी हो गया है। अपराधियों और ठगों ने अपने भुजबल के ज़ोर पर सर्वत्र प्रवेश कर लिया है। प्रजातांत्रिक संस्थाएं प्रदूषित हो गई हैं। निम्नांकित दो कार्टूनों में आर.के. लक्ष्मण ने प्रशासन में भ्रष्टाचार और राजनीति में हिंसा की वर्तमान स्थिति का सटीक चित्रण किया है। ये कार्टून *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* के नई दिल्ली संस्करण दिनांक 27 मार्च 1999 तथा 31 मार्च 1999 को प्रकाशित हुए थे।

आज की निराशाजनक स्थिति की ज़िम्मेदारी पूरी तरह उन नेताओं के कंधों पर है, जिन्होंने अवसर और उत्तरदायित्व रहते, एक अच्छा वेतन पाने वाले, संतुष्ट और ईमानदार राजनीतिक वर्ग की संस्थापना में रुचि नहीं ली और उन लोगों पर, जिन्होंने अपने पद का दुरुपयोग करते हुए, नाजायज़ तरीकों से देश की राज्यव्यवस्था को पूरी तरह अपनी मुट्ठी में लेने का प्रयत्न किया। आज का भ्रष्ट भारत उन्हीं की सौंपी हुई विरासत है।

अब वह समय आ पहुंचा है कि जनता इस प्रश्न को उठाए ताकि देश को उस आचरण से मुक्ति दिलाई जा सके जिसके कारण उसे बेहिसाब नुकसान पहुंच रहा है और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिल रहा है। जनता को इस बात का आग्रह करना

चाहिए कि प्रधानमंत्री, मंत्रियों, संसत्सदस्यों तथा उनके सदृश विशिष्ट लोगों का वेतन उनके ऊंचे उत्तरदायित्वों के अनुरूप होना चाहिए। इसके साथ जुड़ी हुई ऐसी सख्त, नई कानूनी व्यवस्था भी हो जिससे भ्रष्टाचार को रोका जा सके और जो लोग कपटपूर्ण साधनों का उपयोग करते हैं उन्हें सख्त और शीघ्र दंड दिया जा सके।

क्या कहना! लक्ष्मण कृत

धन्यवाद, मुझे गलत मत समझना! मैं तो ईमानदार हूं। मैं रिश्वत अपने लिए नहीं रखता। यह किसी और को रिश्वत देने के लिए है।

क्या कहना! लक्ष्मण कृत

बुरा मत मानो। यदि आप हमारे जैसे सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न प्रजातांत्रिक गणतंत्र की राजनीति में हैं तो, इन दिनों, ऐसा होना तो अनिवार्य है।

आइए, इस विषय पर थोड़ा विस्तारपूर्वक विचार करें। यद्यपि यहां पर हमारा मुख्य प्रयोजन संसत्सदस्यों के वेतन की चर्चा करना है, फिर भी अपर्याप्त वेतनों का सुस्पष्ट बुनियादी मुद्दा तो विधानसभाओं के सदस्यों के साथ भी वैसे ही संबंधित है। जहां संसत्सदस्यों का संबंध केन्द्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों से है, वहां देश के संघीय संविधान के अंतर्गत विधायकों की वैसी ही भूमिका प्रादेशिक सरकारों के उत्तरदायित्व के अंतर्गत विषयों में है। इस प्रकार केन्द्र में संसत्सदस्यों तथा राज्यों में विधायकों को मिला कर राष्ट्र का शासक वर्ग बनता है। इनकी संख्या तालिका 9.4 में दी गई है।

ये 1,000,000,000 जनता के 5,203 प्रतिनिधि आज भारत का शासन चलाने के लिए उत्तरदायी हैं। इसी अपेक्षाकृत सुसम्बद्ध समुदाय से भारत को उसके प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री और कैबिनेट मंत्री प्राप्त होते हैं जो जनता की ओर से देश का शासन चलाते हैं। यह उनका पवित्र कर्तव्य है कि वे 'जनता के लिए'

देश का प्रशासन करें और सर्वसाधारण की भलाई के काम में सहायक बनें। परन्तु वे ऐसा तभी कर सकते हैं यदि एक ऐसी प्रभावी व्यवस्था हो जो उन्हें न केवल ऐसी क्षमता प्रदान कर सके, अपितु उनके लिए यह अनिवार्य भी बनाए कि वे अपने विवेक के अनुसार, स्वतंत्रता और ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्य का पालन कर सकें। भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष आरंभ करने के लिए ऐसी व्यवस्था का सृजन आवश्यक है। भ्रष्टाचार को रोकने एवं दण्डित करने की कानूनी व्यवस्था इसका पहला अंग है। इसका उल्लेख हम पहले ही कर आए हैं और इसकी विस्तृत चर्चा बाद के एक अध्याय में की जाएगी। इस समय आवश्यक है कि हम 'राजनीतिक वर्ग' के वेतन को उचित स्तर तक बढ़ाने के प्रश्न पर अधिक गहराई से विचार करें।

शंकालु लोग शायद यह तर्क दें : 'यदि आप संसत्सदस्यों और विधायकों के वेतन बढ़ाएंगे तो दूसरे क्षेत्रों से भी उत्तरोत्तर यह मांग उठने लगेगी।' यह तर्क सर्वथा निराधार है। पहली बात तो यह है कि ये लोग सर्वोच्च राजनीतिक हस्तियां हैं, जिनके हाथों में भारत की जनता ने राज्य सत्ता सौंपी हुई है। सरकारी कार्यकर्त्ताओं के किसी अन्य समुदाय की इनके साथ तुलना नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, एक सदस्य का वेतनमान इतना कम - 4000 रुपये - है जिसका ज़िक्र करते हुए भी संकोच होता है। यह सच है कि उसे 400 रुपये का दैनिक भत्ता भी मिलता है पर उसका कारण यह है कि उसे अपने गृहनगर के अतिरिक्त, नई दिल्ली में भी एक घर चलाना होता है। इस प्रकार एक संसत्सदस्य का नियमित वेतन आज भी 4000 रुपये मात्र ही है। और इतना ही मूल वेतन प्रधानमंत्री और कैबिनेट मंत्रियों को भी मिलता है। इसकी तुलना भारत सरकार के एक सचिव के वेतन के साथ करें, जिसका मासिक वेतन 26,000 रुपये है और विश्वविद्यालय के एक संकाय-अध्यक्ष के साथ, जिसका मासिक वेतन 22,400 रुपये है।

कुछ लोग शायद यह कहें कि राजनीतिक वर्ग के लोगों को और भी कई लाभ, सुविधाएं और भत्ते उपलब्ध हैं जो साफ़-साफ़ दिखाई तो नहीं देते पर कुल मिला कर उनका वित्तीय मूल्य काफ़ी अधिक जा बैठता है और इस प्रकार राजकोष पर भारी ख़र्च पड़ता है। इसके उत्तर में यह बात कह देना आवश्यक है कि ये सारे अतिरिक्त लाभ वास्तव में किये गए ख़र्चों - जैसे यात्रा, चिकित्सा सहायता आदि - की प्रतिपूर्तियां ही हैं।

इस प्रकार मिलने वाले धन से मासिक वेतन में किसी प्रकार की बढ़ोतरी नहीं होती और इसका उपयोग बच्चों की शिक्षा अथवा कपड़ों या फिर घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं किया जा सकता। इस वस्तुस्थिति को देखते हुए,

तालिका 9.4

	राष्ट्रीय संसद	सदस्यों की संख्या
	लोकसभा	545
	राज्यसभा	250
	कुल	795

प्रादेशिक विधायिकाएं

	राज्य	सदस्य		
		विधानसभा	परिषद्	कुल
1.	आंध्र प्रदेश	294	-	294
2.	अरुणाचल प्रदेश	60	-	60
3.	असम	126	-	126
4.	बिहार	324	96	420
5.	गोवा	40	-	40
6.	गुजरात	182	-	182
7.	हरियाणा	90	-	90
8.	हिमाचल प्रदेश	68	-	68
9.	जम्मू-कश्मीर	76	-	76
10.	कर्नाटक	224	75	299
11.	केरल	140	-	140
12.	मध्यप्रदेश	320	90	410
13.	महाराष्ट्र	288	78	366
14.	मणिपुर	60	-	60
15.	मेघालय	60	-	60
16.	मिज़ोरम	40	-	40
17.	नागालैंड	60	-	60
18.	उड़ीसा	147	-	147
19.	पंजाब	117	-	117
20.	राजस्थान	200	-	200
21.	सिक्किम	32	-	32
22.	तमिलनाडु	234	-	234
23.	त्रिपुरा	60	-	60
24.	उत्तर प्रदेश	425	108	533
25.	पश्चिमी बंगाल	294	-	294
राज्य विधायिकाओं के कुल सदस्य		3,961	447	4,408

	संसत्सदस्य	795
	विधायक	4,408
	कुल जोड़	5,203

राजनीतिक वर्ग को दिया जाने वाला मासिक पारिश्रमिक अत्यंत अपर्याप्त है जिसके कारण अतिरिक्त 'ग़ैर सरकारी' संपूरक धन के दरवाज़े खुलते हैं। स्पष्ट है कि राजनीतिक वर्ग के सदस्यों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि के तर्क को किसी प्रकार भी विवादास्पद नहीं माना जा सकता।

इसलिए आइए देखें कि यदि 'राजनीतिक वर्ग' के प्रत्येक सदस्य के वेतन में पर्याप्त वृद्धि कर दी जाए तो उसके वित्तीय परिणम क्या होंगे।

यदि इनमें से प्रत्येक को प्रतिमास 25,000 रुपये अतिरिक्त दिए जाएं तो कुल अतिरिक्त इस प्रकार बनेगी :

रु. 25,000 × 12 × 5,203 = रु. 156.09 करोड़

यदि प्रति व्यक्ति प्रतिमास वृद्धि 50,000 रुपये कर दी जाए तो कुल वृद्धि इस प्रकार होगी :

रु. 50,000 × 12 × 5,203 = रु. 312.18 करोड़

यदि प्रति व्यक्ति वृद्धि 1,00,000 रुपये मासिक के हिसाब से भी हो जाए, तो भी यह वृद्धि

रु. 1,00,000 × 12 × 5,203 = रु. 624.36 करोड़ होगी।

यदि वित्तीय वर्ष 1999-2000 में सरकार के कुल खर्च बजट 284,003 करोड़ रुपये को देखें तो स्पष्ट रूप से उसकी तुलना में उपरोक्त राशियां नगण्य हैं। यदि इसमें सारे प्रदेशों के ख़र्च-बजट को जोड़ लें तो साफ़ पता चलेगा कि जहां तक प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों, संसत्सदस्यों और विधायकों के वेतन का प्रश्न है, समस्या पैसे की नहीं है; यह तो एक दंभी मानसिकता की पराकाष्ठा है जिसके कारण समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में देखा ही नहीं जाता, उसे सुलझाने का प्रयास करना तो दूर की बात है।

देश और देश की जनता के समक्ष निम्नांकित विकल्प हैं :

1. एक ऐसा शासक-राजनीतिक वर्ग जिसे बहुत कम वेतन मिलता है, जो बहुत हद तक अत्यंत भ्रष्ट है, अपराधियों, काला धन जमा करने वालों, माफ़िया सरगनाओं और उन्हीं जैसे लोगों से जुड़ा है और जो अच्छी सरकार देने में असमर्थ है (जैसी कि वर्तमान स्थिति है)
2. एक ऐसा राजनीतिक वर्ग जिसे पर्याप्त वेतन मिलता हो, जो ईमानदारी और स्वतंत्रतापूर्वक काम करते हुए देश को स्वच्छ, कुशल और जनानुकूल शासन व्यवस्था प्रदान कर सके, तथा जिसकी स्थापना निम्नलिखित

उपायों से की जा सकती है :

(*i*) एक स्वतंत्र स्थायी समिति के तंत्र के माध्यम से, सम्पूर्ण पारदर्शिता तथा ईमानदारी के साथ उनके वेतनों, भत्तों, यात्रा सुविधाओं, चिकित्सा सुविधाओं आदि की समस्या पर विचार किया जाए, और

(*ii*) भ्रष्टाचार पर नियंत्रण और उसके निवारण के लिए, तथा उसके साथ-साथ भ्रष्टाचार में प्रवृत्त लोगों को तुरंत, कड़ा दंड देने की कानूनी व्यवस्था की जाए।

यहां यह कहना आवयश्क है कि एक ईमानदार राजनीतिक वर्ग, जिसका अर्थ होगा सरकारी मंत्रालयों एवं विभागों के प्रमुखों के रूप में मंत्रियों के ईमानदार होने के साथ-साथ सर्वोच्च नौकरशाही के सदस्यों का, जो कि उक्त मंत्रियों के सीधे सम्पर्क में रहते हैं, भी अनिवार्य रूप से ईमानदार होना। कोई भी सरकारी सचिव बेईमान नहीं होगा यदि उसके स्वामी - मंत्री - की सत्यनिष्ठा बेदाग़ हो। यदि उच्च अधिकारी कोई छल-कपट करेगा तो मंत्री उसे तुरंत उसके काम से निकाल बाहर करेगा। इस तरह ईमानदार मंत्री होने से मंत्रालय के सचिव का ईमानदार होना सुनिश्चित हो सकेगा और एक ईमानदार सचिव भरसक प्रयास करेगा कि उसका सारा मंत्रालय बेदाग़ रहे। इस प्रकार सत्यनिष्ठा का अमृत मंत्री से नीचे की ओर बहने लगेगा जिससे देश के प्रशासन में आमूल परिवर्तन होना शुरू हो जाएगा। परिणाम यह होगा कि संसद कहीं अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से, गरिमा के साथ चलने लगेगी। भारत के प्रजातंत्र को इस प्रकार एक नई आभा प्राप्त होगी। यही कारण है कि भ्रष्टाचार के आतंक को दूर करने तथा प्रजातांत्रिक प्रक्रिया को सशक्त करने की दिशा में एक ईमानदार राजनीतिक वर्ग का अस्तित्व पहला कदम है। उसके बिना, सफलता की संभावना न के बराबर है।

यह सर्वथा संभव है कि राजनीतिक वर्ग के वे सदस्य, जिन्हें निरंकुश भ्रष्टाचार, अत्यंत विलासितापूर्ण जीवन-शैली तथा अपराधियों तथा ठगों के संसर्ग में रहने की आदत हो गई है, यह चाहें कि वर्तमान व्यवस्था बनी रहे भले ही जनता तथा देश को इसका परिणाम कुछ भी भुगतना पड़े। आशा की जानी चाहिए कि ऐसे लोग सफल नहीं हो सकेंगे तथा राजनीतिक वर्ग के अन्य व्यक्ति जो अब भी ईमानदारी का जीवन बिताते हैं, जनसाधारण के साथ मिलकर, यथार्थपरता, विवेक तथा सत्यनिष्ठा के पक्ष में आवाज़ उठाएंगे।

एक आशंका और भी है। हो सकता है कि मंत्रियों, संसत्सदस्यों एवं विधायकों को अधिक वेतन देने के प्रस्ताव का जनसाधारण में उपेक्षापूर्ण उपहास हो। जनसामान्य की नज़र में राजनीतिज्ञों के प्रति (और, वास्तव में नौकरशाहों के प्रति भी) तनिक-सी भी सम्मान भावना नहीं है। वे अर्थात् जनता यह मानने को बिल्कुल

तैयार नहीं होगी कि अधिक वेतन मिलने पर सत्तासीन लोग भ्रष्टाचार को त्याग देंगे तथा सत्यनिष्ठा के आचरण को अपना लेंगे। जनता की नज़र में उक्त प्रस्ताव का अर्थ होगा 'बुरे पैसे के पीछे अच्छा पैसा लुटा देना'। परन्तु यह एक निर्विवाद सत्य है कि राजनीतिक वर्ग का वर्तमान पारिश्रमिक इतना कम है जिसके साथ संतों सरीखे ब्रह्मचारियों या ब्रह्मचारिणियों को छोड़कर, उनमें से एक भी अपने परिवारों का और अपना बुनियादी खर्च भी चला नहीं सकता। परन्तु बात को स्पष्ट करने और उस पर बल देने के लिए यह एक बार फिर से कहना ज़रूरी है कि उच्च स्तरीय समिति द्वारा निर्धारित पर्याप्त वेतन दिए जाने का हमारा सुझाव अभिन्न रूप से इस प्रस्ताव के साथ जुड़ा हुआ है कि राजनीतिक वर्ग पर सतर्कता की कड़ी नज़र रक्खी जाए और जो इसके बाद भी भ्रष्ट आचरण अपनाते हैं उनको तदनुसार शीघ्र और सख़्त दंड दिए जाने की व्यवस्था हो। एक के बिना दूसरे का कोई प्रभाव नहीं होगा। जहां सत्यनिष्ठा के लिए केवल ऊंचे वेतन पर भरोसा करना व्यवहारसंगत नहीं है, वहीं यह भी मानना कि सतर्कता और सख़्त दंड अपने आप में ईमानदारी को दूर करने के लिए पर्याप्त हैं, विवेकसम्मत नहीं है। वर्तमान स्थिति निस्संदेह असह्य है। एक सच्चे प्रजातंत्र के रूप में जीवित रहने के लिए देश को एक ईमानदार राजनीतिक वर्ग की आवश्यकता है और वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए उचित उपाय करना अनिवार्य है। समस्या का समाधान न तो दम्भ से हो सकता है न अव्यावहारिक दृष्टिकोण से। यह तो दूसरे देशों के यथार्थ अनुभवों के आधार पर ही संभव है। इस विषय पर प्रेस से समर्थन देने की अपील करना उचित होगा। इस संवेदनशील परन्तु महत्वपूर्ण विषय पर अनुकूल जनसम्मति तैयार करने में प्रेस बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

अंत्यसंकेत

1. हैन फ़ूक क्वांग, वारन फर्नान्डिस और सुमिको तान, *ली क्वान यू - द मैन एंड हिज़ आइडियाज़*, टाइम्स एडिशन्स प्राइवेट लि., सिंगापुर, 1998, पृष्ठ 380।

अध्याय 10

भारतीय प्रशासनिक सेवा - भारत का फौलादी ढांचा - भ्रष्टाचार और पतन तथा उसके पुनरुत्थान के संभव उपाय

अंग्रेज़ शासकों द्वारा स्थापित जिस भारतीय सिविल सर्विस (आइसीएस) ने लगभग 100 वर्षों तक भारतीय प्रशासन चलाया था, भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के तुरन्त बाद उसकी उत्तराधिकारिणी के रूप में भारतीय प्रशासनिक सेवा (आइएएस) की स्थापना हुई थी। आइसीएस की तरह ही आइएएस भी एक योग्यतातंत्र है। इसमें उत्कृष्ट योग्यता से सम्पन्न ऐसे पुरुष और स्त्रियां समाविष्ट हैं जिनका चयन एक स्वतंत्र संस्था - संघ लोक सेवा आयोग - द्वारा आयोजित एक खुली, अखिल भारतीय प्रतिस्पर्द्धात्मक परीक्षा के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार इस में सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक क्षमता से सम्पन्न कुछ लोग भर्ती किए जाते हैं। ये नवनियुक्त अधिकारी अपने सेवाकाल का आरंभ ज़िलास्तरों पर करते हैं जहां उन्हें जनसाधारण के निकट सम्पर्क में आने और उनकी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को बारीकी से समझने का अवसर मिलता है। उनका यह कर्तव्य है कि वे निष्पक्षतापूर्वक काम करें तथा उपयुक्त कानूनों, नियमों और विनियमों तथा सत्तास्थित सरकार की नीतियों के अनुरूप समस्याओं का समाधान करें। जैसे जैसे वे प्रशासनिक सोपानों पर क्रमशः ऊपर चढ़ते हैं, वे मंत्रियों के साथ काम करना आरंभ करते तथा नीतियां निर्धारित करने में उनका सहयोग करते हैं। मंत्रियों द्वारा किए गए निर्णयों को क्रियान्वित करना भी उनका उत्तरदायित्व है। एक प्रजातांत्रिक सरकार के अंतर्गत सार्वजनिक प्रशासन चलाने की कला के योग्य और अनुभवी विशेषज्ञ होने के नाते, आइएएस के सदस्य शासक वर्ग - मंत्रियों - के आवश्यक तथा अप्रतिस्थाप्य पूरक हैं। इस प्रकार आइएएस, जिसे भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का 'फ़ौलादी ढांचा' कहना उचित ही है, राष्ट्रीय प्रशासनतंत्र की धुरी है। इतना ही नहीं, मंत्रियों के साथ-साथ आइएएस सदस्य आज भी एक अरब की जनसंख्या वाले एक ऐसे देश - भारत - की एकता की अवधारणा एवं यथार्थ को सुदृढ़ करने की भूमिका निभा रहे हैं, जो भाषा, जाति, पंथ, रीति-रिवाज, संस्कृति, समुदाय एवं सम्प्रदायों की दृष्टि से अनुपम विविधता लिए हुए है।

स्पष्ट है कि आइएएस भारत के प्रजातंत्र, कानून के शासन तथा निष्पक्ष सार्वजनिक प्रशासन के लिए उतनी ही अनिवार्य है जितनी कि पाश्चात्य देशों के सुस्थापित एवं सुसंचालित प्रजातंत्रों में उनकी प्रतिरूपिणी सेवाएं। यही कारण है कि संविधान में प्रतिष्ठापित सिद्धान्तों के अनुरूप एक अच्छी शासन व्यवस्था को चलाने के लिए आइएएस में सत्यनिष्ठा, कार्यकुशलता एवं राजनीतिक निष्पक्षता के गुणों का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अब मैं अगस्त 1947 की ओर, जब भारत स्वाधीन हुआ था, पीछे मुड़ कर देखना चाहूंगा ताकि यह बता सकूं कि तब से अब तक आइएएस का विकास कैसे हुआ है और पिछले तीन दशकों में इसने भ्रष्टाचारमुक्त रहने की अपनी ख्याति को क्यों खो दिया है। स्वाधीनता से पूर्व आइसीएस ने अपने लिए सत्यनिष्ठा और कार्यकुशलता की अजेय ख्याति अर्जित कर रखी थी। आशा यही थी कि आइएएस इन्हीं गुणों को अर्जित और प्रदर्शित करेगी। स्वाधीनता के पश्चात् जिन आइसीएस सदस्यों ने भारत सरकार की सेवा में बने रहने के विकल्प को स्वीकार किया, उन्हें केन्द्र तथा प्रान्तों (जैसा कि उस समय प्रदेशों को कहा जाता था) की सरकारों में अत्यंत महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया गया। केन्द्रीय सरकार के कैबिनेट सचिव तथा लगभग सभी सचिव, प्रान्तीय सरकारों के मुख्य सचिव एवं लगभग सभी सचिव आइसीएस के सदस्य ही थे। कुछ अपवादों को छोड़ कर, इन अधिकारियों के कार्य, आचरण एवं सत्यनिष्ठा का स्तर सर्वोत्तम कोटि का था। ये आइसीएस अधिकारी तथा नवनियुक्त आइएएस अधिकारी एक मिले-जुले संवर्ग के अनिवार्य सदस्य बन गए। प्रत्येक प्रदेश के लिए इस प्रकार का एक संवर्ग था। अपने आरंभिक, 'कार्यस्थल पर प्रशिक्षण' के दौरान सभी आइएएस परिवीक्षार्थियों को ज़िलों के अनुभवी मजिस्ट्रेटों और कलेक्टरों के अधीन नियुक्त किया जाता था। ये मजिस्ट्रेट और कलेक्टर, स्वयं उच्चतम गुणों से सम्पन्न व्यक्ति होते थे। इस प्रकार इन आइएएस अधिकारियों की दीक्षा सर्वोत्कृष्ट ढंग की होती थी। मैं भी उन्हीं में से एक था और चिरकृतज्ञता की भावना के साथ स्मरण करता हूं ज़िला कलेक्टर हरपाल सिंह, वी.सी. शुक्ल और वीरेन्द्र वीर सिंह को जिन्होंने ज़िला प्रशासन की विभिन्न शाखाओं में मुझे अत्यंत सावधानी और स्नेह से प्रशिक्षण दिया था। वे सम्पूर्ण सत्यनिष्ठासम्पन्न व्यक्ति थे तथा सामान्य जनता के प्रति मानवीय करुणा की भावना से ओतप्रोत थे। वे अत्यंत परिश्रमी थे तथा अपने कर्तव्य का निष्पक्ष रूप एवं शालीनता के साथ पालन करते थे। वे तथा उन्हीं के समकक्ष अन्य ज़िलाधिकारी नए आइएएस परिवीक्षार्थियों के लिए अत्युत्तम अनुकरणीय आदर्शों का उदाहरण प्रस्तुत करते थे।

अगले बीस वर्षों - 1949 से 1969 - के दौरान, आइएएस अधिकारी केन्द्र और राज्यों के सचिवालयों में क्रमशः वरिष्ठ पदों पर पहुंचते रहे और आइसीएस

अधिकारियों के साथ-साथ काम करते रहे। वे सब एक समान आचार संहिता का पालन करते थे। इस अवधि में मैंने अधिकतर समय केन्द्र सरकार के अधीन काम किया और अपनी निजी जानकारी के आधार पर यह कह सकता हूं कि 1969 तक, आइसीएस तथा आइएएस के अधिकारियों की छवि, उनकी सत्यनिष्ठा तथा कर्तव्यपरायणता की दृष्टि से पूरी तरह बेदाग़ थी और वे सब देश की सरकार के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा का भाव रखते थे। इस प्रकार नए आइएएस अधिकारी क्रमशः भारतीय प्रशासन के फ़ौलादी ढांचे में दीक्षित हो रहे थे तथा आइसीएस के विख्यात अधिकारियों के योग्य उत्तराधिकारी प्रमाणित हो रहे थे। फिर राजनीतिक क्षेत्र में एक हिला कर रख देने वाली घटना हुई जिसने सरकारी सेवा के मनोबल को बुरी तरह गिराने का काम किया।

1969 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो स्वाधीनता के बाद से ही केन्द्र में सत्तारूढ़ राजनीतिक पार्टी रही थी, विभाजित हो गई और इसका एक बड़ा भाग इंदिरा गांधी के नियंत्रण और निर्देशन में काम करने लगा। प्रधानमंत्री के रूप में उनकी कार्यशैली में भी परिवर्तन आया। वे इस बात को पूरी तरह सुनिश्चित करना चाहती थीं कि राजनीतिक पार्टी तथा सरकारी तंत्र, दोनों पर उनका पूरा आधिपत्य है। उनके प्रति निजी तथा निःसंदिग्ध वफ़ादारी ही कांग्रेस पार्टी और नौकरशाही के कार्यकर्ताओं के भाग्य-निर्णय की कसौटी बन गई। सरकारी सेवा के इतिहास में यह एक निर्णायक मोड़ था क्योंकि शासक सरकार के किसी भी सदस्य के प्रति, यहां तक कि प्रधानमंत्री के प्रति भी, स्थायी सरकारी सेवकों अथवा उनके किसी समूह की निजी वफ़ादारी की अवधारणा उन सुसंस्थापित सिद्धांतों का उल्लंघन थी जो स्थायी सेवा के संचालन का नियमन करते हैं।

संसदीय प्रजातंत्रों में, राजनीतिक स्तर पर जहां एक निर्वाचित सरकार को प्रायः 3 से 5 वर्ष तक की सीमित अवधि के लिए ही जनादेश प्राप्त होता है, इस अवधि के पश्चात् आम चुनाव होते हैं और उनके परिणामस्वरूप वही राजनीतिक दल या कोई अन्य राजनीतिक दल नई सरकार बनाता है। ऐसी स्थिति में एक ऐसे स्थायी तंत्र का होना आवश्यक है जो देश के संविधान और क़ानून के अनुकूल दैनन्दिन प्रशासन को चलाता रहे। विश्व के लगभग सभी सुसंस्थापित प्रजातांत्रिक देशों में यह तंत्र वहां की स्थायी सरकारी सेवा है जिनमें ऐसे लोग समाविष्ट होते हैं जिनकी नियुक्ति देशव्यापी प्रतिस्पर्द्धात्मक परीक्षा के द्वारा, योग्यता के आधार पर की जाती है और जिन्हें सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा, वस्तुपरायणता, निष्पक्षता तथा राजनीतिक तटस्थता के साथ काम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके आचरण के मामले में इसका नियमन सिविल सेवा संहिता द्वारा होता है जिसके विधि निषेधात्मक सिद्धान्त तत्कालीन सरकार द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित किए जाते हैं।

आम चुनावों में विभिन्न राजनीतिक दल अपनी-अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के साथ चुनाव में भाग लेते हैं और जीतने वाला दल देश की सरकार बनाता है। यह दल नीतियों पर परामर्श लेने तथा अपने कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए स्थायी सरकारी सेवा का उपयोग करता है क्योंकि उसे राजनीतिक रूप से तटस्थ, वस्तुपरक एवं निष्पक्ष नौकरशाही की वफ़ादारी पर भरोसा होता है। सभी राजनीतिक दलों की यह समान इच्छा होती है कि स्थायी सरकारी सेवा किसी राजनीतिक दल या समूह के पक्ष में न हो, न ही स्थायी सरकारी सेवा के सदस्य किसी विशेष राजनीतिक नेता के प्रति निष्ठावान् हों। संक्षेप में, नौकरशाही से अपेक्षा की जाती है कि वह सरकार बनाने वाले दल की राजनीतिक विचारधारा से निर्द्वन्द्व रहते हुए, एक विश्वसनीय, कुशल और ईमानदार उपकरण या साधन के रूप में नीतिगत विषयों पर वस्तुपरक सम्मति दे और कार्यक्रमों को पूरी निष्ठा से क्रियान्वित करे।

सुप्रशासित प्रजातांत्रिक राज्यों में मंत्रियों और सरकारी सेवकों के संबंधों का आधार किसी व्यक्ति विशेष के प्रति निजी वफ़ादारी न होकर एक निर्वैयक्तिक आचार संहिता होती है जिसके अंतर्गत उनके कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को परिभाषित किया जाता है।

इसलिए स्पष्टतः, एक प्रजातांत्रिक देश के शासनाध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि वह सुनिश्चित करे कि स्थायी सरकारी सेवा को, जोकि सरकार के मंत्रियों को नीतिगत विषयों पर परामर्श देने के सिलसिले में उनके साथ विचार-विनिमय की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, राजनीतिक निष्पक्षता के साथ न केवल अपना काम करने दिया जाए बल्कि ऐसा करने के लिए उसे उत्साहित भी किया जाए और स्थायी सचिवों से आग्रह किया जाए तथा यह उनके लिए आवश्यक हो कि वे बिना भय अथवा पक्षपात के वस्तुनिष्ठता और ईमानदारी के साथ अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करें। निस्संदेह यह भली-भांति विदित है कि अन्तिम निर्णय तो अंततः मंत्री को ही करना होता है और स्थायी सचिव का यह कर्तव्य होता है कि वह उसे पूरी निष्ठा के साथ क्रियान्वित करे। इस उद्देश्य से, मंत्रियों और सरकारी सेवकों के लिए आवश्यक आचरण संहिताएं प्रख्यापित की गई हैं।

भारत में, प्रथम दो प्रधानमंत्रियों ने उपरोक्त आचरण का पालन किया, उसे प्रोत्साहन दिया। परन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं[1], तीसरी प्रधानमंत्री, इंदिरा गांधी के विचार अपने तथा नौकरशाहों के बीच के संबंधों को लेकर, अलग थे। यह भली-भांति विदित था कि उच्च पदों पर स्थित सरकारी अधिकारियों से उनकी अपेक्षा यह थी कि वे व्यक्तिगत रूप से उनके प्रति वफ़ादार हों और उत्साह एवं प्रतिबद्धता के साथ उनके विचारों और कार्यक्रमों को लागू करें। यह राजनीतिक

रूप से तटस्थ सरकारी सेवा की उस अवधारणा के विपरीत था जिसकी व्याख्या संविधान सभा को 15 अक्तूबर, 1948 को लिखे अपने एक पत्र में उप-प्रधानमंत्री वल्लभ भाई पटेल ने की थी। उस पत्र का एक अंश नीचे उद्धृत है :

सरकारी सेवा के लिए दल से ऊपर होना अनिवार्य है और हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि भर्ती अथवा अनुशासन और नियंत्रण के मामलों में राजनीतिक आग्रहों को यदि पूरी तरह अलग न भी किया जा सके तो उन्हें न्यूनतम तो अवश्य रखा जाए।[2]

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी अपेक्षा करती थीं कि उनके आदेशों का पालन बिना किसी प्रश्न को उठाए किया जाए। और ऐसा ही हुआ भी। आपात्काल में संजय गांधी के आदेशों का पालन भी ऐसे ही होता था। कोई भी उनके औचित्य अथवा वैधता पर अंगुली नहीं उठा सकता था।

सरकारी सेवा के सदस्यों के सामने इस सब के कारण एक कठिन और अभूतपूर्व स्थिति आ उपस्थित हुई। वे क्या करते? क्या सरकारी कर्मचारी, प्रत्येक स्थिति में, अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहते या फिर 'प्रतिबद्धता' को स्वीकार कर लेते, स्वयं को नए सांचे में ढाल लेते और इस प्रकार बढ़िया-बढ़िया पदों के रूप में प्राप्त सफलता के विशाल राजमार्ग पर चल पड़ते?

आइसीएस के वे सदस्य जो अभी भी सेवा में थे, क्या करते? और आइएएस के सदस्य, जिनकी संख्या नई दिल्ली की सरकार में अब तक काफ़ी बढ़ चुकी थी, वे क्या करते? सरकारी सेवा के प्रमुख अधिकारी - कैबिनेट सचिव - के लिए क्या करना उचित था? क्या उनमें से कोई एक भी अपना विरोध जताने के लिए प्रधानमंत्री के सामने खड़ा हुआ? क्या किसी एक ने भी निजी तौर पर अथवा एक लिखित नोट के माध्यम से प्रधानमंत्री को यह स्पष्ट किया कि सरकारी कर्मचारियों की 'प्रतिबद्धता' से संबंधित उनके आदेश और व्यक्तिगत वफ़ादारी के संबंध में उनकी सुविदित इच्छाएं, राजनीतिक तटस्थता, वस्तुपरकता तथा निष्पक्षता के उन स्तंभों को ध्वस्त कर देंगी जिन पर स्थायी सरकारी सेवा की इमारत खड़ी है? क्या किसी ने उनको बताया कि जहां सरकारी सेवा वफ़ादारी के साथ उनकी सरकार के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करेगी, वहां उसके लिए यह उचित नहीं होगा कि वह उनके विचारों का समर्थन करने वाली प्रतिबद्ध प्रचारक बन जाए? क्या किसी ने उनसे कहा कि प्रजातांत्रिक देशों में, सरकारें समय-समय पर बदलती रहती हैं और प्रत्येक का अपना-अपना भिन्न कार्यक्रम होता है, और इस प्रकार उनका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि सरकारी कर्मचारियों का व्यक्तिगत रूप से किसी एक पार्टी के कार्यक्रम के प्रति प्रतिबद्ध होना - जब कि बाद में किसी दूसरी पार्टी के सत्ता में आने की संभावना हो - असंभव भी है और

अनैतिक भी? क्या यह ठीक होगा कि जब-जब एक नई सरकार सत्ता में आए तब-तब अधिकारियों से अपना रंग बदलने की अपेक्षा की जाए?

शायद कोई यह कहे कि स्थायी सरकारी सेवकों की यह भूमिका नहीं है कि वे देश के प्रधानमंत्री से अपना विरोध प्रकट करें। उत्तर में *द टाइम्स*, लंदन के सोमवार, दिनांक 11 मई 1998 के संस्करण की निम्नलिखित रिपोर्ट को उद्धृत करना उपयोगी होगा :

डीटीआइ का आग्रह : हमारे यहां रॉबिन्सन को मत भेजो

निकोलस वॉट, राजनीतिक संवाददाता

व्हाइटहॉल के सबसे वरिष्ठ अधिकारियों में से एक ने डाउनिंग स्ट्रीट को यह सलाह दी है कि ज्यॉफ्री रॉबिन्सन को व्यापार और उद्योग विभाग (डीटीआइ) में स्थानांतरित न किया जाए क्योंकि उनका व्यापारिक अतीत विवादास्पद रहा है।

डीटीआइ के स्थायी सचिव, माइकल स्कॉलर ने यह स्पष्ट किया है कि वे करोड़पति महावेतनदाता को अपने विभाग के 'नज़दीक कहीं' देखना नहीं चाहते।

मिस्टर स्कॉलर के दृष्टिकोण को व्हाइट हॉल के एक सूत्र ने इन संक्षिप्त शब्दों में स्पष्ट किया : 'ज्यॉफ्री रॉबिन्सन के व्यापारिक हितों की एक लम्बी सूची रही है। कोई नहीं जानता कि कल को उनके आने के साथ और क्या-क्या आ जाएगा।'

यह रिपोर्ट मिलने के बाद कि प्रधानमंत्री मि. रॉबिन्सन को आगामी फेरबदल में राजकोष से डीटीआई में स्थानांतरित कर रहे हैं, मि. स्कॉलर ने, जो कि बैरोनेस थैचर के निजी सचिव रह चुके हैं, कैबिनेट सचिव सर रिचर्ड विल्सन से सम्पर्क किया।

एक स्थायी सचिव द्वारा इस प्रकार का हस्तक्षेप लगभग अश्रुतपूर्व है क्योंकि फेरबदल का अधिकार पूरी तरह प्रधानमंत्री का है। इस कदम से मिस्टर रॉबिन्सन के लिए परेशानी पैदा होगी क्योंकि इस से यह आभास होता है कि ब्रिटिश उद्योग का संचालन करने वाले विभाग का सबसे वरिष्ठ सरकारी सेवक, उनके व्यापार संबंधी दृष्टिकोण को लेकर सशंकित है।

सरकारी सूत्रों ने संकेत दिया है कि मि. ब्लेयर उक्त स्थानांतरण पर इसलिए विचार कर रहे थे ताकि उस विवाद के और बढ़ने की स्थिति से बचा जा सके जो पिछले वर्ष यह पता चलने पर पैदा हुआ था कि मि. रॉबिन्सन 1.2 करोड़ पाउंड के एक अपतटीय न्यास के विवेकाधीनस्थ हिताधिकारी हैं।

इन समाचारों से परेशान होकर मि. स्कॉलर ने अपना संदेश डाउनिंग स्ट्रीट को भेजा। स्रोत का कहना है, 'स्थायी सचिव ने स्पष्ट कर दिया है कि वे ज्यॉफ़्री को डीटीआइ के आसपास भी नहीं देखना चाहते। उन्होंने अपने सहयोगियों को बताया है कि डीटीआइ में होने से मि. रॉबिन्सन की कलई बुरी तरह खुल जाएगी।'

मि. रॉबिन्सन के सहयोगियों के लिए मि. स्कॉलर के इस हस्तक्षेप को खारिज करना कठिन होगा क्योंकि व्हाइट हॉल में अपनी 28 वर्ष की शानदार सरकारी सेवा में उन्होंने असीम सम्मान अर्जित किया है। 56 वर्षीय मि. स्कॉलर ने कुछ समय तक हार्वर्ड तथा केम्ब्रिज में शिक्षक के रूप में काम करने के बाद 1969 में राजकोष में सेवाभार ग्रहण किया था। उन्होंने तीन सरकारी विभागों में काम किया है और 1970 के परवर्ती भाग में अस्थायी रूप से बार्कलेज़ बैंक इंटरनैशनल में काम करते हुए व्यापार का अनुभव प्राप्त किया है।

परन्तु मि. स्कॉलर के हस्तक्षेप का प्रकटीकरण हो जाने के पश्चात् उन्हें, आने वाले सप्ताह में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है क्योंकि मि. रॉबिन्सन के शक्तिशाली मित्र, जिनमें वित्तमंत्री प्रमुख हैं, सरकार में हैं।

समझा जाता है कि मि. स्कॉलर ने, राजकोष में मि. रॉबिन्सन के काम की, ख़ासतौर पर बिजली उत्पादन करने वाली कंपनियों तथा कोयला उद्योग के बीच सौदा कराने के मामले में, जिसमें डीटीआइ का निकट सहयोग अपेक्षित था, प्रशंसा करके अपनी चेतावनी के प्रभाव को हल्का किया है।

स्थायी सचिव ने यह भी स्पष्ट किया है कि उन्होंने बीपी के भूतपूर्व अध्यक्ष हाइबरी के लॉर्ड साइमन की, जिन्हें खुद पिछली गर्मियों में शेयरों के सौदे में उलझनों का सामना करना पड़ा था, अतिरंजित प्रशंसा कर दी है।

व्हाइट हॉल के सूत्र ने कहा है : 'डीटीआइ में लॉर्ड साइमन के प्रति बहुत सम्मान की भावना है। पर वे ज्यॉफ़्री रॉबिन्सन से बहुत भिन्न हैं। लॉर्ड साइमन विश्वविद्यालय से बीपी में आए थे और अपने परिश्रम से एक कंपनी के उच्चतम पद पर पहुंचे थे।'

कहा जाता है कि मि. ब्लेयर अपने पहले मंत्रिमंडलीय परिवर्तन के दौरान मि. रॉबिन्सन को स्थानांतरित करने का निश्चय कर चुके हैं हालांकि वित्तमंत्री उनके राजकोष में बने रहने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग कर रहे हैं। यदि उन्हें डीटीआइ में स्थानांतरित नहीं किया जाता तो यह सुझाव दिया जा रहा है कि परिवहन मंत्री के पद को कैबिनेट से अलग करके उन्हें गेविंग स्ट्रैंग के स्थान पर परिवहन मंत्री बना दिया जाए। अभी कुछ समय पूर्व ही मि. रॉबिन्सन ने जॉन प्रेस्कॉट के साथ मिल कर 'लंदन अंडरग्राउंड' के लिए 7 अरब पाउंड

की राशि जुटाने के लिए निजी क्षेत्र के सहयोग के साथ काम करने की एक योजना तैयार की है।

यह उल्लेखनीय है कि अन्ततः ज्यॉफ़्री रॉबिन्सन को व्यापार और उद्योग विभाग नहीं मिला। उनकी नियुक्ति किसी अन्य विभाग में हुई। एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण उन्होंने 1998 में मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया।

संभवतः यह कहना किसी सीमा तक न्यायसंगत हो सकता है कि सरकारी सेवकों के लिए खींची गई *लक्ष्मण रेखा* का माइकल स्कॉलर ने उल्लंघन किया पर यह साफ़तौर पर उन्होंने राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए इस विश्वास के साथ किया कि प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर उन्हें ग़लत नहीं समझेंगे।[7] इस कहानी से यह शिक्षा मिलती है कि जब कोई इस प्रकार की विचलित करने वाली स्थिति पैदा हो जाए जिससे राज्य की एक सुसंस्थापित संस्था की सत्यनिष्ठा पर आंच आने की आशंका हो, उस समय सर्वोच्च पद पर बैठे व्यक्ति को इसे अपने कर्तव्य और सम्मान का प्रश्न समझते हुए उस अपूरणीय क्षति को रोकने के लिए कदम उठाने चाहिए। 1970 के दशक के आरंभ में, शासनाध्यक्ष तथा नौकरशाही के उच्चतम पदों पर आसीन स्थायी सरकारी कर्मचारियों के बीच काम के संबंधों की स्थिति अत्यंत विक्षुब्ध करने वाली बन चुकी थी और इसके भावी परिणाम देश के न्यायसम्मत प्रशासन के लिए ख़तरनाक सिद्ध हो सकते थे। इसमें सन्देह नहीं कि उस नई परिस्थिति से भारत सरकार के तत्कालीन सचिव (स्थायी सचिव) और कैबिनेट सचिव बहुत चिंतित रहे होंगे। पर उस अत्यंत उत्तेजनापूर्ण वातावरण में इसका संयत से संयत विरोध भी प्रधानमंत्री के गहरे क्रोध का कारण बन सकता था और बात और ज़्यादा बिगड़ सकती थी। उस समय यदि कोई वरिष्ठ अधिकारी इस पर आपत्ति प्रकट करता तो उसे न केवल अपनी नौकरी से अपितु अपनी स्वतंत्रता से भी हाथ धोना पड़ सकता था। इन परिस्थितियों में बहादुरी से ज़्यादा विवेक से काम लेना ही मुनासिब था। प्रत्येक वरिष्ठ अधिकारी के लिए यही उचित था कि वह अपना कामकाज करने के ढंग के बारे में स्वयं निर्णय करे। कुछ लोगों ने प्रतिबद्धता का निर्णय किया और इस प्रकार नई व्यवस्था में सफलतापूर्वक बढ़ते रहे। जिन अन्य लोगों ने लीक पर चलने से इंकार कर दिया, वे पिछड़ गए। कुल मिला कर, इसका परिणाम यह हुआ कि नौकरशाही की प्रतिष्ठा और सामाजिक सम्मान को गहरा धक्का लगा।

'प्रतिबद्ध सरकारी सेवा' की अवधारणा को, तब से, कुछ राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने उत्साहपूर्वक अपना कर क्रियान्वित कर दिया है। उन में से प्रत्येक, अब इस बात के लिए आग्रहशील है कि उसके अधीनस्थ आइएएस अधिकारी पूर्णतया उसके आज्ञापालक और वफ़ादार हों। पर इस मामले को उलझाने वाली समस्या यह है

कि ये मुख्यमंत्री या तो चुनावों के परिणामस्वरूप या दलबदली के कारण समय-समय पर बदलते रहते हैं। इन परिस्थितियों में प्रत्येक मुख्यमंत्री आइएएस अधिकारियों के एक गिरोह की वफ़ादारी प्राप्त कर लेता है। सत्ता प्राप्त करते ही, संबंधित मुख्यमंत्री अपने वफ़ादार अधिकारियों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर देता है। जब यह मुख्यमंत्री बदल जाता है, तो नया मुख्यमंत्री अपने पूर्ववर्ती मुख्यमंत्री के कृपापात्र अधिकारियों का सामूहिक स्थानांतरण करके उनके स्थान पर अपने चहेते गिरोह के लोगों की नियुक्ति कर देता है। यह कोई काल्पनिक दृश्य नहीं है। इस प्रकार का नाटक बार-बार, खुले आम, बिना झिझक होता है। जाति इस प्रकार की गुटबन्दी तथा नियुक्तियों और स्थानांतरणों की एक बड़ी कसौटी बन गई है। मलाईदार नियुक्तियां उन लोगों को मिलती हैं जो मुख्यमंत्री, उसके खुशामदियों अथवा उन इलाकों के भारी भरकम राजनीतिक आकाओं को खुश रखने का विश्वास दिलाते हैं।

9 मार्च 1999 के *हिन्दुस्तान टाइम्स* के नई दिल्ली संस्करण में प्रकाशित निम्नलिखित रिपोर्ट से पता चलता है कि आइएएस तथा आइपीएस अधिकारियों को स्थानांतरित करने के अधिकार का, असुविधाजनक अधिकारियों को परेशान करने के लिए क़िस प्रकार व्यापक रूप से दुरुपयोग किया जाता है :

उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह सरकार द्वारा बार-बार किए जाने वाले तबादलों की बदौलत एक जिला मजिस्ट्रेट और कमिश्नर का औसत कार्यकाल कम होकर 10 महीने का रह गया है।

तबादलों का मौसम आ रहा है और इस कारण राज्य की नौकरशाही में अनिश्चितता व्याप्त है। अधिकारियों के थोड़े कार्यकाल से उनके तबादलों और नियुक्तियों में बढ़ते हुए राजनीतिक हस्तक्षेप का भी पता चलता है।

राज्य सरकार अपने ही दिशानिर्देशों तथा स्थानांतरण नीतियों का निरन्तर उल्लंघन कर रही है। राज्य सरकार द्वारा स्वयं निर्धारित की गई समय-सीमा की प्राधिकारियों द्वारा अवहेलना की जा रही है। सामान्य परिस्थितियों में एक ज़िले अथवा मंडल में अधिकारियों की नियुक्ति कम से कम दो वर्ष के लिए की जानी चाहिए।

कल्याण सिंह सरकार, जिसका यह दावा है कि उसने राज्य में राजनीतिक स्थिरता के युग का आरंभ किया है, अपने अधिकारियों के लिए सामान्य कार्यावधि सुनिश्चित करने में असफल रही है। राज्य सरकार द्वारा स्थानांतरित आइएएस अधिकारियों की संख्या 300 से ऊपर है।

सुश्री मायावती के शासन के प्रथम चार महीनों में 320 से अधिक आइएएस अधिकारियों का तबादला किया गया था। 1996-97 में राष्ट्रपतिशासन के

दौरान 340 से अधिक आइएएस तथा 380 से अधिक आइपीएस अधिकारियों के तबादले किए गये थे।

मुलायम सिंह यादव के मुख्यमंत्रित्व काल में, 1993-95 के बीच स्थानांतरित किए गए आइएएस अधिकारियों की संख्या 321 तथा आइपीएस की 394 थी।

चूंकि ज़िला मजिस्ट्रेट और ज़िला पुलिस प्रमुख एक नेता के राजनीतिक भविष्य को बना या बिगाड़ सकते हैं, जब भी वे अपने अधिकार दृढ़तापूर्वक प्रयोग करने लगते हैं, उन्हें निकाल बाहर किया जाता है।

उपरोक्त रिपोर्ट से साफ़ जाहिर है कि 10 करोड़ से भी अधिक आबादी वाले देश के सबसे बड़े राज्य, उत्तर प्रदेश में ज़िला प्रशासन की स्थिति दयनीय है। यदि ज़िला मजिस्ट्रेटों का थोड़े-थोड़े महीनों के अन्तराल में तबादला होता रहे तो वहां के कामकाज के प्रबंधन में निरन्तरता नहीं रह सकती। हाल ही में उत्तर प्रदेश में ज़िला मजिस्ट्रेट के पद पर रहे कुछ आइएएस अधिकारियों ने स्थानीय राजनीतिक मालिकों के साथ हुई अपनी मुलाकातों का कारुणिक वृत्तान्त दिया है। ये घमंडी नेता जिला मजिस्ट्रेट के घर में बिना किसी सूचना अथवा पूर्व निर्धारित मुलाकात के समय के किसी भी ग़लत-सही समय पर आ धमकते हैं और अपने बताए हुए काम को तुरन्त पूरा करने की आज्ञा देते हैं। जहां तो मजिस्ट्रेट उनके कहे अनुसार काम कर सकता है, वह कर देता है। पर जहां वह नियमों-विनियमों के अन्तर्गत ऐसा नहीं कर सकता उसको सख्त परिणामों की धमकी दी जाती है। आइए, एक उदाहरण लें। यदि एक ज़िला मजिस्ट्रेट, जिस पर ग़रीबों के कल्याण के लिए नियत विकास की धनराशि के उचित उपयोग की ज़िम्मेदारी है, उसके एक अंश को स्थानीय राजनीतिक आक़ाओं के प्रयत्नों के अनुरूप निजी जेबें भरने की सांठ-गांठ में शामिल होने से इंकार कर देता है, तो उसे अशिष्ट ढंग से तुरन्त स्थानांतरित कर दिया जाता है। अब यदि इस प्रकार के एक दो कष्टदायक तबादलों के बाद ज़िला मजिस्ट्रेट हथियार डाल दें और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के साथ मिल जाएं, तो इसमें आश्चर्य कैसा? अत्यंत दुःख की बात यह है कि आइएएस के नवनियुक्त अधिकारियों की, जिनमें से अधिकतर आदर्शवाद और ईमानदार कर्तव्य भावना से भरे होते हैं, अपने सेवाकाल के आरंभिक वर्षों में ज़िलों में नियुक्ति की जाती है। और शुरू में ही वे स्वयं को इस विक्षोभ की स्थिति में पाते हैं। पहले एक तहसील के मजिस्ट्रेट के रूप में तथा कुछ वर्षों की सेवा के बाद ज़िला मजिस्ट्रेट के रूप में स्थानीय राजनीतिक दादाओं के साथ उनका झगड़ा होता है। पर वे बहुत देर तक इनका सामना नहीं कर पाते। जल्दी ही इस कहावत में निहित बुद्धिमत्ता उनकी समझ में आने लगती है कि 'यदि तुम उनसे लड़ नहीं सकते तो उन से हाथ मिला लो'। वे ऐसा ही करते भी हैं और इस प्रकार वे अपने सेवाकाल के

आरंभिक भाग में ही भ्रष्ट हो जाते हैं। पिछले बीस वर्षों में इसी प्रकार से राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के बीच एक बदनाम अन्तर्बंधन स्थापित हो गया है और अब यह भारतीय प्रशासन का एक घिनौना लक्षण बन चुका है।

निरन्तर राजनीतिक हस्तक्षेप और राज्यों में कार्यनियुक्त आइएएस अधिकारियों को परेशान किया जाना ही इस बात के मुख्य कारण हैं कि उन्होंने कई स्थितियों में कानून के अनुसार प्रशासन चलाना छोड़ दिया है। वे मज़बूर होकर अपने राजनीतिक संरक्षकों की ओर से उनके स्थानीय प्रबंधक बन बैठे हैं।

आइएएस के अधःपतन का कारण केवल राजनीतिक परेशानी ही नहीं है। जब राजनीतिक शासकों ने आर्थिक गतिविधियों पर राज्य के नियंत्रण की अवधारणा और परमिट, कोटा, लाइसेंस की प्रणाली को स्थापित किया तो देश की नौकरशाही ने नियमों-विनियमों का एक विस्तृत जाल बुन कर अपनी शक्तियों का अपार विस्तार कर लिया और पूरे प्रशासन तंत्र पर अपनी मुट्ठी कस ली। दिखाने के लिए तो इसका अभिप्राय निजी क्षेत्र का नियंत्रण करना और प्रशासन में ईमानदारी को सुनिश्चित करना था। पर वास्तविक परिणाम बिल्कुल उलटा और विनाशकारी सिद्ध हुआ। काम करने का तरीका और निर्णय करने की प्रक्रिया जनसाधारण की समझ के बाहर हो गई। सरकारी दफ्तरों से पारदर्शिता पूरी तरह से ग़ायब हो गई। नियंत्रण की व्यवस्था का उपयोग राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों ने भ्रष्टाचार के निर्लज्जतापूर्वक आचरण के लिए करना आरंभ कर दिया। विभिन्न भागों और मंत्रालयों द्वारा बड़ी संख्या में इंस्पेक्टर और नियंत्रक भर्ती कर लिए गए और इनमें से प्रत्येक, भ्रष्टाचार का केन्द्र बिन्दु बन गया। निर्णय प्रक्रिया कछुए की चाल चलने लगी और वे सभी लोग, जिन्हें किसी भी काम की मंज़ूरी के लिए किसी सरकारी दफ्तर जाना होता था, मुसीबत में घिर गए। इसका व्यापक परिणाम यह हुआ है कि कम्पनियों के प्रतिनिधि नई दिल्ली में रह कर जल्दी काम करवाने का पैसा देते हैं, विलासितापूर्ण पार्टियां देते हैं, जिनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि सरकारी दफ्तरों में एक मेज़ से दूसरी मेज़ तक फाइलें अपेक्षाकृत तेज़ रफ्तार से आगे बढ़ती रहें।

पर इस सब का सब से गंभीर दुष्प्रभाव आर्थिक विकास की गति पर पड़ा है। व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी और जवाबदेही से बचने के लिए, नौकरशाहों ने सरकारी स्वीकृति के लिए भेजे जाने वाले महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करने के लिए 'ग्रुपों' अथवा 'कमेटियों' का गठन कर लिया है। ये ग्रुप अथवा कमेटियां फुर्सत से, सुविधानुसार मिलती हैं और उन्हें किसी काम को शीघ्रतापूर्वक निपटाने की कोई जल्दी नहीं रहती। और जब एक कमेटी अपनी रिपोर्ट दे भी देती है तब भी संबंधित फ़ाइलें अनगिनत संस्वीकृतियों के लिए घूमती रहती हैं क्योंकि प्रत्येक निर्णय में

परत-दर-परत अनेक अधिकारी शमिल रहते हैं। पिछले वर्षों में इन्हीं कारणों से परियोजनाओं के क्रियान्वयन में गंभीर विलंब होता रहा है और उनके ऊपर आने वाले ख़र्च अनुमानित राशि से कहीं अधिक होते चले गए हैं। नौकरशाही ने इस बात का पक्का प्रबंध कर रखा है कि काम न करने के कारण अथवा निर्णय करने में विलम्ब के कारण होने वाले अरबों रुपयों के नुकसान की न तो कोई लेखा-परीक्षा हो और न ही किसी की जवाबदेही तलब की जाए। यदि देश के कामों के प्रबंधन में अकुशलता का बोलबाला है और यदि भारत के करोड़ों गरीब लोगों तक विकास का लाभ नहीं पहुंच पाता तो इस का दोष बहुत हद तक नौकरशाही के कन्धों पर है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आज लालफीताशाही का बाहुल्य हो गया है; अनगिनत अनावश्यक नियम, विनियम, फ़ॉर्म, प्रश्नावलियां हैं और एक अत्यंत मुटाई हुई नौकरशाही है। इस भद्दी प्रशासनिक स्थिति को पैदा करने में राजनीतिक नेताओं की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रही है। यदि आइएएस एक कुशल और सुव्यवस्थित प्रशासन चाहती तो उसकी स्थापना करना उसकी योग्यता और सामर्थ्य की परिधि में था। सचाई यह है कि उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिए लम्बे-चौड़े नियमों-विनियमों की आदत पड़ गई है। विकास की गति को सुविधाजनक बनाने और तेज़गति प्रदान करने के स्थान पर, वे संवेदनाशून्य होकर इसे अवरुद्ध करते रहे हैं। देश की वर्तमान दुर्गति के लिए अकेले राजनीतिज्ञ ही दोषी नहीं हैं। भारत के प्रशासन को दूषित करने में नौकरशाही का भी उतना ही हाथ है।

चंदन मित्रा के अनुसार, सरकारी सेवाओं का 'फ़ौलादी ढांचा', जिसे भ्रष्टाचार के विरुद्ध सब से शक्तिशाली शस्त्र प्रमाणित होना चाहिए था, वह लगातार भ्रष्टाचार की प्रक्रिया का एक साधन बनता चला गया है।[3]

गोडबोले ने, जो स्वयं एक अवकाश प्राप्त आइएएस अधिकारी और भूतपूर्व गृहसचिव हैं, आइएएस के संबंध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

> आज यह भ्रष्टाचार, खुशामदपरस्ती, धनलोलुपता, सत्ता और पद के दुरुपयोग, कुनबापरस्ती और पक्षपात से भरी पड़ी है। इस सेवा के सदस्य आज इस बात में गर्व का अनुभव करते हैं कि वे इस या उस राजनीतिक दल से, इस या उस राजनीतिक नेता या शासक परिवार से जुड़े हुए हैं। यह सरकारी सेवा के मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है। सरकारी अधिकारियों का अपने राजनीतिक संबंधों, जाति अथवा धर्म की डींग मारते हुए आज की व्यवस्था का अधिकाधिक लाभ उठाना एक आम बात हो गई है। कितने ही वरिष्ठ अधिकारियों की, उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का पालन न करने के लिए कटु आलोचना हुई तथा उन्हें दोषी ठहराया गया है; इससे सरकारी सेवा की छवि

धूसरित हुई है और न्याय के शासन को बनाए रखने के प्रति उनकी निष्ठा पर प्रश्नचिह्न लगे हैं। प्रत्येक अर्थ में, सिविल सेवा अपनी स्थापना के समय के अतिशय उत्साह की अवस्था से बहुत दूर चली आई है।[4]

आइएएस को दूषित करने के लिए शायद इतना पर्याप्त नहीं था क्योंकि 1970 के दशक में एक नई परिस्थिति पैदा हुई जिससे इस सेवा की सत्यनिष्ठा में दरार पड़ गई। यह समस्या थी बढ़ती हुई कीमतों की, जिसके कारण आइएएस अधिकारियों तथा सरकारी सेवकों के अन्य वर्गों की ख़रीदशक्ति लग़ातार घटने लगी। इन परिस्थितियों में उनके लिए अपने परिवारों के सामान्य ख़र्च को पूरा करना भी अत्यंत कठिन हो गया। 1970 में पड़ी इस दरार ने 1980 के दशक में एक बड़े छिद्र का आकार ले लिया और 1990 के दशक का आरंभ होते-होते तो जैसे पूरा बांध ही टूट गया। कारण था वेतन और जीवननिर्वाह की कीमतों के बीच तेज़ी से बढ़ता हुआ अंतर।

मेरे अनुरोध पर, इस असाधारण स्थिति का अध्ययन अनुप्रयुक्त अर्थशास्त्र की राष्ट्रीय परिषद (एनसीएइआर) के प्रधान अर्थशास्त्री आर. वेंकटेशन् ने, एनसीएइआर के ही, डॉ. लवीश भंडारी, वरिष्ठ अर्थशास्त्री, डॉ. मिहिर पाण्डेय, वरिष्ठ सलाहकार, और सुश्री जी. रमानी (जिन्हें इस के बाद हम वेंकटेशन् टीम कहेंगे) के सहयोग से किया था। इस विषय का कृपापूर्वक अध्ययन करने के लिए उन सब के प्रति मैं अपना हार्दिक एवं चिरस्थायी आभार व्यक्त करना चाहूंगा। मैं इसलिए भी उनका आभारी हूं कि उन्होंने मेरे साथ व्यक्तिगत चर्चा के लिए भी इतना समय व्यतीत किया। वेंकटेशन् टीम ने तीन निम्नलिखित ग्राफ़ तैयार किए हैं। इनमें से पहले ग्राफ़ में 1947 से लेकर, लग़ातार ऊपर की ओर बढ़ते हुए अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (एआइसीपीआइ) को दिखाया गया है; दूसरे में, भारत सरकार के सचिव के पारिश्रमिक और एआइसीपीआइ में दिखाई गई आसमान को छूती कीमतों के बीच तेज़ी से बढ़ता अन्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है और तीसरे में भारत सरकार के सचिव तथा एक निजी क्षेत्र के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पारिश्रमिक के बीच बढ़ते हुए अन्तर को दिखाया गया है।

1947 से 1997-98 तक भारत सरकार के सचिव के वेतन की क्रय-शक्ति में हुए गंभीर ह्रास को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए हमें संभवतः उन आंकड़ों के बीच बढ़ते हुए अंतर को देखना होगा जो वर्षानुवर्ष दिए गए या दिए जाने वाले वास्तविक वेतन को दर्शाते हैं और वह वेतन जो उस स्थिति में देय होता जिसमें मुद्रास्फीति के प्रभाव को निरस्त करने के लिए संबंधित एआइसीपीआइ के अनुसार वर्षानुवर्ष समायोजन किया गया होता। यहां इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रकार के समायोजन से वास्तविक कमाई में तनिक-सी भी वृद्धि नहीं

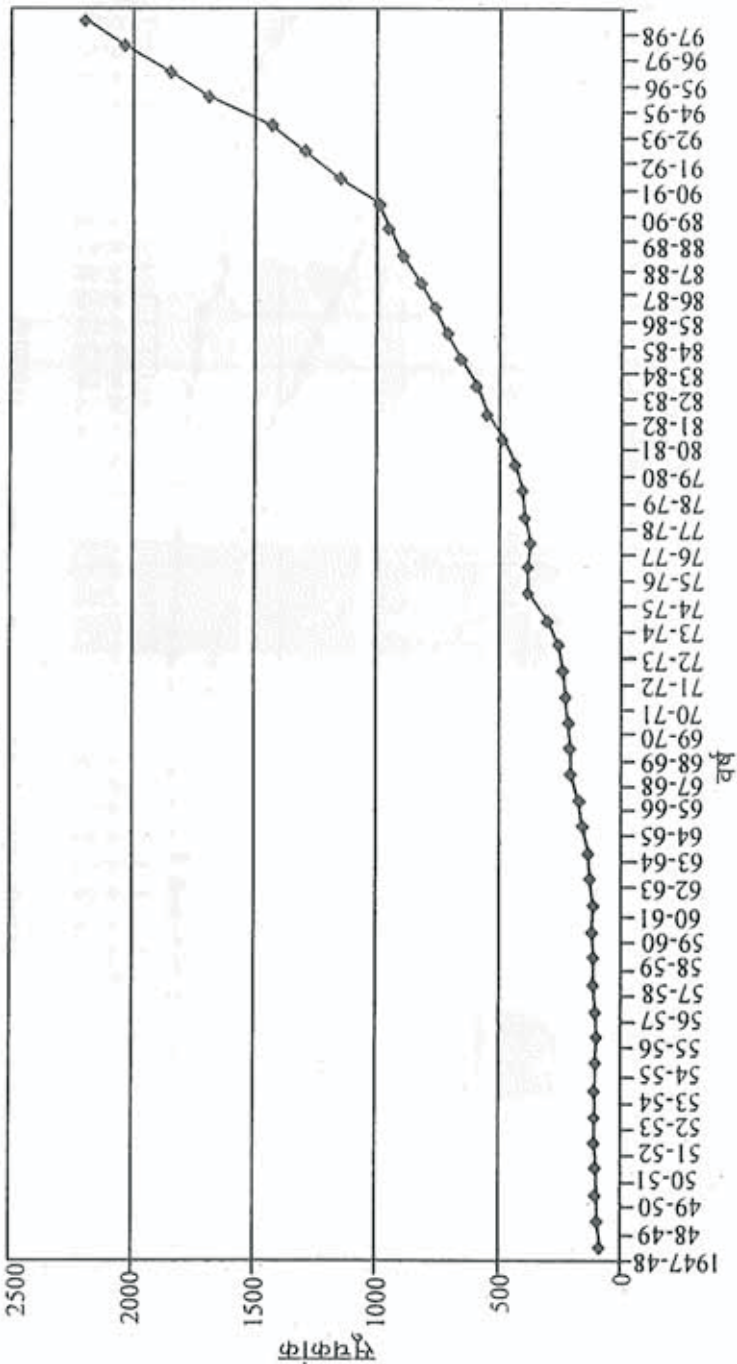

चित्र 10.1 स्वाधीनता के बाद के भारत में मुद्रास्फीति : एक ऐतिहासिक परिदृश्य

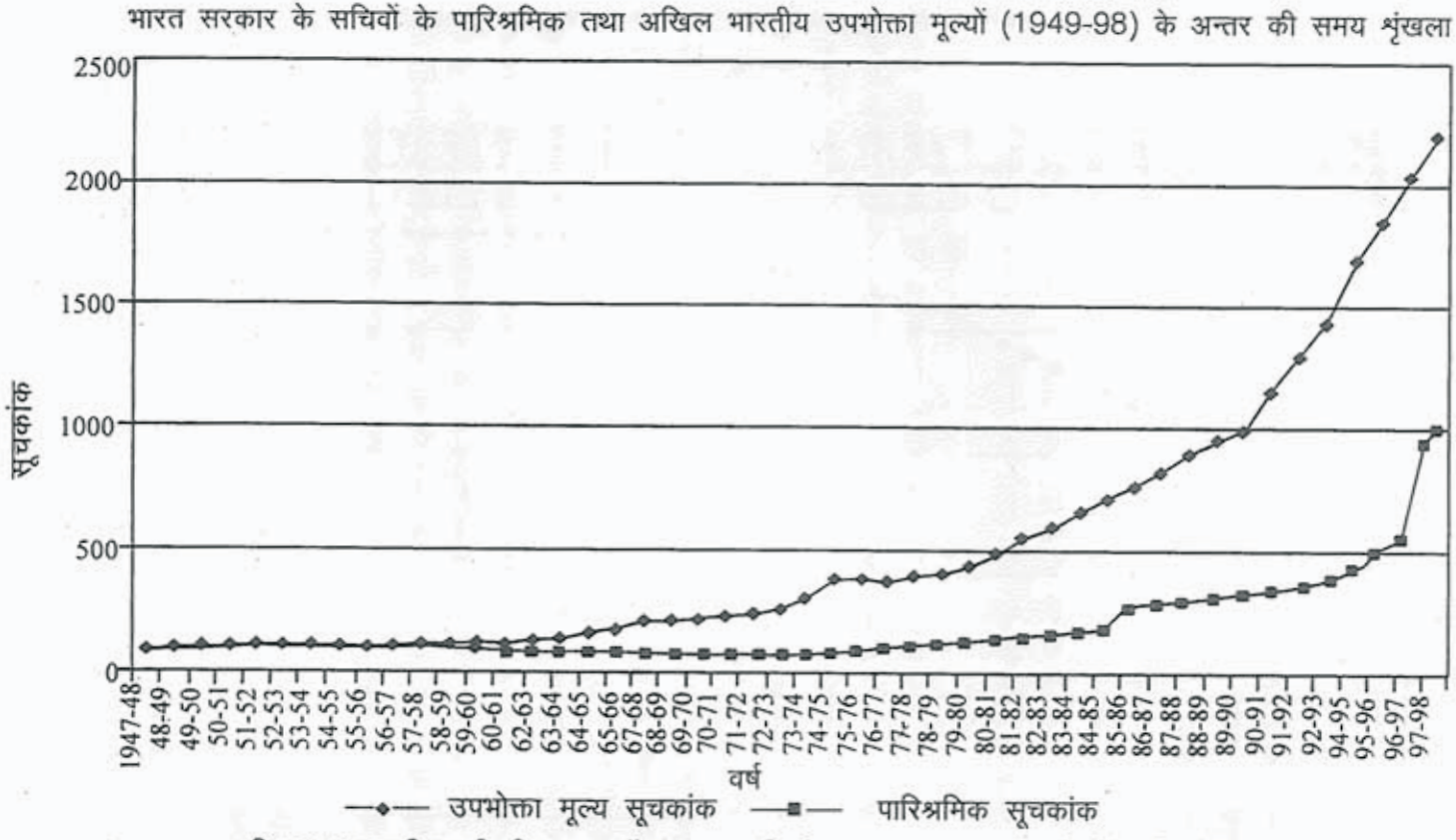

चित्र 10.2 वास्तविक पारिश्रमिक कम क्यों हुए : मूल्य परिवर्तन तथा भारत सरकार के सचिवों के पारिश्रमिक

भारत सरकार के सचिवों के पारिश्रमिक, निजी क्षेत्र के मुख्य कार्यपाल अधिकारियों के पारिश्रमिक तथा अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्यों के सूचकांक

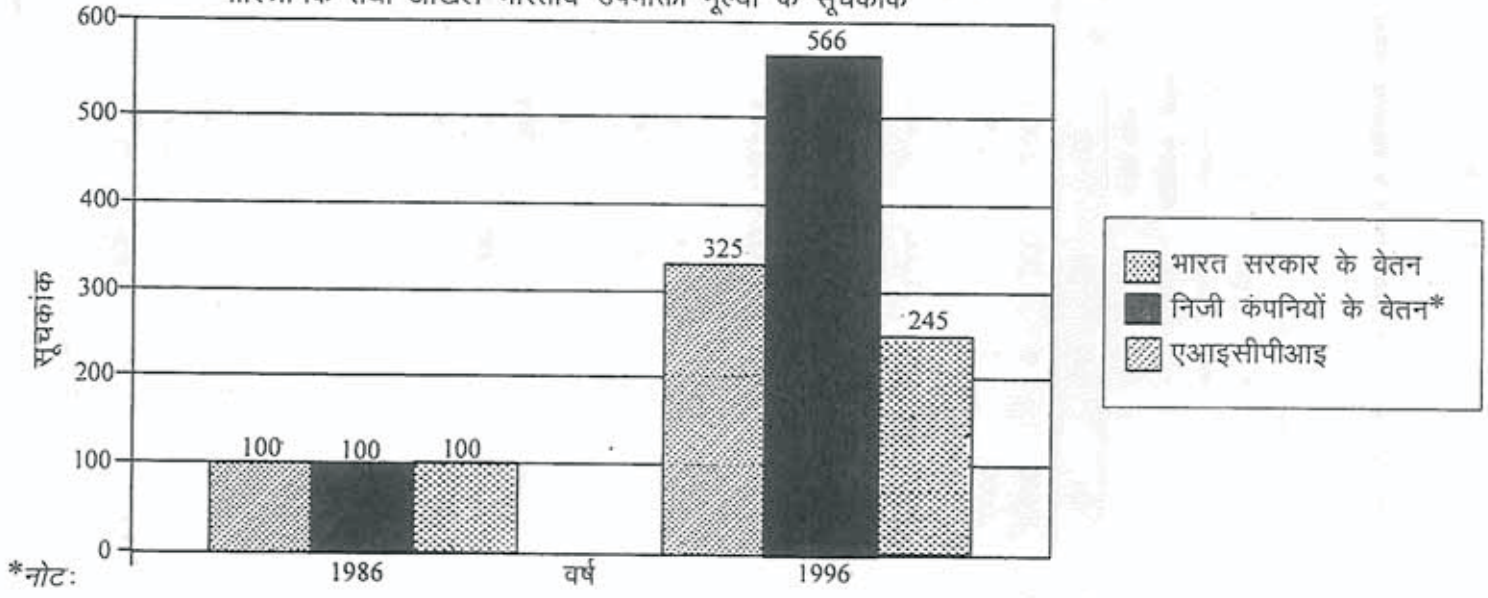

*नोट:

- भारत सरकार के आइएएस सचिव का वेतन 8,520 रुपये (1986) से 27,690 रुपये (1996)
- एक प्रतीकी निजी भारतीय व्यापारिक प्रतिष्ठान में एक मुख्य कार्यपालक अधिकारी का वेतन जो 1986 से 1996 तक उसी पद पर रहा हो (17,400 रुपये से 98,600 रुपये मासिक)
- सीपीआइ - 836 (1986) से 2050 (1996)

चित्र 10.3 1949 से वास्तविक वेतन में विकास का क्रम कैसा रहा है।

हुई होती। इस से केवल खरीदशक्ति के उसी स्तर को सुरक्षित रखा गया होता। तो आइए तालिका 10.1 देखें

तालिका 10.1: 1947-48 से 1997-98 के बीच भारत सरकार के आइएएस सचिवों की क्रय-शक्ति का ह्रास

वर्ष	*एआइसी पीआइ*	*आइएएस सचिव का वेतन*			*एआइसीपीआइ के अनुरूप समायोजित आइएएस सचिव का वेतन*	*अन्तर*
		मासिक वेतन	*महंगाई भत्ता*	*कुल*		
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1947-48	87	3,000	0	3,000	3,000	0
1948-49	97	3,000	0	3,000	3,345	-345
1949-50	100	3,000	0	3,000	3,448	-448
1950-51	101	3,000	0	3,000	3,483	-483
1951-52	104	3,000	0	3,000	3,586	-586
1952-53	104	3,000	0	3,000	3,586	-586
1953-54	106	3,000	0	3,000	3,655	-655
1954-55	99	3,000	0	3,000	3,414	-414
1955-56	96	3,000	0	3,000	3,310	-310
1956-57	107	3,000	0	3,000	3,690	-690
1957-58	112	3,000	0	3,000	3,862	-862
1958-59	118	3,000	0	3,000	4,069	-1,069
1959-60	123	3,000	0	3,000	4,241	-1,241
1960-61	124	3,000	0	3,000	4,276	-1,276
1962-63	131	3,000	0	3,000	4,517	-1,517
1963-64	140	3,000	0	3,000	4,828	-1,828
1964-65	160	3,000	0	3,000	5,517	-2,517
1965-66	172	3,500	0	3,500	5,931	-2,431
1967-68	217	3,500	0	3,500	7,483	-3,983
1968-69	216	3,500	0	3,500	7,448	-3,948
1969-70	219	3,500	0	3,500	7,552	-4,052
1970-71	231	3,500	0	3,500	7,966	-4,466
1971-72	238	3,500	0	3,500	8,207	-4,707
1972-73	257	3,500	0	3,500	8,862	-5,362
1973-74	310	3,500	0	3,500	10,690	-7,190
1974-75	393	3,500	0	3,500	13,552	10,052

(जारी...)

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1975-76	388	3,500	0	3,500	13,379	-9,879
1976-77	373	3,500	0	3,500	12,862	-9,362
1977-78	402	3,500	150	3,650	13,862	-10,212
1978-79	410	3,500	300	3,800	14,138	-10,338
1979-80	446	3,500	450	3,950	15,379	-11,429
1980-81	497	3,500	750	4,250	17,138	-12,888
1981-82	559	3,500	900	4,400	19,276	-14,876
1982-83	603	3,500	1,650	5,150	20,793	-15,643
1983-84	678	3,500	2,100	5,600	23,379	-17,729
1984-85	722	3,500	2,250	5,750	24,897	-19,147
1985-86	769	8,000	180	8,180	26,517	-18,337
1986-87	836	8,000	520	8,520	28,828	-20,308
1987-88	913	8,000	1,040	9,040	31,483	-22,443
1988-89	975	8,000	1,640	9,640	33,621	-24,581
1989-90	1,000	8,000	2,120	10,120	34,483	-24,363
1990-91	1,163	8,000	2,880	10,880	40,103	-29,223
1991-92	1,320	8,000	4,000	12,000	45,517	-33,517
1992-93	1,446	8,000	4,880	12,880	49,826	-36,982
1994-95	1,711	8,000	6,760	14,760	59,000	-44,240
1995-96	1,864	8,000	8,580	16,580	64,276	-47,696
1996-97	2,050	26,000	1,690	27,690	70,690	-43,000
1997-98	2,220	26,000	4,030	30,030	76,552	-46,522

चूंकि महंगाई भत्ते का समायोजन हर छः मास के बाद किया जाता है, उपरोक्त तालिका में पूरे वर्ष का औसत आंकड़ा दिया गया है।

तालिका 10.1 से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

1. आइएएस सचिव की वास्तविक आय, एआइसीपीआइ के अनुरूप समायोजित किए जाने पर 1948 से कम होना शुरू हो गई थी।
2. 1971-72 में प्राप्त होने वाला वेतन 3500 रुपये मासिक था जबकि 1947 के बराबर क्रय-शक्ति को बनाए रखने के लिए वेतन बढ़ कर 8207 रुपये हो जाना चाहिए था। इस प्रकार, 3500 रुपये मासिक की दर से मिलने वाला मासिक वेतन उस वेतन का 42 प्रतिशत था जो मिलना चाहिए था। दूसरे शब्दों में इस वेतन की वास्तविक कीमत 1947-48 की कीमत के आधे से भी कम रह गई थी।
3. 1984-85 तक, 5,750 रुपये का कुल वेतन, सही अर्थों में 1947-48 के वेतन का केवल 23 प्रतिशत ही रह गया था।

4. 1 जनवरी, 1986 को वेतन बढ़ा कर 8,000 रुपये मासिक कर दिया गया था। उस दिन, यह बढ़ा हुआ वेतन भी 1947 के वेतन का केवल 30.17 प्रतिशत ही था।
5. 1 जनवरी, 1996 को इस वेतन में पर्याप्त वृद्धि कर के इसे 26,000 रुपये प्रति मास कर दिया गया। उसके बावजूद, वास्तविक अर्थों में यह 1947 के वेतन का 36.78 प्रतिशत था।

एआइसीपीआइ में केवल वही वस्तुएं और सेवाएं शामिल हैं जो दैनन्दिन जीवन की केवल मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनिवार्य होती हैं। इसके अन्तर्गत उस विशाल परिवर्तन का हिसाब नहीं लगाया जाता जो पिछले वर्षों में देश के उपभोक्ता समाज में हुआ है। कपड़े, जूते, संगीत के उपकरण इत्यादि आजकल बहुत महंगे हैं और ईमानदार सरकारी सेवकों की पहुंच से बाहर हैं। परन्तु उन्हें छोड़ दीजिए। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को भी आज के मासिक वेतन के साथ पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि वास्तविक अर्थों में इस में ह्रास होता जा रहा है। 1971-72 में वेतन की कीमत कम होकर 1947 के वेतन का 42.65 प्रतिशत रह गई थी। अब आप ही बताइए कि इन परिस्थितियों में एक आइएएस सचिव क्या करता? ईमानदार बने रहने के लिए ज़रूरी था कि वह अपने बुनियादी जीवनस्तर को कम कर के अपनी आवश्यकताओं को सीमित करता। वह केवल यही कर सकता था कि वह अपने घर के ख़र्च को अपेक्षाकृत मर्यादित तरीके से चलाता। भविष्य निधि में अनिवार्य रूप से जमा होने वाली बचत के अतिरिक्त और कोई बचत करने का तो प्रश्न ही नहीं था। वेतन की क्रय-शक्ति में तेज़ी से होने वाले क्षरण के बावजूद, उस समय तक वरिष्ठ आइएएस अधिकारी ही नहीं, अपितु इस सेवा के सभी सदस्य ईमानदार बने रहे थे। उसके बाद तो वास्तविक मासिक आय का तेज़ी से क्षरण होने लगा। 1984-85 तक तो यह कम होती होती 1947 की आय का मात्र 23 प्रतिशत रह गई। अब क्या होता? इस परिस्थिति में एक ईमानदार अधिकारी कैसे बचा रहता? वह अपने परिवार की न्यूनतम बुनियादी आवश्यकताओं को कैसे पूरा करता? वह अपने बच्चों की उचित शिक्षा के लिए पैसे कहां से जुटाता? एक असम्भव-सी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। क्यों उस समय की सरकार ने अपने सर्वोच्च सरकारी सेवक को पर्याप्त राहत नहीं दी जिससे उसकी वास्तविक कमाई में होने वाले क्षरण की क्षतिपूर्ति हो सकती? इस प्रश्न का उत्तर पांचवे केन्द्रीय वेतन आयोग के निम्नलिखित कथन में मिलता है। यहां हम यह कहना आवश्यक समझते हैं कि इस आयोग के अध्यक्ष भारत के सर्वोच्च न्यायालय के एक भूतपूर्व न्यायाधीश थे।

यह क्षरण एक ऐसी सोची-समझी नीति का परिणाम था जिसका इस ग़लत अवधारणा के अन्तर्गत लम्बे समय से पालन किया जा रहा था कि एक समाजवादी सामाजिक ढांचे में उच्च स्तरीय नौकरशाही का दरिद्रीकरण व्यवस्था का आवश्यक अंग है।[5]

1971-72 से 1984-85 के बीच, तत्कालीन सरकार के, उच्चस्तरीय नौकरशाही के दरिद्रीकरण के इस उद्देश्य को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इस के साथ ही सरकार इस बात में भी सफल हुई कि यह दरिद्र नौकरशाही जीवित रहने के लिए भ्रष्टाचार का आश्रय ले। और जब उच्च अधिकारी आवश्यकता पर आधारित भ्रष्टाचार का आश्रय लेने के लिए विवश हो जाते हैं तो वे क्रमशः काले धन को इकट्ठा करने की लोलुपता का शिकार भी होने लगते हैं। आज उनमें से कई, सार्वजनिक धन को लूटने के संयुक्त उद्यम में राजनीतिज्ञों के सक्रिय और उत्साही भागीदार बने हुए हैं। और जब एक बार सत्यनिष्ठा का बांध टूट जाता है तो फिर एक सत्तासीन अधिकारी के पतन की गहराई की कोई पराकाष्ठा नहीं रहती।

अब यह समझना कठिन नहीं है कि आइएएस के एक अच्छे-खासे भाग को क्यों और कैसे इस सीमा तक भ्रष्ट माना जाने लगा है।

पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग ने एक अत्यंत साहसपूर्ण रिपोर्ट दी है और वेतनमानों को अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ आधार पर निर्धारित करने के लिए नया मार्ग दिखलाया है। भारत सरकार द्वारा संस्वीकृत नए वेतनमान, जो कि वेतन आयोग की अनुशंसाओं पर आधारित हैं, पिछले वेतनमानों की तुलना में काफ़ी ऊंचे हैं।

पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की एक अत्यंत महत्वपूर्ण अनुशंसा यह है कि अब के बाद एआइसीपीआइ में दिखाई देने वाले जीवन निर्वाह सूचकांक में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के प्रभाव को समुचित महंगाई भत्ते के द्वारा निरस्त कर दिया जाए। इस अनुशंसा को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया है।

यह एक बहुत अच्छी बात है और इससे न केवल आइएएस अधिकारियों अपितु सभी वर्गों के सरकारी सेवकों के वेतन में होने वाली कमी को रोका जा सकेगा। भावी मुद्रास्फीति से सम्पूर्ण सुरक्षा के साथ, इस नए वेतन की उपलब्धता से भ्रष्टाचार की 'आवश्यक' विवशता से बचना संभव हो सकेगा और जो सत्यनिष्ठा के साथ अपना काम करना चाहते हैं, कर सकेंगे हालांकि शायद उन्हें अपने जीवन स्तर को थोड़ा अनुशासित करना पड़ सकता है। पर अब भी यह सोचना सही नहीं होगा कि नई वेतन-व्यवस्था से भ्रष्टाचार सर्वत्र स्वयमेव समाप्त हो जाएगा। क्योंकि भारत सरकार के सचिव का 26,000 रुपये का नया मासिक वेतन भी वास्तविक अर्थों में 1947 के 3000 रुपये के मासिक वेतन का केवल 36.78

प्रतिशत ही है। दूसरे शब्दों में, 1947 के 3000 रुपये के मासिक वेतन को 1 जनवरी 1996 से 8.67 के गुणांक से बढ़ाया गया है जबकि एआइसीपीआइ द्वारा दिखाए गए आंकड़ों के अनुसार जीवन निर्वाह का ख़र्च 1947 के 87 की तुलना में 1996 में 21.42 के गुणांक से बढ़ कर 1864 तक जा पहुंचा है। यह एआइसीपीआइ में घटित गुणांक के हिसाब से वेतन बढ़ाने का कोरा सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं है। वास्तव में यह प्रश्न वेतन को फिर से उस स्तर तक ले जाने का है जिससे 1947 के जीवनमान को प्राप्त करने और बचत कर पाने की संभावना सुलभ हो सकेगी। अब से पहले, एक अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी के पास पेंशन के अतिरिक्त अपने और अपने परिवार के लिए एक अच्छा घर बनाने योग्य बचत होती थी तथा किसी अप्रत्याशित ख़र्च को पूरा करने के लिए नकद अधिशेष भी होता था। भारत सरकार के सचिव स्तर के नीचे की गई वेतन वृद्धि का गुणांक 8.67 से भले ही अधिक हो, फिर भी बचत करने की गुंजाइश काफ़ी नहीं है।

इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि समाज ने भी एक नई, अधिक खर्चीली जीवन-शैली को अपना लिया है। बच्चों की शिक्षा, बीमारी का इलाज, मनोरंजन और अवकाश, सभी बहुत महंगे हो गए हैं। प्रौद्योगिकी के विकास के कारण, नए-नए उपकरण घरों में आ गए हैं जिनसे जीवन शैली बेहतर हुई है। यदि निजी क्षेत्र में काम करने वालों के पास सभी आधुनिक सुविधाएं हैं तो सरकारी कर्मचारियों के पास ये क्यों न हों? यह सोचना अव्यावहारिक ही नहीं, दंभपूर्ण भी है कि आइएएस के सदस्य, जिनका स्थान देश के सबसे योग्य लोगों में है, उनके पति/पत्नियां और बच्चे निजी क्षेत्र में काम करने वाले लोगों से नीचे का जीवन स्तर बिताने में संतुष्ट रहेंगे।

देश की जनता और सरकार के सामने बुनियादी प्रश्न यह है : भविष्य में सरकारी सेवा में, विशेषकर ऊंची सिविल सेवाओं में, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय राजस्व सेवा तथा ऐसे ही महत्वपूर्ण संवर्गों में किस कोटि के लोग भर्ती किए जाने चाहिए? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि ईमानदार और कुशल प्रशासन के लिए तथा, उसके द्वारा सभी लोगों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए, यह आवश्यक है कि इन सेवाओं में भविष्य में सर्वश्रेष्ठ कोटि के लोगों को ही प्रवेश मिलता रहे। प्रजातंत्र को जीवित रखने के लिए यह अत्यावश्यक है।

इस प्रकार भविष्य में सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा को आकर्षित करने तथा उसे भ्रष्टाचार से मुक्त रखने की आवयकता होगी। इसके लिए, अब के बाद, वेतनमानों का ऐसा होना आवश्यक होगा जिन की तुलना निजी क्षेत्र की इसी प्रकार की सेवाओं के लिए मिलने वाले वेतनों के साथ की जा सके। सिंगापुर और एशिया के अन्य देशों

ने ऐसा ही किया और उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त किए हैं। वास्तव में, सिंगापुर में इस बात पर बल दिया जाता है कि ऐसे अत्यंत मेधावी युवकों की भर्ती की जाए, जिनमें 'हैलीकॉप्टर गुणवत्ता' हो। इसका अर्थ है कि उनमें ऊपर के पदों पर शीघ्रता से पहुंचने की क्षमता हो। इन देशों ने साबित कर दिखाया है कि उच्चकोटि की तथा ईमानदार नौकरशाही ही देश की सुसंचालित शासनव्यवस्था की एकमात्र विश्वसनीय आधारशिला है और इसको प्राप्त करने का एकमात्र साधन यही है कि उनके वेतनमान ऐसे हों जिनकी तुलना निजी क्षेत्र के वेतनमानों के साथ की जा सके न कि समाजवादी सामाजिक व्यवस्था के तथाकथित आदर्शों का आदर करते हुए उन्हें 'दरिद्र' बना कर। देश समाजवादी हों, साम्यवादी या पूंजीवादी, सभी देशों को एक ईमानदार और कुशल प्रशासन की आवयश्कता है ताकि वे अपनी पसंददीदा नीतियों तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित कर सकें। *इस विषय पर सिंगापुर सरकार का अभिमत यह है :*

> सरकारी सेवा में प्रशासनिक सेवा सबसे प्रमुख है। प्रशासनिक अधिकारी अपने कंधों पर व्यापक प्रबंधकीय उत्तरदायित्वों को संभालते हैं। वे उन नीतियों को बनाने और लागू करने में राजनीतिक नेताओं की सहायता करते हैं जो सिंगापुर के सभी लोगों के जीवन को प्रभावित करती हैं। इस सेवा को देश में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा को हासिल करने के लिए स्पर्द्धा करनी है।

अपनी प्रशासनिक सेवा की गंभीर भूमिका के उपरोक्त मूल्यांकन को आधार बना कर, सिंगापुर सरकार ने निम्नलिखित सिद्धान्तों को स्वीकार एवं क्रियान्वित किया है। इन सिद्धान्तों को विश्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट, *नीति अनुसंधान - एशियाई चमत्कार : आर्थिक विकास एवं सार्वजनिक नीति* के अन्तर्गत परिभाषित किया है जिसका प्रकाशन 1993 में विश्व बैंक के लिए ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस ने किया था :

* भर्ती और पदोन्नति योग्यता पर आधारित तथा अत्यंत प्रतिस्पर्द्धापूर्ण हो।
* कुल पारिश्रमिक, जिनमें परिलाभ और प्रतिष्ठा शामिल हैं, निजी क्षेत्र से तुलनीय हो।
* जो सर्वोच्च पद पर पहुंच जाएं, उनको समुचित रूप से पुरस्कृत किया जाए।

विश्व बैंक की रिपोर्ट में आगे यह भी कहा गया है : 'नौकरशाही में, लगभग सभी अन्य मामलों की तरह ही, आप जैसी कीमत अदा करेंगे, वैसा ही सौदा आपको मिलेगा' ... 'सामान्यतः, सार्वजनिक क्षेत्र में प्राप्त होने वाला कुल वेतन-पैकेज निजी क्षेत्र में मिलने वाले वेतन-पैकेज की तुलना में जितना बेहतर होगा, उतनी

ही अच्छी कोटि की नौकरशाही होगी।' इस रिपोर्ट में सिंगापुर का साफ़ उदाहरण दिया गया है : 'इसमें कोई आचर्श्य नहीं कि सिंगापुर, जिसकी नौकरशाही को इस क्षेत्र की सबसे कुशल और खरी नौकरशाही माना जाता है, अपने अधिकारियों को सब से बढ़िया वेतन देता है।'[6]

विकसित देशों में, निजी क्षेत्र के साथ 'उचित तुलना' का सिद्धान्त बहुत समय से स्वीकृत है। इसके साथ ही वहां निरपवाद रूप से वेतनों के वार्षिक पुनरवलोकन और समुचित समायोजन की व्यवस्था है। एक ईमानदार और कुशल प्रशासन के संचालन के लिए देश की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा को आकर्षित करने और रखने का यही एकमात्र तरीका है।

यहां एक ख़ास उदाहरण उपयोगी होगा। युनाइटिड किंगडम में सर्वोच्च सरकारी सेवकों के वेतन निजी क्षेत्र के साथ तुलना करके निर्धारित किए जाते हैं, न कि फुटकर मूल्य सूचकांक (आरपीआइ) के संदर्भ से। इसका प्रमाण यह है कि वहां का आरपीआइ[7] जो 1949 में 111 था, 1995 में 2224 पर पहुंच गया जो कि लगभग 20 गुणा था। पर, जैसा कि निम्नलिखित विवरणी में दिखाया गया है, वहां विभिन्न संवर्गों के सरकारी सेवकों की वेतनवृद्धि उससे कई गुणा अधिक हुई है।

तालिका 10.2 से एक तो यह पता चलता है कि युनाइटिड किंगडम में सरकारी अधिकारियों के वेतन में हुई वृद्धि उसी काल में होने वाली आरपीआइ वृद्धि से अधिक है। दूसरे इससे यह भी पता चलता है कि पिछले बीस वर्षों के दौरान, जबकि ब्रिटिश समाज का जीवन स्तर सामान्यतः काफ़ी ऊंचा हुआ है, वेतन वृद्धि की दर में भी तेज़ी से वृद्धि हुई है। यहां इस बात पर बल देना भी आवश्यक है कि यह सारा सुधार इसलिए संभव हुआ है क्योंकि वहां की नौकरशाही का आकार कम करने और काम के अधिक उत्पादक साधन अपनाने के दृढ़ एवं सफल प्रयास किए गए हैं। बहुत से ऐसे कामों को, जिन्हें पहले व्हाइट हॉल में सरकारी अधिकारी करते थे, वहां से हटा कर स्वायत्त एजेंसियों के सुपुर्द कर दिया गया है। इन एजेंसियों के मुख्य कार्यपालक स्वयं सभी निर्णयों के लिए जवाबदेह होते हैं और इन इकाइयों के कामकाज की लगभग पूरी और अन्तिम ज़िम्मेदारी उन्हीं की होती है। यह 'अगले चरण' के अभ्यास का परिणाम है। सचिवालय में, छोटे उत्तरदायी ग्रुपों का गठन किया गया है। जो विषय उन्हें सौंपे गए हैं उनके बारे में अंतिम निर्णय वही करते हैं और उन्हें नियमित रूप से इनकी रिपोर्ट उच्च-अधिकारियों को देनी होती है। इन तरीकों को अपनाकर, युनाइटिड किंगडम सरकार ने अपनी नौकरशाही के आकार में पर्याप्त कमी कर ली है। इसके साथ-साथ सरकारी सेवकों के वेतनों को निजी क्षेत्र के साथ उचित तुलना के सिद्धान्त के अनुरूप बढ़ा

तालिका 10.2: युनाइटिड किंगडम के सरकारी सेवकों के पारिश्रमिक में वृद्धि, 1947 से 1997

युनाइटिड किंगडम में सरकारी सेवकों का वेतन								
		वार्षिक वेतन (यू.के. पाउंड स्टर्लिंग)						गुणा वृद्धि 1949 से
श्रेणी	पद	1949	1958	1968	1978	1988	1997	1997 तक
स्थायी सचिव	स्था.स.	3,750	6,500	8,600	18,675	65,000	151,500	40.4
द्वितीय सचिव	9	3,500	6,000			59,500	113,390	32.4
तृतीय सचिव	8	2,500	4,250	6,300	14,000	45,500	106,980	42.8
अवर सचिव	7	2,000	3,400	5,250	12,000	37,000	100,970	50.5
सहायक सचिव	6	1,550	2,700	4,500	11,000	31,844	95,360	61.5
प्रधान सहायक	5	1,250	2,050	3,107	9,350	28,215	90,500	72.4
प्रधान	4	750	1,110	1,574	7,450	25,350	85,400	113.8

स्रोत : सिविल सर्विस इयर बुक, एचएमएसओ, लंदन, 1949 तथा उसके बाद

दिया गया है। इस प्रकार युनाइटिड किंगडम ने एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था सुनिश्चित कर ली है जो ईमानदार और कार्यकुशल है तथा जिसमें उच्चतम योग्यता के स्त्री-पुरुष भर्ती होते और टिके रहते हैं।

भारत में, सरकार के सामने एक अत्यंत कठिन कार्य, आइएएस को, जो कि देश के प्रशासन की रीढ़ और 'फ़ौलादी ढांचा' है, स्वच्छ बना कर इसका पुनर्निमाण करना है ताकि यह पहले की तरह ईमानदार, कुशल, वस्तुनिष्ठ, निष्पक्ष और राजनीतिक दृष्टि से एक तटस्थ नौकरशाही के रूप में, जनता की चुनी हुई सरकार की नीतियों के अनुसार, सही अर्थों में समर्पित भाव से सेवा कर सके। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए, सरकार को तथा इस सेवा के नेताओं और सदस्यों को कुछ निर्णयात्मक कदम उठाने होंगे जिनका सुझाव नीचे दिया गया है :

सरकार द्वारा उठाए जाने योग्य कदम

1. किसी भी सच्चे प्रजातांत्रिक प्रशासन में सभी राजनीतिक दलों की सरकारों के लिए बुनियादी तौर पर यह आवश्यक है कि वे उच्चकोटि की स्थायी सरकारी सेवा के लिए योग्यता-तंत्र के सिद्धान्त का सख्ती से पालनं करें। इसी से एक अच्छा राज्यशासन संभव बनाया जा सकता है। आइसीएस और उसकी उत्तराधिकारिणी आइएएस में शुरू में केवल योग्यता के आधार पर ही भर्ती होती थी। बाद में कुछ समय से इस सिद्धान्त का उल्लंघन कर दिया गया है। ऐसा निस्संदेह सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकजुटता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया गया है। भर्ती के इस सिद्धान्त के अंतर्गत कुल वार्षिक भर्ती का 45 प्रतिशत तीन विशेष वर्गों के लिए आरक्षित है और इनमें से प्रत्येक के लिए इस प्रतिशत के अन्दर अपना-अपना भाग है।

   इस बात पर बल देना आवयक है कि आइएएस में भर्ती के सभी प्रत्याशियों को समान प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेना पड़ता है और अन्ततः चयन उन्हीं का होता है जो सामान्य और आरक्षित श्रेणियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं। इसके बावजूद, आजकल इस सेवा को सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के धनी नहीं मिल पाते। इसका कारण यह है कि यद्यपि वे 'आरक्षित माध्यम' से चयनित प्रत्याशियों की तुलना में अच्छा प्रदर्शन करते हैं, उनका चयन नहीं हो पाता। यह योग्यता-तंत्र के सिद्धान्त की अवहेलना है और एक अच्छा राज्यशासन चलाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि इस सिद्धान्त को और शिथिल न होने दिया जाए। यह आशा करना तर्कसंगत है कि जैसे-जैसे बेहतर शिक्षा सुविधाएं इन विशेष श्रेणी के

लोगों को मिलेंगी, उनके प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रदर्शन के अन्तर में कमी होती जाएगी और अन्त में यह अन्तर समाप्त हो जाएगा। इस बीच, भारत सरकार को यह सुनिश्चित करने के कड़े प्रयास करने होंगे कि लालबहादुर राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी में सफलतापूर्वक प्रशिक्षण समाप्त करने के बाद, सभी नवनियुक्तों को हर दृष्टि से एक ही धारा का अंग माना जाए और उनकी नियुक्तियां एवं स्थानांतरण बिना किसी जातीय, धार्मिक अथवा सामुदायिक भेदभाव के किए जाएं। यदि इसे नीति मानते हुए इस पर सावधानी से आचरण किया जाए, तो आरक्षण की नीति के कारण इस सेवा की छवि और निष्पादन को जो आघात पहुंचा है, उसे काफ़ी सीमा तक सीमित रखा जा सकेगा।

2. इस सेवा के सदस्यों के लिए राजनीतिक तटस्थता के सिद्धान्त को पूरी तरह, अविचल दृढ़ता के साथ पुनः प्रतिष्ठित करना होगा। दुर्भाग्य से इस सिद्धान्त का गहरा क्षरण हुआ है और इससे इस सेवा के सदस्यों के मनोबल, सम्मान, विश्वसनीयता और निष्पक्षता गंभीर रूप से आहत हुए हैं। एक प्रजातंत्र में अलग-अलग समय पर अलग-अलग राजनीतिक दल सत्ता संभालते हैं। उन सब को, भले ही वे समाजवादी हों, साम्यवादी या पूंजीवादी, यह विश्वास होना चाहिए कि स्थायी सरकारी सेवापूर्ण समर्पण के भाव के साथ तथा निष्पक्षतापूर्वक उनके लिए काम करेगी। संक्षेप में, इसका अर्थ यह है कि देश के सभी लोगों को, उनका राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ भी हो, सरकारी सेवा की सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए।

'राजनीतिक तटस्थता' के सिद्धान्त से ज़रा-सा भी हटने से 'अच्छे राज्यशासन' की अवधारणा नष्ट हो जाएगी और अन्ततः यह स्वयं प्रजातंत्र को ही नष्ट कर देगी।

यह अत्यंत दुःख की बात है कि राज्यों की विधायिकाओं के कुछ सदस्यों का यह हठ रहता है कि ज़िला मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति तथा उनका स्थानांतरण उनकी पसंद नापसंद के आधार पर किया जाए। यदि वे अगला चुनाव हार जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे दल को चुन लिया जाता है, तो ज़िला मजिस्ट्रेट को वहां से फिर जाना पड़ता है। ऐसे में सामान्य जनता का क्या होगा जिसे प्रशासन में निरन्तरता, कार्यकुशलता तथा निष्पक्षता की आवयकता है?

पिछले कुछ वर्षों में देश के प्रशासन को सब से अधिक नुकसान इस बात से पहुंचा है कि कई राज्यों में आइएएस और आइपीएस अधिकारियों

की नियुक्तियों और तबादलों का निर्लज्जतापूर्वक राजनीतीकरण कर दिया गया है। लोगों की आम धारणा यह भी है कि व्यापार और उद्योग के कुछ महत्वपूर्ण मुखिया लोग, उच्च राजनीतिक पदों पर अपने प्रभाव का प्रयोग करके आर्थिक मामलों के मंत्रालयों तथा कानून लागू करने वाली एजेंसियों के वरिष्ठ पदों पर अपनी पसंद के लोगों की नियुक्ति करवा लेते हैं। इसका परिणाम सिवाय इसके कुछ नहीं हो सकता कि ईमानदार और निष्पक्ष सरकारी प्रशासन पूर्णतया भ्रष्ट हो जाए।

अखिल भारतीय सेवाओं से संबंधित मामलों के प्रबंधन, विशेषतः उनकी नियुक्तियों, स्थानांतरण और पदोन्नतियों की ज़िम्मेदारी तुरंत उन्हें ही दोबारा सौंप देनी चाहिए, जिनकी यह हैं - केन्द्र में कैबिनेट सचिव के हाथ में और राज्यों में मुख्य सचिवों के हाथ में। इनमें राजनीतिक दलों के नेताओं अथवा केन्द्रीय या प्रादेशिक विधायिकाओं के सदस्यों का कतई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। पुरानी पद्धतियों के अंतर्गत इस बात को सुनिश्चित करने की व्यवस्था है कि कैबिनेट सचिव तमाम वरिष्ठ पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों और तबादलों के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित कैबिनेट-नियुक्ति-समिति की संस्वीकृति प्राप्त करे। इसी प्रकार, राज्यों के मुख्य सचिव ऐसे प्रशासनिक मामलों में सदैव राज्यों के मुख्यमंत्रियों के नियंत्रण और निर्देशन के अनुसार काम करते रहे हैं और इसमें राजनीतिक आक़ाओं की दख़लंदाज़ी का कोई प्रश्न ही नहीं है।

इसके अतिरिक्त, निश्चित कार्यावधि की पद्धति को फिर से दृढ़तापूर्वक स्थापित किया जाना चाहिए और राजनीतिज्ञों की मर्ज़ी के मुताबिक थोड़े-थोड़े समय के बाद आइएएस और आइपीएस अधिकारियों के स्थानांतरण का तमाशा बंद होना चाहिए।

देश के प्रशासन को सभी नागरिकों के हितों को ध्यान में रखते हुए ईमानदारी, कुशलता और निष्पक्षता से चलाए जाने की ज़रूरत है न कि स्थानीय राजनीतिज्ञों की मौज और सनक के अनुसार। प्रशासन पर राजनीतिक नियंत्रण प्रजातंत्र का मूलभूत सिद्धान्त है परन्तु नियंत्रण के इस अधिकार का उपयोग सरकार के प्रमुखों अथवा सदस्यों द्वारा जांची-परखी तथा सुस्थापित पद्धति के अनुसार किया जाना चाहिए। इस विषय में एक स्पष्ट नीति के निर्धारण के लिए प्रधानमंत्री के लिए एक सुझाव है कि वे सभी मुख्यमंत्रियों की एक मीटिंग बुलाएं और उसमें इस विषय पर एक समझौता हो जिसका पूरे देश में पालन किया जाए। यह कोई दलगत मामला नहीं है। यह एक राष्ट्रीय प्रश्न है और इस पर राष्ट्रीय

सर्वानुमति की आवयकता है। यदि इस विषय पर दृढ़संकल्प के साथ तुरन्त निर्णयात्मक कदम न उठाया गया तो देश के प्रशासन में स्वच्छता और ईमानदारी पुनः स्थापित करने के सभी अवसर समाप्त हो जाएंगे।

3. निर्णय करने की गति लज्जाजनक सीमा तक धीमी पड़ गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि नौकरशाही 'सुरक्षित रह कर' काम करना चाहती है और ग़लती हो जाने पर व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी से बचना चाहती है। एक फ़ाइल को परत-दर-परत, कितनी ही परतों से गुज़रना पड़ता है और प्रत्येक चरण पर 'ध्यानपूर्वक जांच' करने में कितना ही समय लग जाता है। निर्णय लेने में होने वाले विलम्ब के कारण जो नुकसान होता है, उसके लिए कोई लेखा-परीक्षा नहीं है और न ही उन लोगों के लिए किसी दंड की व्यवस्था जो अपना काम नहीं करते। यही कारण है कि सरकारी मंत्रालयों और कार्यालयों में काम के प्रति उदासीनता का वातावरण व्याप्त है। निर्णय करवाने के लिए, व्यापारियों और उद्योगपतियों को भ्रष्टाचार का आश्रय लेना पड़ता है। अतः निम्नलिखित उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए उपाय करने की आवश्यकता है :

   (i) निर्णय करने की गति में तेज़ी लाना;
   (ii) सरकार के सचिवों और विभागाध्यक्षों सहित सभी वरिष्ठ अधिकारियों की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए 'निष्पादन-बजट' और 'निष्पादन-मूल्यांकन' की पद्धति की स्थापना करना;
   (iii) आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग द्वारा अधिकतम पारदर्शिता को सुनिश्चित करना;
   (iv) अनावश्यक नियम-विनियमों के दम घोंटने वाले मकड़जाल को समाप्त करना; और
   (v) पांचवें वेतन आयोग की स्पष्ट अनुशंसाओं के अनुरूप नौकरशाही के आकार को घटाना।

एक नए प्रशासनिक सुधार आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता यह है कि शासनाध्यक्ष इस विषय में व्यक्तिगत रुचि लें। वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले सुनिश्चित उपाय कौन से हों, यह निर्धारित करने के लिए भूतपूर्व सचिवों का कार्यदल गठित किया जा सकता है। युनाइटिड किंगडम में काम के तरीकों में बिना किसी शोर-शराबे के दूरगामी परिवर्तन किए गए हैं। ऐसा करने के लिए किसी 'जांच आयोग' का गठन नहीं किया गया अपितु सरकारी सेवकों के कार्यदलों ने अपने ही प्रयासों से यह कर लिया है। भारतीय सरकारी

सेवक - सेवानिवृत्त हों या सेवारत - अत्यंत योग्य हैं और इस प्रकार का काम करने में सक्षम हैं। उन्हें आवश्यकता है अभिप्रेरणा की और यह अभिप्रेरणा उन्हें प्रधानमंत्री दे सकते हैं। इसी प्रक्रिया, तथा उसके लिए आवश्यक अनुवर्ती कार्रवाई पर ही आधारित है एक ऐसी ईमानदार, कार्यकुशल तथा प्रभावी नौकरशाही का संभावित नवनिर्माण, जो देश को भ्रष्टाचार-रहित और निष्पक्ष प्रशासन दे सके ताकि आर्थिक विकास की गति तेज़ हो और ग़रीबों को राहत मिले।

अतएव हमारी सम्मति यह है कि प्रधानमंत्री इस महत्वपूर्ण काम के लिए तीन भूतपूर्व कैबिनेट सचिवों की एक समिति के गठन पर विचार करें।

4. आइएएस में भ्रष्टाचार की रोकथाम करना एक अन्य उच्च प्राथमिकता वाला काम है। इस दिशा में मुख्य रूप से यद्यपि इस सेवा के नेताओं तथा सदस्यों को स्वयं प्रयास करने होंगे, देश की सरकार का कर्तव्य यह है कि वह एक आइएएस अधिकारी द्वारा भ्रष्टाचार किए जाने के कर्म को अत्यंत जोखिम भरा आचरण घोषित कर दे जिसका परिणाम यह हो कि कानून की समुचित प्रक्रिया के अंतर्गत दोषी साबित होने वाला अधिकारी वित्तीय दृष्टि से पूरी तरह बर्बाद हो जाए। भ्रष्टाचार के मामलों में विलंब होने से प्रायः दस्तावेज़ गुम हो जाते और गवाह मुकर जाते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि विशेष अदालतों की स्थापना की जाए तथा उनमें सेवारत और/अथवा सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को नियुक्त किया जाए। इन अदालतों में अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों से संबंधित मामलों की दिन-प्रतिदिन तब तक सुनवाई होती रहे जब तक कार्रवाई पूरी न हो जाए। अपराधी सिद्ध होने वालों को कड़ा दंड दिया जाए तथा अनुचित साधनों से इकट्ठे किए गए धन को - जिसमें बेनामी व्यवस्था के अंतर्गत इकट्ठा किया गया धन भी शामिल है - ज़ब्त कर लिया जाए।
5. अखिल भारतीय सेवाओं के लिए एक संशोधित और पहले से अधिक कठोर आचार-संहिता के बनाए और लागू किये जाने की आवश्यकता है। इन सेवाओं के सदस्यों के लिए, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अनिवार्य होना चाहिए कि वे अपना कर्तव्य केवल जनहित को ध्यान में रख कर करेंगे, देश के कानूनों और संविधान के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा रखेंगे तथा सामान्य नैतिक सिद्धान्तों का अविचल रूप से पालन करेंगे। उनके लिए यह आवश्यक हो कि उनकी सम्पूर्ण वफ़ादारी जनता द्वारा चुनी गई सरकार के प्रति हो न कि किसी व्यक्ति विशेष के प्रति। साथ ही, यह

उनका अधिकार भी हो और कर्तव्य भी कि वे हर विषय पर अपने वस्तुगत दृष्टिकोण को उसके गुण-दोषों के आधार पर व्यक्त करें। तदनन्तर, वे मंत्री के लिखित आदेशों का अनन्यनिष्ठा से पालन करें। परन्तु, जब किसी सरकारी सेवक से ऐसा काम करने को कहा जाए, जिसे वह ईमानदारीपूर्वक जनहित के विरुद्ध समझता हो, तो उसे यह अधिकार हो कि वह केन्द्र में प्रधानमंत्री और राज्य में संबंधित मुख्यमंत्री द्वारा नियुक्त एक स्वतंत्र प्राधिकरण के सामने उस विषय को रख सके। इससे इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था हो सकेगी कि न तो कोई सरकारी अधिकारी नैतिकता अथवा जनहित के विरुद्ध कोई काम कर के बच सकेगा न ही मंत्री। इस प्रकार की व्यवस्थाएं दूसरे प्रजातांत्रिक देशों की आचार संहिताओं में शामिल हैं और इस बात का कोई कारण नहीं है कि सरकारी निर्णय-प्रक्रिया में सत्यनिष्ठा को प्रोत्साहित करने और जनहित को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें भारत में लागू न किया जाए।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि राज्यशासन में सत्यनिष्ठा को तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब समुचित व्यवस्था लागू हो और उसका दृढ़तापूर्वक पालन किया जाए।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के नेताओं और सदस्यों द्वारा किए जाने योग्य उपाय

1. आइएएस के नेताओं और सदस्यों को गहरा आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है, यह समझने के लिए कि उन्होंने देश की जनता का विश्वास और सम्मान क्यों खो दिया है। क्यों सरकारी अधिकारियों के लिए भी आज उन्हीं विशेषणों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा है जिनके द्वारा पहले राजनीतिज्ञों का उल्लेख किया जाता था। उन्हें स्वयं से पूछना चाहिए कि भारत की नौकरशाही जो किसी समय अपनी कार्यकुशलता, वस्तुपरकता तथा सत्यनिष्ठा के लिए विश्वविख्यात थी, किस कारण से आज, विश्व नहीं, केवल एशिया की बदतरीन सेवाओं में गिनी जाती है। दुनिया में इस घोर अधःपतन का शायद ही कोई दूसरा उदाहरण मिले। भारतीय पत्रकारिता के आज के एक सर्वप्रमुख पत्रकार, *इंडियन एक्सप्रेस* के प्रधान सम्पादक शेखर गुप्ता ने 29 जनवरी 2000 के इंडियन एक्सप्रेस में अपने एक हस्ताक्षरित लेख में अखिल भारतीय सेवाओं के विषय में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

क्षण भर के लिए रुकिए और विचार कीजिए कि आपकी मित्रमंडली

अथवा पुराने सहपाठियों में सबसे मेधावी, सबसे ईमानदार और सबसे परिश्रमी लोग कौन हैं। और इस बात की पूरी संभावना है कि आज भी आप उनमें से अधिकतर को अखिल भारतीय सेवाओं में ही पाएंगे। तो फिर ऐसा क्यों है कि सामूहिक रूप से ये लोग हमें इतनी अकुशल और रद्दी प्रशासन व्यवस्था दे रहे हैं? क्यों?

स्पष्ट उत्तर यह है कि इस सेवा के अधिकतर सदस्यों ने अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनना छोड़ दिया है। 'राजनीतीकरण' और प्रलोभनों का विरोध करने की अपेक्षा ये लोग आसानी से उनके शिकार हो गए हैं। वरिष्ठ पदों पर बैठे बहुत-से लोगों ने सुरक्षित और आरामदायक जीवन जीने का निर्णय कर लिया है। यही कारण है कि राज्यशासन इतना निकृष्ट हो गया है। पर अभी सब कुछ समाप्त नहीं हुआ। आज भी सेवा में ऐसे कई लोग हैं, विशेषकर युवा सदस्यों में, जो ईमानदार हैं, देश की सेवा करने के इच्छुक हैं, आदर्शवाद और देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित हैं। आवश्यकता - विशेषतः इस सेवा के वरिष्ठ सदस्यों में - मनोवृत्ति के एक बड़े परिवर्तन की है। एक ज़िले के गांव से लेकर, नई दिल्ली के कैबिनेट सचिवालय तक देश के कामकाज को चलाने का अधिकार आइएएस को प्राप्त है। इस अधिकार का उपयोग जनता को एक ईमानदार, कार्यकुशल, पारदर्शी तथा उत्तरदायी प्रशासन प्रदान करने के लिए किए जाने की आवश्यकता है। देश में ऐसी अन्य कोई इकाई नहीं है जिसके पास देश के करोड़ों निर्धनों को राहत पहुंचाने की इतनी शक्ति, इतनी ज़िम्मेदारी हो। इस सेवा के सदस्य जनहित को अपने कार्यक्रम में सब से ऊपर रखकर भारत का रूप बदल सकते हैं। उन्हें सदा स्मरण रखना चाहिए कि प्रजातंत्र में जनता ही मालिक होती है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर अकारण ही अपने मंत्रियों, संसत्सदस्यों और सरकारी सेवकों से यह नहीं कहते रहते कि वे इस बात को कभी न भूलें कि वे केवल सेवक हैं और जनता उनकी मालिक है। राष्ट्रपति कैनेडी ने पदग्रहण के समय जो शब्द कहे थे, उन्हें याद करना उचित होगा। उन्होंने कहा था : 'इसलिए, मेरे अमेरिकी मित्रो, यह प्रश्न मत करो कि अमेरिका आप के लिए क्या कर सकता है। प्रश्न यह करो कि आप अमेरिका के लिए क्या कर सकते हैं।' सभी भारतीयों से यह अपेक्षा करना कि वे इस देशभक्तिपूर्ण सम्मति का अनुसरण करें, उचित नहीं होगा क्योंकि उनमें से करोड़ों आज भी अत्यंत ग़रीब हैं और उनका हक है कि वे पहले देश की सरकार से पूछें कि वह उनके लिए क्या करना चाहती

है। पर निश्चय ही, आइएएस के सदस्य, जिन्हें भारतीय समाज और राज्यव्यवस्था में इतना ऊंचा स्थान प्राप्त है, अपने आप से यह प्रश्न बार-बार पूछ सकते हैं कि वे भारत के लिए क्या कर सकते हैं। यदि यह प्रश्न विनम्रता और निष्कपटता से पूछा जाए, तो सही उत्तर वेगवती धारा के प्रवाह की भांति बहते चले आएंगे। इन्हीं से मनोवृत्ति में वास्तविक परिवर्तन होगा और इसी परिवर्तन का परिणाम होगा समर्पण की भावना के साथ, लगन के साथ, जनता की सेवा करने का गतिशील प्रयास।

2. आइएएस के प्रमुखों और सभी सदस्यों का सबसे आवश्यक और सब से महत्वपूर्ण कार्य इस सेवा के सदस्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाना है। कितने दुःख की बात है कि आज आइएएस के कितने ही सदस्य भ्रष्टाचार के आरोपों का सामना कर रहे हैं। यदि देश की सर्वोच्च नौकरशाही - आइएएस, जिसकी स्थापना पूरे देश को एक ईमानदार और कुशल प्रशासन प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी - स्वयं ही भ्रष्टाचार में डूबी हुई होगी, तो अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, जैसी कि सचमुच देश के कई राज्यों में हो चुकी है।

जैसा कि हम इस अध्याय के प्रारंभिक भाग में देख आए हैं, 1960 के दशक के अन्त तक तथा 1970 के दशक के आरंभ तक, आइएएस भ्रष्टाचार-मुक्त थी। तदनन्तर, दो कारणों से सरकारी अधिकारियों में भ्रष्टाचार उभरने लगा। पहला था 'लाइसेंस परमिट कोटा राज' को बढ़ावा देने के लिए आइएएस के सदस्यों का राजनीतीकरण, जिसके परिणाम-स्वरूप व्यापार और उद्योग जगत् के लोगों से 'काला' धन इकट्ठा करने के लिए बदनाम 'नेता-बाबू' अन्तर्बंधन की स्थापना हुई। दूसरा कारण वेतन की ख़रीदशक्ति का असहनीय ह्रास था, जो तेज़ी से बढ़ रही मुद्रास्फीति के फलस्वरूप हो रहा था।

आज एक नई परिस्थिति उभरी है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और बहुत-से नियम-विनियमों के निरस्त होने से 'लाइसेंस-परमिट कोटा राज' काफ़ी सीमा तक समाप्त हो गया है। और पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के लागू होने के परिणामस्वरूप वेतनों के स्तर काफ़ी बढ़ा दिए गए हैं और क्रयशक्ति में होने वाले भावी क्षरण के विरुद्ध उपायों की भी पक्की व्यवस्था कर दी गई है। भविष्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण यह है कि पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग ने सरकारी क्षेत्र के पारिश्रमिक के निर्धारण के लिए निजी क्षेत्र के पारिश्रमिक के साथ उसकी 'उचित तुलना' को आधार बनाने के सिद्धान्त को स्वीकार किया

है। अब कोई आइएएस अधिकारी वैध रूप से यह शिकायत नहीं कर सकता कि जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने और एक उचित, परंतु संयत, जीवन स्तर बनाए रखने के लिए उसका वेतन अब भी अपर्याप्त है।

इस सुखद घटनाक्रम ने आइएएस के अग्रणियों - कैबिनेट सचिव और मुख्य सचिवों - को सभी आइएएस अधिकारियों के बीच सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा की स्पष्ट रूप से स्थापना करने का ऐतिहासिक अवसर प्रदान किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कैबिनेट सचिव तथा मुख्य सचिवों की एक मीटिंग आयोजित करने पर विचार कर सकते हैं जिसमें सतर्कता के लिए प्रभावी उपायों को सावधानीपूर्वक अपनाते हुए एक कार्ययोजना तैयार की जा सके। इस कार्ययोजना के क्रियान्वयन की निरन्तर अनुश्रुति के लिए आधुनिक संचार-साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

इस ऐतिहासिक अवसर को गंवाना नहीं चाहिए और पांचवें वेतन आयोग ने असाधारण भविष्यदृष्टि के साथ तैयार की गई अपनी रिपोर्ट से जिस अनुकूल स्थिति की सृष्टि की है, साथ ही सरकार ने भी जो साहसपूर्ण निर्णय किए हैं, उसका उपयोग सत्यनिष्ठा - सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा - की पुनः स्थापना करने के लिए किया जाना चाहिए।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इस दिशा में कैबिनेट सचिव तथा मुख्य सचिव जो भी कदम उठाएंगे उनका बहुत से आइएएस सदस्य पूर्ण समर्थन करेंगे।

3. सरकार के सामने उपस्थित अत्यंत महत्वपूर्ण मामलों में नौकरशाही के आकार को कम करने की समस्या भी है। यदि सदस्यों की वर्तमान संख्या में पर्याप्त कमी न की गई तो पांचवें वेतन आयोग की अनुशंसाओं को लागू किए जाने से राजकोष पर असहनीय बोझ पड़ जाएगा। इसके अतिरिक्त, यदि आकार में पर्याप्त कमी न की गई तो, भविष्य में अर्थव्यवस्था में अपेक्षित तेज़ी आने पर जहां निजी क्षेत्र में वेतन आगे बढ़ेंगे, वहां 'उचित तुलना' के सिद्धान्त के बावजूद, नौकरशाही के पारिश्रमिकों में वृद्धि कर पाना संभव नहीं हो सकेगा। इस दिशा में प्रभावी उपाय करने के लिए यह सही समय है। 'लाइसेंस-परमिट- कोटा राज' समाप्त होने तथा अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बाद, ऐसे कई काम जिन्हें पहले सरकारी अधिकारी किया करते थे, अब अनावश्यक हो गए हैं। यह प्रक्रिया जारी ही नहीं है, तेज़ी भी पकड़ रही है। इसके साथ ही, नौकरशाहों की संख्या में पर्याप्त कमी होने से, अनावश्यक 'परतों' में भी कमी होगी और इसके परिणामस्वरूप

निर्णय करने की गति भी तेज़ होगी। इससे निरसंदेह कार्यकुशलता में सुधार होगा तथा व्यक्तिगत जवाबदेही में वृद्धि होगी। इन सभी कारणों को देखते हुए, नौकरशाही के आकार को कम करने का यही उचित समय है। इस उद्देश्य से, पांचवें वेतन आयोग ने अपनी रिपोर्ट 8 के प्रथम खंड, द्वितीय भाग की चौथी धारा में 'सरकारी तंत्र के आकार को अनुकूलतम बनाने' के लिए अपनी विस्तृत एवं सुस्पष्ट अनुशंसाएं प्रस्तुत की हैं। आयोग ने 10 वर्ष की समय सीमा में पूरी नौकरशाही के आकार में 30 प्रतिशत कटौती करने की सिफ़ारिश की है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए आयोग ने अत्यंत सूझ-बूझ के साथ जिस रणनीति का अनुमोदन किया है, उसके अन्तर्गत कुछ पूरक और अनुषंगी श्रेणियों में भर्ती पर रोक लगाना, नए पदों के सृजन पर सांविधिक नियंत्रण, ख़ाली पड़े वर्तमान पदों को समाप्त करना, स्वैच्छिक अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति और 'सही आकार' के उद्देश्य की उपलब्धि के लिए प्रोत्साहन की व्यवस्था करना शामिल है। अपनी अनुशंसाओं के आधार पर, आयोग निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचा है : 'हमारा' दृढ़ विश्वास है कि 'उचित आकार' के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि यदि सर्वोच्च स्तर से की जाए तो हम सरकारी तंत्र के आदर्श आकार के लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं।

नौकरशाही के आकार को कम करने की केन्द्र सरकार की उत्सुकता का पता इस विषय पर वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा के उन विचारों से पता चलता है जो उन्होंने 27 फरवरी 1999 को लोकसभा में 1999-2000 का बजट पेश करते समय व्यक्त किए थे। अपने संकल्प के प्रमाणस्वरूप उन्होंने घोषणा की थी कि केन्द्र सरकार ने चार सचिव-स्तरीय पदों को समाप्त करने का निर्णय किया है। उन्होंने प्रस्तावित 'खर्च सुधार आयोग' की नियुक्ति की घोषणा भी की थी। स्पष्ट है कि भारतीय नौकरशाही के आकार को कम करने के निष्कपट और दृढ़ प्रयास करने का समय अब आ पहुंचा है।

इस विषय में, आइएएस के नेताओं तथा सदस्यों को चाहिए कि वे सरकार को पूरा एवं उत्साहपूर्ण समर्थन दें। आइएएस तथा अन्य सेवाओं के आकार में अगले 10 वर्षों में तर्कसम्मत प्रगामी कमी करने का प्रस्ताव भी किया जा सकता है। इसे, आइएएस अधिकारियों द्वारा देश के व्यापक हित में, आकार को कम करने की प्रक्रिया में सक्रिय सहयोग देने की तत्परता के संकेत के रूप में देखा जाएगा और जनता इसका स्वागत करेगी।

4. जब नौकरशाही के आकार में पर्याप्त कमी करने की प्रक्रिया ठीक दिशा में चल रही है तो सरकारी क्षेत्र में पारिश्रमिक निर्धारण तथा इस पारिश्रमिक के वार्षिक पुनरवलोकन के लिए एक नई दीर्घकालीन नीति लागू करने पर विचार किया जाना भी आवश्यक है। इसमें रंचकमात्र सन्देह नहीं है कि यदि समस्या को बिना दंभ के, यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखा जाए और यदि एक अच्छा राज्य प्रशासन प्रदान करने के उद्देश्य से अखिल भारतीय सेवाओं तथा अन्य संवर्गों में सर्वश्रेष्ठ योग्यतासंपन्न लोगों को आकर्षित करने की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाए तो निजी क्षेत्र के साथ 'उचित तुलना' पर आधारित नीति को अपनाना ही पड़ेगा। ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है कि सरकारी क्षेत्र के कर्मचारी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना नहीं चाहते, अपने परिवारों को एक अच्छी जीवन-शैली से वंचित रखना चाहते हैं, परिवार के सदस्यों के बीमार पड़ने पर उन्हें उचित चिकित्सा सुविधा नहीं प्रदान करना चाहते, सेवानिवृत्त होने पर अपने लिए एक उचित आरामदायक जीवन तथा ऐसी ही अन्य व्यवस्थाएं नहीं चाहते जैसी कि निजी क्षेत्र में काम करने वाले अधिकारियों को प्राप्त हैं। इसलिए सरकारी क्षेत्र में, वेतन निर्धारण के लिए 'उचित तुलना' के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए, जैसा कि सभी सुसंस्थापित प्रजातांत्रिक सरकारों में किया जाता है। ईमानदार नौकरशाही तथा स्वच्छ प्रशासन को सुनिश्चित करने का यही एकमात्र रास्ता है।

आइएएस के नेताओं के लिए यह आवश्यक होगा कि वे सरकारी क्षेत्र में 'उचित तुलना' के सिद्धान्त के आधार पर वेतनों को निर्धारित करने और उनके वार्षिक पुनरवलोकन करने के लिए एक स्थायी समिति के गठन के प्रस्ताव को उचित समय पर सरकार को पेश करें।

द ऑब्ज़र्वर के नई दिल्ली संस्करण में 10 फरवरी 2000 को प्रकाशित वह रिपोर्ट बहुत उत्साहवर्धक है जिसमें कहा गया है कि कैबिनेट सचिव ने नौकरशाही का आकार छोटा करने के सुनिश्चित उपाय पहले ही करने शुरू कर दिए हैं :

नौकरशाही ने अन्ततः अपना आकार कम करने की इच्छाशक्ति प्रदर्शित करना आरंभ कर दिया है। और इस सिलसिले में पहला साहसी कदम सरकारी सेवाओं के प्रमुख ने उठाया है। कैबिनेट सचिव प्रभात कुमार ने सभी मंत्रालयों और विभागों के सचिवों से कहा है कि वे सरकार का आकार कम करने के पंचपदी पैकेज को क्रियान्वित करने के अपने प्रस्ताव जून 2000 तक भेज दें।

प्रशासनिक सुधारों के विभाग के सूत्रों ने इस समाचार पत्र को बताया है कि श्री कुमार ने सभी सचिवों से कहा है कि वे इस पैकेज से संबंधित एक कार्ययोजना 15 फरवरी तक भेज दें।

इन सूत्रों ने श्री कुमार को उद्धृत करते हुए कहा, 'ऐसा उत्तरोत्तर महसूस किया जा रहा है कि नौकरशाही का बढ़ा हुआ आकार इसकी कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है। इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि नौकरशाही का आकार कम करना सरकारी ख़र्च को कम करने के लिए ही नहीं, व्यवस्था की कुशलता में सुधार लाने के लिए भी आवश्यक है।'

उपरोक्त पंचपदी पैकेज सरकार का आकार छोटा करने के लिए गठित अधिकारियों के एक आंतरिक दल की अनुशंसाओं से व्युत्पन्न है। इस दल का गठन पांचवें वेतन आयोग की रिपोर्ट में अनुशंसित, सरकारी आकार में 30 प्रतिशत कमी करने की बात को ध्यान में रखते हुए, कैबिनेट सचिवालय के सचिव (समन्वय), की अध्यक्षता में किया गया था।

इस आंतरिक दल की अनुशंसाएं निम्नलिखित हैं। इनका क्रियान्वयन 2000 के मध्य तक किया जाना है।

* 1 जनवरी 1992 की तारीख़ तक संस्वीकृत पदों के प्रत्येक वर्ग में, प्रत्येक मंत्रालय/विभाग तथा उसके उपविभागों में 10 प्रतिशत की कमी की जानी चाहिए। जनवरी 1992 से दिसम्बर 1999 के बीच सृजित पदों में भी 10 प्रतिशत की कटौती की जानी चाहिए;
* प्रत्येक मंत्रालय/विभाग और उससे जुड़े एवं अधीनस्थ कार्यालयों में ख़ाली पड़े सभी स्थानों की अविलम्ब समीक्षा की जानी चाहिए। ऐसा विभाग द्वारा अगस्त 1999 में जारी बजटोत्तरी दिशानिर्देशों के अनुरूप किया जाना चाहिए।
* अस्थायी पदों की अविलम्ब समीक्षा की जानी चाहिए और उन्हें 28 फरवरी 2000 से समाप्त कर दिया जाना चाहिए।
* मंत्रालयों/विभागों तथा उनसे जुड़े एवं अधीनस्थ कार्यालयों ने स्टाफ़ निरीक्षण यूनिट (एसआइयू) की जिन रिपोर्टों को स्वीकार कर लिया है, उन्हें जून 2000 से पहले-पहले समय सीमा के भीतर लागू किया जाना चाहिए।
* उन विषयों का निपटान करने के लिए जो रोज़मर्रा के हैं और जिनके लिए अधिक गहरे विश्लेषण और स्थायी स्मृति की आवश्यकता नहीं है, 'डेस्क-अधिकारी पद्धति को अपनाया जाना चाहिए।

पांचवें वेतन आयोग ने, 1997 में दी गई अपनी रिपोर्ट में सरकार के सुधार के एक ऐसे कार्यक्रम का विस्तारपूर्वक वर्णन किया था जिससे यह विशाल सरकारी तंत्र उदारीकरण की प्रक्रिया में बाधा न बन कर उसका उत्प्रेरक बन सके।

सुधार के विश्लेषकों के मतानुसार, कई आर्थिक विभागों, जैसे इलेक्ट्रॉनिक विभाग, औद्योगिक विकास विभाग तथा विदेश व्यापार महानिदेशालय, के विनियामक कार्यों में पिछले वर्षों में बहुत अधिक कमी हुई है।

आशा की जानी चाहिए कि राज्यों के मुख्य सचिव भी अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में ऐसे ही कदम उठाएंगे।

5. वर्तमान सहस्राब्दी के आरंभ में, भारत वस्तुतः अपनी अर्थव्यवस्था एवं राज्यव्यवस्था दोनों ही में एक अहिंसक क्रांति के दौर से गुज़र रहा है। उदारीकरण की गति में तेज़ी और राज्य का हस्तक्षेप कम होने के परिणामस्वरूप निगमित क्षेत्र आगे बढ़ रहा है और श्री नारायणमूर्ति जैसे नए उद्यमी उभर कर सामने आ रहे हैं तथा समादेशक पदों पर प्रतिष्ठित हो रहे हैं। वे अपने दृष्टिकोण तथा व्यवहार में वैश्विक हैं तथा सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा के प्रति समर्पित हैं। नए आर्थिक परिदृश्य में आइएएस की भूमिका अतीत की भांति एक 'नियंत्रक' की न होकर 'सहायक' की हे। इसके लिए पूरी तरह एक नई मानसिकता की आवश्यकता है। भारत की उच्चपदस्थ नौकरशाही को आज जापानी नौकरशाही की भांति काम करना होगा जो सदैव व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों की सहायता के लिए इस उद्देश्य से उत्सुक रहती रही है, और आज भी है, कि जापानी अर्थव्यवस्था प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे।

राज्यव्यवस्था में भी एक बड़ा परिवर्तन आने को है और आइएएस के सदस्यों को इस परिवर्तन के अग्रदूत बनना होगा। गांवों और ज़िलों के स्तर पर भी सत्ता जनप्रतिनिधियों के हाथों में देनी ही होगी। जनता सर्वत्र पारदर्शी, कुशल और ईमानदार प्रशासन की मांग कर रही है। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चन्द्रबाबू नायडू ने दिखा दिया है कि ऐसा कैसे किया जा सकता है। आंध्र प्रदेश में अब आइएएस अधिकारी अपनी दैनन्दिन गतिविधियों के लिए निरन्तर जवाबदेह हैं। 'हजूर माई बाप' की प्रवृत्ति का ज़माना लद गया है। आम प्रशासनिक समस्याओं से निपटने के लिए, आइएएस के सदस्यों को साफ़-सुथरे, पारदर्शी एवं ईमानदार तरीकों को अपनाते हुए जनता के 'सेवकों' के रूप में आचरण करना होगा। इससे भी एक नई मानसिकता, जिसमें विनम्रता, शालीनता और राष्ट्रीय स्वाभिमान के गुण

एक साथ विद्यमान हैं, की अविलंब और अनिवार्य आवश्यकता को बल मिलता है।

देश को आवश्यकता इस बात की है कि सभी आइएएस अधिकारी दृढ़संकल्प के साथ जनता की सेवा करने का संगठित प्रयास करें। इस प्रयास को अब और स्थगित नहीं किया जा सकता। देश अपने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज बेईमानी, धोखाधड़ी और अपराध के चक्रव्यूह में घिरा हुआ है और निरन्तर पतन के ऐसे भयंकर गर्त में डूबता जा रहा है जहां से वापसी संभव नहीं हो सकेगी। यह एक नाज़ुक परिस्थिति है। आइएएस के सदस्यों के हाथ में प्रदेशों के ज़िलों से लेकर, नई दिल्ली के कैबिनेट सचिवालय तक पूरे देश की सत्ता एवं नियंत्रण के लगभग सभी सूत्र हैं। वे सामरिक महत्व के पदों पर अवस्थित हैं जहां उनके पास ऐतिहासिक अवसर हैं, और उन पर अनपहार्य उत्तरदायित्व भी, कि वे अतीत से नाता तोड़ें, अपनी विश्वविख्यात सेवा को निष्कलंक बनाएं और देश को क्षमताहीनता, फिज़ूलखर्ची और भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाएं। ऐसा करके वे यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि हमारे करोड़ों देशवासी जो स्वाधीनता के 53 वर्ष पश्चात् भी भयंकर ग़रीबी में जी रहे हैं, जिनके पास ज़िन्दगी की सबसे ज़रूरी आवश्यकताओं - पीने का साफ़ पानी, दो वक्त की रोटी, प्राथमिक शिक्षा, प्रारंभिक चिकित्सा सुविधा - तक को जुटाने के साधन नहीं हैं, कम से कम अब उस राहत के अधिकारी हो सकें जो उन्हें बहुत पहले हासिल हो जानी चाहिए थी। इस के लिए विकास के सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग करना होगा। देश पतन के भयंकर कगार पर डगमगाते पावों से खड़ा है। यदि आइएएस अधिकारी क्षण भर के लिए विचार करें और अपने सामने उपस्थित अवसर को, अपनी योग्यता को, अपने गंभीर उत्तरदायित्व को पहचानें तो वे देश को बचा सकते हैं। यदि सभी 5,067 आइएएस अधिकारी अपनी महान् शक्ति का उपयोग अडिग भाव से, भ्रष्टाचार से युद्ध करने तथा सरकारी प्रशासन को ईमानदारी, कुशलता और पारदर्शिता के साथ चलाने का संकल्प कर लें तो उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हो सकती है।

यदि केन्द्र में कैबिनेट सचिव और राज्यों में मुख्य सचिव, अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में काम करने वाले सभी आइएएस अधिकारियों में सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा एवं उसके साथ-साथ काम के प्रति एक सकारात्मक, सहायक, सुदृढ़ और सहानुभूतियुक्त दृष्टिकोण तथा जनता की सेवा के भाव को प्रचारित करने की व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी लें, तो अब भी भारत सही रास्ते पर लौट सकता है। यह कथन कोरी कल्पना पर

नहीं अपितु भारतीय प्रशासन के फ़ौलादी ढांचे - आइएएस - की महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका के सही मूल्यांकन पर आधारित है।

मैंने अभी जो कहा, उसकी सच्चाई तथा शक्ति को प्रमाणित करने के लिए एक थोड़े दिन पुराने, उत्साहवर्द्धक अनुभव का उल्लेख करना चाहूंगा। अप्रैल 1999 में महाराष्ट्र के ज़िला पुणे की यात्रा के दौरान, मैं वहां के ज़िला कलेक्टर, श्री विजय कुमार गौतम से मिला। वे एक आइएएस अधिकारी हैं। चूंकि प्रशासन में भ्रष्टाचार की समस्या मेरे मन में सब से ऊपर थी, हम इसी विषय पर बात करने लगे। मैंने उनसे उनके ज़िले, जिसकी जनसंख्या लगभग 55 लाख है, की स्थिति के बारे में पूछा। गौतम की बातों से पता चला कि वे असाधारण रूप से प्रतिभाशाली और योग्य होने के साथ-साथ अपने क्षेत्र की जनता की सेवा के प्रति सच्चे अर्थों में सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा और निष्कपटता के साथ समर्पित हैं। गौतम ने बताया कि सरकारी दफ्तर 'रहस्यमय पिटारे' बने हुए हैं और जिन लोगों को इन दफ्तरों के साथ वास्ता पड़ता है उन्हें इस बात की तनिक-सी जानकारी भी नहीं है कि इनमें किस प्रकार कामकाज होता है। उन्हें एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी के यहां भागना पड़ता है पर उसका कोई परिणाम नहीं निकलता। इन परिस्थितियों में, 'कुछ दे-लेकर' काम करवाने वाले 'बिचौलिए' पैदा हो गए हैं। इस प्रकार पूरा सरकारी तंत्र भ्रष्टाचार की मुट्ठी में है। गौतम का दृढ़ विश्वास था कि भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए यह आवश्यक है कि संवदेनशील मामलों को छोड़ कर सरकारी दफ्तरों का सारा कामकाज पारदर्शी तरीके से किया जाए और जनता के हाथों में यह शक्ति दी जाए कि उन्हें पता हो कि जिस प्रकार की मदद की उन्हें ज़रूरत है वह उन्हें कैसे, कहां और कब मिल सकती है। इसके पश्चात् गौतम ने अपना 'लैपटॉप' निकाला और मुझे अपनी कम्प्यूटरीकृत योजना दिखाई जो उन्होंने स्वयं तैयार की है और जिसे वे अत्यंत सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर रहे हैं। उनके ज़िले के लोगों को अब पता है कि जिस जानकारी अथवा दस्तावेज़ों की उन्हें आवश्यकता है उसे/उन्हें कैसे प्राप्त किया जा सकता है। उन लोगों को अब यह भरोसा है कि उनके काम को समुचित तत्परता के साथ एक समयबद्ध सीमा के भीतर निपटा दिया जाएगा। इस प्रकार गौतम सच्चे अर्थों में लोकानुकूल प्रशासन की स्थापना कर रहे हैं तथा 'जनता के लिए सरकार' की अवधारणा को सार्थकता और साकार रूप प्रदान कर रहे हैं।

गौतम की दूरदर्शिता पूर्ण योजना, उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :

एकल खिड़की सहायता केन्द्र -
पुणे ज़िला में नागरिकों के अधिकार पत्र का अभ्यास

किसी भी सरकारी दफ्तर की पहचान आज वहां के परिसर में घूमते हुए ढेर

सारे लोगों, दफ्तरों में, मेज़ों के इर्द-गिर्द इकट्ठी भीड़ और वरिष्ठ अधिकारी की प्रतीक्षा में बैठे व्यक्तियों को देख कर आसानी से की जा सकती है। इस बात पर ज़ोर देना आवश्यक नहीं है कि एक सरकारी कार्यालय में जाने पर आमतौर पर घोर निराशा और अत्यंत असंतोष के अनुभव के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगता। सरकारी सेवा का वर्तमान स्वरूप देखते हुए लोगों के मन में एक सरकारी संगठन की जो छवि बन चुकी है, उसका वर्णन निम्नलिखित वाक्यों में किया जा सकता है :

* जल्दी काम करवाने के पैसे अलग से देने पड़ेंगे;
* एक बार आना काफ़ी नहीं है;
* एक बिचौलिये को ढूंढना ज़रूरी है;
* 'साहिब टूर पर हैं' - यह आम उत्तर है;
* व्यवस्था में संवेदनशीलता है ही नहीं।

मेरा यह मानना है कि उपरोक्त प्रकार की जनधारणा के चलते एक कर्तव्यनिष्ठ प्रशासक कभी चैन की नींद नहीं सो सकता। सिन्धुदुर्ग नामक ज़िले में - जो कि महाराष्ट्र का सबसे छोटा और सुन्दर ज़िला है - कलेक्टर के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान, मैंने तहसील, उपमंडल अधिकारी अथवा कलेक्टर के कार्यालय में आने वाले लोगों की आवश्यकताओं को समझने का एक छोटा-सा प्रयास आरंभ किया। छः महीने तक इस प्रयास को करते रहने के बाद मैंने यह पाया कि 90 प्रतिशत लोग वहां रोज़मर्रा के मामूली कामों के सिलसिले में बार-बार आते हैं; उदाहरणार्थ भूमि-अभिलेखों की प्रतिलिपियां हासिल करने, जाति-प्रमाणपत्र प्राप्त करने, राशन कार्ड या फिर कोई सांविधिक अनुमति/लाइसेंस लेने के लिए। मेरे इस अध्ययन से मुझे यह पता भी चला कि *लोगों को यही पता नहीं है कि उन्हें किनके पास जाना चाहिए, कार्यप्रणाली क्या है, कुछ ख़ास काग़ज़ात की आवश्यकता किसलिए है, अमुक काम के लिए कितना समय लगेगा?* मैंने यह भी देखा कि मानकीकरण और 'कार्यसम्पादन में लगने वाले समय' की अवधारणा का अभाव काम पूरा होने की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा करता है। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों के अलग-अलग वर्ग एक ही प्रकार के काम के लिए अलग-अलग प्रकार की आवश्यकताएं पूरी करने को कहते हैं और कभी-कभी तो एक ही कर्मचारी, एक ही काम के लिए अलग-अलग लोगों से अलग-अलग प्रकार की औपचारिकताएं पूरी करने को कहता है। इस प्रकार, पूरी व्यवस्था 'रहस्यमय पिटारे' की तरह काम करती है जिसमें न कोई पारदर्शिता है और - इसीलिए - न ही किसी प्रकार की जवाबदेही।

हमने बिना ऐसे किसी लम्बे-चौड़े प्रशासनिक सुधार के जिसमें नीतिगत

परिवर्तन की आवश्यकता पड़े, एक ऐसी रणनीति अपनाने का फ़ैसला किया जिसके चार सूत्र थे* :

(*i*) लोगों की आवश्यकता को सर्वोपरि समझें।
(*ii*) सांविधिक प्रावधानों को भली-भांति समझें।
(*iii*) अनावश्यक पड़ावों को छोड़ दें।
(*iv*) प्रशासनिक ख़र्चों (समय, शक्ति और धन) को कम करें।

इसके परिणामस्वरूप नागरिकों के अधिकार पत्र की अवधारणा ने जन्म लिया और इसको क्रियात्मक रूप देने के लिए कलेक्टर, उपमंडल अधिकारी और तहसील कार्यालय में एकल खिड़की सुविधा केन्द्र की स्थापना हुई।

पुणे ज़िला में नागरिकों के अधिकार पत्र में हमने विभिन्न अनुमतियों/लाइसेंसों से संबंधित 82 विषयों को शामिल किया है। इस कलेक्टरेट में 6 अक्तूबर 1998 से कम्प्यूटरीकृत एकल खिड़की प्रणाली लागू की जा चुकी है। एकल खिड़की में निम्नलिखित कदमों को समन्वित कर दिया गया है : हम कार्यप्रणाली के बारे में लोगों का पथप्रदर्शन करते हैं, हम उनके प्रार्थनापत्रों की काउंटर पर ही जांच करते हैं, हम रसीद देने के साथ-साथ मंज़ूर कर लिए गए प्रार्थनापत्रों के निपटान की सुनिश्चित तिथि देते हैं, हम अधूरे आवेदनों को लौटाते हुए लिखित जांच-सूची देते हैं, हम हर सप्ताह परिशोधन के उद्देश्य से उन कारणों का विश्लेषण करते हैं जिनके चलते आवेदन लौटाए गए थे, ताकि अपनी कार्यविधि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकें, हम निरंतर तिथियों के अनुपालन का अनुश्रवण करते हैं और हम बकाया मामलों को जनता की लेखा-परीक्षा के लिए प्रदर्शित करते हैं। इस समय यह योजना सभी 14 तहसीलों और 5 उपमंडलीय कार्यालयों में हस्तलिखित माध्यमों से चलाई जा रही है। ज़िलास्तर पर हमने स्पर्शस्क्रीन मॉनिटर शुरू किया है जिस पर कोई भी नागरिक अपने प्रार्थनापत्र की स्थिति के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकता है। उसे इसके लिए किसी सरकारी कर्मचारी या बाहर के आदमी पर आश्रित रहना नहीं पड़ता। अब हमारी योजना ग़ैर-सरकारी संगठनों, एसटीडी कोष्ठों और अन्य एजेंसियों को अपने साथ जोड़ कर इस जानकारी को विस्तृत करने की है। हम तहसील और उपमंडलीय कार्यालयों के कम्प्यूटरीकरण की

---

* अंग्रेजी के मूलपाठ में इसे 'PULL' कहा गया है:

P = Put people first
U = Understand statutory provisions well
L = Leave unnecessary steps
L = Lower administrative cost (time, energy, money)

योजना भी बना रहे हैं। इन्हें ज़िले के साथ जोड़ा जाएगा ताकि ज़िला पुणे में एक प्रत्युत्तरदायी सूचना तंत्र की स्थापना हो सके; इसमें ज़िले की विकास योजनाओं, भूमि-अभिलेखों तथा सामाजिक-आर्थिक विषयों के आधारभूत आंकड़े भी शामिल होंगे।

हमारा चरम लक्ष्य, सार्वजनिक सेवा-वितरण व्यवस्था के काम में पारदर्शिता और जवाबदेही लाकर, एक सुपरिभाषित नागरिक अधिकार पत्र तथा स्वतंत्र सूचना प्रसारण व्यवस्था के माध्यम से जनता को सामर्थ्यशाली बनाने के कार्यक्रम का सूत्रपात करना है। पुणे में इस प्रयास के परिणाम अत्यंत उत्साहवर्द्धक रहे हैं। ऐसे उदाहरण देखने में आए हैं कि ग्रामीण इलाकों में अर्धपठित लोगों ने रसीदें मांगना शुरू कर दिया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि केवल जनता को सामर्थ्यशाली बना कर ही, एक स्वीकृत विधा के रूप में प्रचलित भ्रष्टाचार की शक्ति को समाप्त किया जा सकता है न कि उन चंद लोगों की समस्याएं सुलझा कर जिन की हम तक पहुंच है अथवा एक उद्धारकर्ता 'माई-बाप' प्रशासक के रूप में अपनी व्यक्तिगत छवि स्थापित करके। व्यक्ति तो आते-जाते रहते हैं पर व्यवस्था को निरन्तर प्रत्युत्तरदायी बने रहना होगा। स्वतंत्र भारत में हमारी ज़िम्मेदारी ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो अपनी समस्याओं को अपनी भाषा में समझ सकें, अपना काम कर सकने में सक्षम हों, न कि ऐसे आश्रितों की संख्या में वृद्धि करना जो अपनी समस्याओं के हल के लिए नेताओं या सहायकों पर निर्भर रहते हों और अपनी कमज़ोरियों में ही अपनी पहचान ढूंढते हों। हमें स्मरण रखना चाहिए कि अच्छे आश्रित बुरे नागरिक बनते हैं और अच्छे नागरिक सशक्त समाज बनाते हैं।

पुणे, महाराष्ट्र, में जो काम गौतम कर रहे हैं, वही काम आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक जैसे कई अन्य राज्यों में पहले से ही हो रहा है। इस प्रकार की आदार्शोन्मुखता, सत्यनिष्ठा, दृढ़संकल्प, राष्ट्रप्रेम तथा जनता के प्रति सम्मान की भावना को लेकर, ये होनहार युवक आइएएस अधिकारी, केन्द्र और राज्यों में अपने वरिष्ठ सहयोगियों के साथ मिल कर सरकार में फैले भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष तथा सत्यनिष्ठा की पुनः स्थापना कर सकते हैं।

अब मैं उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव, योगेन्द्र नारायण की एक प्रशंसनीय पहलकदमी का उल्लेख करना चाहूंगा। उन्होंने सभी विभागाध्यक्षों के नाम पत्र लिख कर उन्हें 'नए ढंग से' सोचने के लिए आमंत्रित भी किया है और अनुरोध भी जिससे प्रशासन के स्वरूप में सुधार हो सके तथा अच्छे राज्यशासन की स्थापना हो सके। 27 नवंबर 1999 को भेजा गया उनका पत्र नीचे उद्धृत है :

प्रशासन हमारा पेशा है। इस नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम राज्य के नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित बनाने के लिए आवश्यक परिवर्तन लाना

प्रारंभ करें। इसके लिए यह ज़रूरी है कि प्रत्येक विभाग के कामकाज की समीक्षा की जाए और जनता की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए कार्यप्रणालियों में संशोधन किया जाए। दूसरे शब्दों में, आपको अपने स्तर पर अपने क्षेत्रीय संगठनों तथा प्रशासन के ऐसे सभी स्तरों की सम्पूर्ण समीक्षा करनी होगी जहां एक नागरिक प्रशासन के सीधे सम्पर्क में आता है। मेरे विचार में एक अच्छे राज्यशासन का सामान्य लक्षण यह है कि उसके संचालन में निरन्तर नवीकरण होता रहे और पुरानी, बोझिल कार्यविधियों का स्थान नए, गतिशील विचार लेते रहें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप समय-समय पर अपने विभाग के 'नीतिनिर्धारण कक्ष' का लाभ उठा सकते हैं। 'आइएएस' में 'आइ' का अर्थ केवल 'इंडियन' - भारतीय - न होकर 'इनोवेशन' - 'नूतनता' - भी होना चाहिए। हमें नई दृष्टि से सोचना होगा। हमें नई दृष्टि से प्रशासन चलाना होगा। इस संदर्भ में मैं यह भी चाहूंगा कि आप एक अच्छे राज्यशासन के कम से कम पांच प्रमुख सिद्धान्त बताएं। आप उन्हें क्रमांकित कर सकते हैं। फिर, इसके बाद, मुझे यह भी बताएं कि क्या आपकी अधिकतर विभागीय कार्यविधियां इन पांच सिद्धान्तों के अनुरूप हैं। यह एक निष्कपट अंतर्निरीक्षण होना चाहिए और यदि आप सचमुच यह महसूस करें कि एक अच्छे राज्यशासन के इन आदर्शों का पालन आपके विभाग में नहीं हो रहा, तो आप मुझे यह भी बताएं कि आपके विचार में किन परिवर्तनों के किए जाने से प्रशासन की संस्कृति में आवश्यक सुधार किया जा सकता है। मैं चाहूंगा कि आपके सुझाव और इस पत्र का उत्तर मुझे 15 दिसम्बर, 1999 तक मिल जाए।

उत्तर प्रदेश के आइएएस वर्ग के कई सदस्यों का एक और प्रशंसनीय प्रयास था गुप्त मतदान द्वारा अपने बीच के सर्वाधिक भ्रष्ट अधिकारियों की पहचान करने का उनका मुक्त संकल्प। इससे देश को यह पता चलता है कि आइएएस अधिकारी सेवा में व्याप्त इस गंभीर समस्या को लेकर स्वयं अत्यंत चिंतित हैं और सुधार के उद्देश्य से इस पर से पर्दा उठाने को उत्सुक हैं।

और अन्त में, यह अत्यंत उत्साहवर्द्धक है कि 1948 के आइ ए एस वर्ग के अधिकारियों ने, जिन्होंने 18-19 जून 1998 को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी में अकादमी के निदेशक, बी.एस., बासवान द्वारा आयोजित शिविर में भाग लिया था, आइएएस के समक्ष उपस्थित वर्तमान चुनौतियों पर विचार-विमर्श करके निम्नलिखित व्यापक घोषणापत्र को अंगीकार किया। इस घोषणा में सेवा के सदस्यों से आग्रह किया गया है कि वे वर्तमान समस्याओं का साहसपूर्वक सामना करें और एक अंच्छे भविष्य के लिए स्वयं को पुनः संस्कारित करते हुए देश के 'परिवर्तन दूत' बनें :

हमें, आइएएस के प्रथम वर्ग के सदस्यों को, गर्व है कि हमने स्वाधीनता के पश्चात् के वर्षों में राष्ट्र-निर्माण में योगदान दिया है। पर इस सेवा के समक्ष जो नई चुनौतियां अब उभर रही हैं, उन्हें देखते हुए यह अनिवार्य हो गया है कि वह स्वयं को नए सांचे में ढालें। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा असमंजीकरण एवं प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के इस वातावरण में, इस सेवा के 'परिवर्तन के माध्यम' बनने की भूमिका को सुदृढ़ करना आवश्यक हो गया है।

यह सेवा सत्यनिष्ठा और व्यावसायिक दृष्टिकोण, जनसेवा एवं राष्ट्र के प्रति कर्तव्यपरायणता जैसे उदात्त आदर्शों के प्रति सदा वचनबद्ध रही है। एक आत्मविश्वासी, समृद्ध और समरस भारत के निर्माण के नए कार्यक्रम में अधिकाधिक योगदान देने के उद्देश्य से, इस परम्परा को जारी रखा जाएगा। इस सेवा के सामने आज जो बहुत-सी चुनौतियां हैं, उनमें से हमारे मतानुसार तीन क्षेत्रों की ओर अविलम्ब ध्यान देने की आवश्यकता है :

(i) सामाजिक-राजनीतिक वातावरण तथा विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया : देश की राज्यव्यवस्था में उच्चतर सेवाओं की भूमिका;

(ii) उभरता हुआ आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम : सेवाएं परिवर्तन और विकास के उपकरणों के रूप में

(iii) बदलते हुए प्रशासनिक परिदृश्य में नैतिकता एवं कार्यकुशलता

उभरते हुए सामाजिक आर्थिक परिदृश्य की रूपरेखा पर प्रकाश नीचे डाला जा रहा है :

(i) ग्रामीण समुदायों और समाज-सेवा के प्रबंधन पर बल, विशेषकर शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में।

(ii) ग़ैर सरकारी संगठनों की सक्रिय सहभागिता तथा निजी क्षेत्र के मिलाप के साथ, विनियंत्रित एवं असमंजीकृत अर्थव्यवस्था का रुझान।

(iii) जनसंख्या संबंधी दबाव का प्रभाव जिससे सभी राष्ट्रीय समस्याएं अधिक बड़ा स्वरूप ग्रहण करेंगी। इससे विशेषकर शहरी आबादी में वृद्धि होगी और इतिहास में पहली बार वर्ष 2030 तक आधा भारत शहरों में बसने वाला हो जाएगा। इस के परिणामस्वरूप सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक स्थायित्व पर संकट आने की संभावना है, विशेषतः उस स्थिति में जब शहरी भारत के शिक्षित और संगठित क्षेत्रों द्वारा चरमराते ढांचे का अनुभव किया जाने लगेगा।

(iv) बढ़ती हुई अपेक्षाओं के अनुरूप साधनों के न मिल सकने के कारण राज्य की जीवनक्षमता का प्रश्न।

एक सरकारी कर्मचारी जिस परिवेश में काम करता है, उसे छोटे-छोटे दबावों से मुक्त रखने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही वह अपनी श्रेष्ठ सेवा प्रदान कर पायेगा और सार्वजनिक सेवा की चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगा। सेवारत अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी आस्थाओं पर अटल रहें और जनता, विशेषकर कमज़ोर वर्ग के लोगों के कल्याण के प्रति उनकी अभिरुचि सदा बनी रहे। सेवा की अभिप्रेरणा को सुदृढ़ करने तथा उन्हें राजनीतिक दबावों से बचा कर रखने की आवश्यकता है। यह तभी संभव होगा जब विकास की प्रक्रिया में सेवा को अपनी भूमिका के लिए समुचित मान्यता मिलेगी। इस परिवर्तन को सुनिश्चित बनाने के लिए सार्वजनिक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण और परिनियोजन में क्रमिक तबदीलियां लाने की आवश्यकता होगी तथा पुनरवलोकन और दक्षतावरोध के नियमों को अधिक प्रभावी बनाना पड़ेगा। अनुत्पादक क्षेत्रों में निरन्तर मुटाती हुई सरकारी सेवाओं के आकार में कमी करने की आवश्यकता है।

वर्ष 1991 में देश में महत्वपूर्ण सुधार हुए। यह एक महत्वपूर्ण घटना का वर्ष था क्योंकि इस वर्ष में पहली बार अर्थव्यवस्था को सुनियोजित रूप से मुक्त किया गया और अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में कई परिवर्तन किए गए। इसके साथ ही राज्य एवं आर्थिक क्षेत्र के संकुचन की प्रक्रिया का प्रवर्तन भी हुआ है। सेवा के संबंध में हमारा यह मानना है कि विकास की प्रक्रिया में अपनी नई भूमिका निभाने की दृष्टि से इस के लिए आवश्यक है कि यह विकास की प्रक्रिया में केवल 'करने वाली' ही न रह कर 'सुसाध्यक' की अपनी नई भूमिका के निर्वाह के लिए भी स्वयं को तैयार करे।

पंचायती राज संस्थाओं के पुनःप्रवर्तन से भी काम के परिवेश में परिवर्तन हुआ है और सेवा को इस यथार्थ को ध्यान में रखते हुए कि यह संस्थाएं भी विकास की प्रक्रिया में सहभागी हैं, स्वयं को पुनःसंस्कारित करने की आवश्यकता है। इस परिवर्तित परिवेश में इसे नई प्रक्रियाओं को आत्मसात् करना होगा तथा एक ऐसी रणनीति तैयार करनी होगी जिससे जनता के हितों को अत्युत्तम ढंग से साधा जा सके। सेवा को चाहिए कि वह ग्रामीण और सामाजिक विकास के, विशेषकर स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्रों से संबंधित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को सफल बनाने में सहयोग दे और हिताधिकारियों को निर्णय-प्रक्रिया में अपने साथ लेकर चलें। पंचायती राज कार्यकर्ताओं को पुनःप्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे अपनी भूमिका को बेहतर समझ सकें और अपनी नई ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए स्वयं को पुनःसंस्कारित कर सकें। इस सारे काम के लिए, सार्वजनिक सेवकों को - विशेषकर निचले पदों पर - अपनी मनोवृत्ति में बुनियादी परिवर्तन लाना होगा, और इसके लिए वरिष्ठ कार्मिकों को निजी उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे।

अंत में, चिन्ता का एक और क्षेत्र, जिसकी ओर हमारे विचार में तुरंत ध्यान दिया जाना आवयक है : वह है सरकार में नैतिकता और कार्यकुशलता की अवधारणा का समूचा प्रश्न। पूरे समाज में नैतिकता के गिरते स्तर का रोना रोने का कोई लाभ नहीं है। सेवा को इस सत्य को स्वीकार करने तथा उससे उत्पन्न होने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार होना होगा। इसके लिए (i) निर्णय- प्रक्रिया को संस्थात्मक बनाना चाहिए; (ii) कानूनों और नियमों को सरल तथा पारदर्शी बनाना चाहिए; (iii) विवेकाधिकारों को न्यायोचित होना चाहिए तथा उनका प्रयोग विधिसम्मत ढंग से किया जाना चाहिए; (iv) जनता को जानकारी सुलभता के साथ उपलब्ध होनी चाहिए; (v) काम में विलम्ब को 'कदाचरण' मान कर उसके लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों को दण्डित किया जाना चाहिए; (vi) भ्रष्टाचार के मुकदमों की सुनवाई तेज़ी से होनी चाहिए; (vii) वरिष्ठ अधिकारियों को युवा पीढ़ी के लिए अनुकरणीय आदर्शों की भूमिका प्रस्तुत करनी चाहिए; और सबसे बढ़ कर, (viii) सार्वजनिक सेवा में अन्तर्निहित समर्पण की भावना पर बल देते हुए उसका मानवीय स्वरूप प्रतिष्ठापित किया जाना चाहिए।

अतएव, हम इस सेवा से जनता की वर्तमान अपेक्षाओं के अनुरूप स्वयं को पुनःसंस्कारित करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने का संकल्प करते हैं :

1. विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक तथा स्थायी कार्यपालकों के बीच की पूरक भूमिका की बेहतर समझदारी का विकास करना और उन दोनों के बीच पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग का वातावरण पैदा करना;
2. सम्बद्ध क्षेत्रों में विशेषज्ञता से स्वयं को लैस करना;
3. मात्र भौतिक तथा वित्तीय लक्ष्यों के निर्धारण से हट कर परिणाममूलक, वस्तुनिष्ठ निष्पादन-मूल्यांकन, कुशल क्रियान्वयन द्वारा ख़र्चों के अतिक्रमण पर नियंत्रण तथा पारदर्शी सार्वजनिक जवाबदेही को अपनाना;
4. नैतिक आचरण को फिर से लागू करने तथा सार्वजनिक कामकाज के विभिन्न सम्पर्क स्तरों से भ्रष्टाचार को दूर करने के प्रभावी तथा ठोस उपाय करना; और
5. यह स्मरण रखना कि यह सेवा बेहतर भविष्य के लिए परिवर्तन का माध्यम है और इसलिए, विकास एवं प्रगति के लिए उचित परिवेश तैयार करने की अपनी 'सुसाध्यक' की भूमिका को अधिक व्यापक बनाना।

हम इस संकल्प को इस विश्वास के साथ स्वीकार करते हैं कि इन अनुशंसाओं के अनुश्रवण और अनुवर्तन के लिए एक उचित तंत्र को स्थापित किया जाएगा।[9]

भारतीय सिविल/प्रशासनिक सेवा के प्रवर सदस्य श्री धर्मवीर ने, जिनकी आयु इस समय 94 वर्ष की है, एक हृदयस्पर्शी तथा प्रेरणाप्रद पहलकदमी की है। उन्हें

भारतीय प्रशासन का व्यापक अनुभव है : उन्होंने हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्रियों, जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री तथा इंदिरा गांधी के सान्निध्य में काम किया है तथा कैबिनेट सचिव और राज्यपाल जैसे देश के कुछ उच्च पदों को सुशोभित किया है। कैबिनेट सचिव तथा संबद्ध मुख्य सचिवों के माध्यम से, 10 दिसम्बर 1999 के अपने पत्र में, प्रत्येक आइएएस अधिकारी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने अनुरोध किया है कि वे अपने कर्तव्यों के पालन में निम्नलिखित चार पथदर्शी सिद्धान्तों पर निष्ठापूर्वक स्थिर रहते हुए सरकार का सहयोग करें :

1. सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा।
2. अपने मंत्रियों को देश के संविधान और कानूनों के अनुसार सलाह देना, न कि उनको खुश करने के उद्देश्य से ऐसी सलाह देना जो उन्हें पसंद आए और स्वीकार्य हो।
3. अपना प्रत्येक काम करते समय आपको उन बुराइयों का अहसास होना चाहिए जिनसे आपकी 40 प्रतिशत जनता पीड़ित है अर्थात् दरिद्रता, निरक्षरता तथा चिकित्सा सुविधा का अभाव, इत्यादि। आप मंत्रियों के नहीं, जनता के सेवक हैं और आप से अपेक्षित है कि आप इस बात को पूरी तरह समझते हुए सम्पूर्ण निष्पक्षता तथा जागरूकता के साथ जनता की सेवा करें कि अपने देश की 40 प्रतिशत जनसंख्या में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए क्या करना मुनासिब है। प्रजातंत्र के 50 से भी अधिक वर्षों में, हमें अब तक इन बुराइयों को दूर कर देना चाहिए था और वे दूर इसलिए नहीं हुईं क्योंकि हमारे अपने चरित्र में ख़ामियां रही हैं।
4. मामलों का निपटान संक्षिप्त तथा तत्पर आदेशों से करें। इस बात का कोई कारण नहीं है कि अंतिम निपटान होने से पहले मामले महीनों-महीनों तक एक मेज़ से दूसरी मेज़, एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी, तक चक्कर काटते रहें।

मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि सेवा का प्रत्येक सदस्य उपरोक्त बहुमूल्य सम्मति का पालन करेगा और, धर्मवीर के शब्दों में, 'एक देशभक्त' के रूप में आचरण करेगा।

इस सारे घटनाक्रम से यह विश्वास पुष्ट होता है कि पूरे देश में गंभीर उत्तरदायित्वों के पदों पर स्थित आइएएस सदस्य अपने सम्मिलित प्रयत्नों से देश के सभी प्रशासनिक स्तरों पर पारदर्शिता, जवाबदेही, कार्यकुशलता और सत्यनिष्ठा की पुनःस्थापना करने में सक्षम हैं। इस काम को करने के लिए, देश में आइएएस से बेहतर स्थिति में और कोई इकाई नहीं है। आज, जब देश नई सहस्राब्दी की दहलीज़ पर खड़ा है, तो इस सेवा के अग्रणी सदस्यों - केन्द्र में कैबिनेट सचिव

और राज्यों में मुख्य सचिवों - का यह महान्, अनपहार्य तथा ऐतिहासिक उत्तरदायित्व है कि वे दृढ़संकल्प के साथ, पर बिना आडम्बर के, एक अत्यावश्यक आन्दोलन के सूत्रधार बनें ताकि देश की सारी एक अरब जनता को एक ऐसा सुप्रशासित भारत मिल सके जो उनके कल्याण के लिए अत्यंत आवश्यक है। एक बार ऐसा प्रयास चल निकलने से, देश एक ईमानदार राज्यव्यवस्था, एक नैतिकतामूलक समाज और एक स्वच्छ व्यापारिक वातावरण की दिशा में विश्वासपूर्वक बढ़ सकता है जैसा कि अगले अध्यायों में स्पष्ट किया गया है।

अंत्यसंकेत

1. अध्याय 4।
2. माधव गोडबोले, 'कॅरपशन, पॉलिटिकल इंटरफ़ियरेंस एंड द सिविल सर्विस', एस गुहन तथा सेम्युअल पाल (सं.), *कॅरपशन इन इंडिया - एजेंडा फ़ार एक्शन*, विज़न बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 62।
3. चंदन मित्रा, *द कॅरप्ट सोसायटी*, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 27।
4. माधव गोडबोले, उप.उ. 1997, पृष्ठ 61,62।
5. *पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट*, खंड 3, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, पैरा 105.5, पृष्ठ 1574।
6. *पालिसी रिसर्च - द एशियन मिरेकल : इकोनॉमिक ग्रोथ एंड पब्लिक पॉलिसी*, वर्ल्ड बैंक, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, वाशिंगटन डी.सी., 1993, पृष्ठ 175,176।
7. *एन्युअल एब्स्ट्रैक्ट ऑफ़ स्टैटिस्टिक्स*, सैंट्रल स्टैटिस्टिकल ऑफ़िस, एचएमएसओ, नं. 84-132, 1945।
8. *पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट*, खंड 1, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 246।
9. बी.एस. बासवान, निदेशक, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी की अनुमति से पुनरुद्धृत।

अध्याय 11

एक ईमानदार राज्य व्यवस्था की ओर

यह एक स्वतः स्पष्ट तथ्य है कि नैतिक आचरण ही प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था का एकमात्र सुरक्षित आधार है। 19 नवम्बर, 1863 को गैटिसबर्ग में दिए गए भाषण में अब्राहम लिंकन के ऐतिहासिक शब्दों में प्रजातंत्र 'जनता की, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए सरकार है।' यह प्रत्येक नागरिक को कानून के अनुरूप समानता और स्वतंत्रता की गारंटी देती है। एक प्रजातांत्रिक सरकार के लिए आवश्यक है कि वह जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए कामकाज करे। यह आवश्यक है कि इसकी तमाम गतिविधियां नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित हों। लॉर्ड एक्टन ने स्वाधीनता की परिभाषा इसे 'अंतश्चेतना का साम्राज्य' बताते हुए यह कह कर की थी कि इसका अर्थ 'विवेक पर विवेक का शासन है न कि स्वेच्छा पर स्वेच्छा का।'[1] प्रजातंत्र के लिए भी यही परिभाषा सर्वथा उपयुक्त है।

भारत का संविधान अपने शब्द तथा अर्थ, दोनों में, उतना ही प्रजातांत्रिक है, जितना कि किसी अन्य सुसंस्थापित प्रजातंत्र का। पर यहां हम भारत के संविधान की अंतर्वस्तु की चर्चा नहीं कर रहे अपितु उस मूलभूत सिद्धान्त की बात कर रहे हैं जो जनता द्वारा निर्वाचित राजनीतिक नेताओं के नियंत्रण और निर्देशन में किए जाने वाले शासन को अनुप्राणित और प्रेरित करता है। उस सिद्धान्त को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री द्वारा 15 अगस्त 1947 के दिन खुले, स्पष्ट एवं सुदृढ़ शब्दों में व्याख्यायित तथा अभिज्ञापित किया जाना चाहिए था। और यह सिद्धान्त होना चाहिए था, 'सरकार के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिकता'।

स्वाधीनता के उस भाव-भरे क्षण में, राष्ट्र के नेता और शासनाध्यक्ष द्वारा दिये गए ऐसे सन्देश ने प्रत्येक कर्मचारी के हृदय में घर कर लिया होता तथा इसने राष्ट्र के कार्य की प्रत्येक शाखा - विधायिका, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका - को ईमानदारी के रंग में रंग दिया होता। भावी प्रशासन पर भी इसका प्रभाव बंधनकारी हुआ होता। जैसा कि हम देख आए हैं, नवस्वाधीनता-प्राप्त सिंगापुर राज्य की आधारशिला रखते हुए ली क्वान यू ने साफ़-साफ़ शब्दों में, सर्वोच्च प्राथमिकता निष्पक्ष भाव से, जनता के सर्वश्रेष्ठ हितों को ध्यान में रख कर किए जाने वाले ईमानदार एवं कार्यकुशल प्रशासन को दी थी। और सिंगापुर आज विश्व के सब

से ईमानदार तथा सर्वश्रेष्ठ प्रशासित देशों में है। पर एक अरब की जनसंख्या वाले, संसार के सर्वाधिक आबादी वाले प्रजातंत्र की समस्याओं की चर्चा करते हुए एक ऐसे देश का उदाहरण देना शायद अन्यायसंगत होगा, जिसकी गणना संसार के सबसे छोटे राज्यों में होती है और जिसकी आबादी तीस लाख से भी कम है। अतः आइए हम बराबरी का एक उदाहरण लें - विश्व के सबसे शक्तिशाली प्रजातंत्र, संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण।

1789 में, नए संघीय संविधान के अंतर्गत जॉर्ज वाशिंगटन संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति बने।

अपने प्रशासन के प्रारंभ में राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने चरित्र की दृढ़ता को नई नियुक्तियों - विशेषकर नीतिनिर्धारकों तथा परिचालन कार्मिकों - के लिए सर्वप्रथम मानक के रूप में मान्यता दी। चारित्रिक दृढ़ता को व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के लक्षणों द्वारा परिभाषित माना गया।

राष्ट्रपति वाशिंगटन ने जिन कानूनों पर सब से पहले हस्ताक्षर किए, उनमें एक वह था जिसके अंतर्गत विभागीय अध्यक्षों को विभागों के अधिकारियों तथा क्लर्कों के आचरण से संबंधित विधिसम्मत विनियमों के निर्धारण के अधिकार दिए गए थे।[2]

अपने विदाई भाषण में, राष्ट्रपति वाशिंगटन ने शासकीय नैतिकता की प्रभावोत्पादकता का यत्र-तत्र उल्लेख किया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि सरकार के प्रत्येक विभाग के प्रशासन में, संविधान के अनुरूप, 'बुद्धिमत्ता और गुणवत्ता की मुहर होगी'। संविधान तथा देश के कानूनों के पालन पर बल देते हुए उन्होंने कहा, 'सत्ता तथा सरकार की स्थापना के जनाधिकार का आदर्श स्वयं इस सत्य को पहले से मान कर चलता है कि स्थापित सरकार के आदेशों का पालन प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होगा।'

अपने भाषण में एक अन्य स्थान पर राष्ट्रपति ने कहा : 'यह एक ठोस सच्चाई है कि एक जनतंत्रीय सरकार का आवश्यक प्रेरणा स्रोत सद्‌गुण अथवा नैतिकता है।'

आगे चल कर उन्होंने सरकार में ईमानदारी पर बल दिया, 'मैं इस लोकोक्ति को कि ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ नीति है, सार्वजनिक मामलों में भी उतना ही अनुपालनीय मानता हूं, जितना निजी मामलों में'।

अपने भाषण की समाप्ति से पूर्व उन्होंने ऐसे विचारों में अपना विश्वास व्यक्त करते हुए कहा : 'अपने सरकारी कर्तव्यों के निर्वाह के दौरान मैं उन सिद्धान्तों का कितना पालन कर सका हूं, जिनका उल्लेख मैंने किया है, उसकी साक्षी आपको सार्वजनिक रिकार्डों और मेरे आचरण से संबंधित अन्य प्रमाणों से मिल सकेगी।

जहां तक मेरा अपना प्रश्न है, मेरी अन्तरात्मा मुझे यह विश्वास दिलाती है कि मैं कम से कम अपनी समझ के अनुसार उन्हीं के पथ-प्रदर्शन में चलता रहा हूं।[3]

संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन में 'नैतिकता' शब्द को उच्च दृष्टिगोचरता तथा व्यापकता प्राप्त है। अमेरिकी कांग्रेस के सभी सदस्यों तथा कैबिनेट स्तर के मंत्रियों सहित संघीय सरकार के सर्वोच्च पदाधिकारियों और सभी कर्मचारियों द्वारा नैतिक आचरण किए जाने को स्पष्ट तथा सुदृढ़ कानूनों द्वारा सुनिश्चित किया गया है। नैतिकता के कानूनों के दो बड़े स्रोत संयुक्त राज्य संहिता का खंड 18 तथा 'सरकार में नैतिकता अधिनियम-1978' हैं। इस बाद वाले विधेयक को 'नैतिकता में सुधार अधिनियम-1989' के अंतर्गत व्यापक रूप से संशोधित कर दिया गया है।

नैतिकता का कार्यक्रम निम्नलिखित दो अन्तर्भूत अवधारणाओं पर आधारित है :

1. कर्मचारी सरकारी पद का उपयोग निजी हित के लिए नहीं करेंगे, और
2. कर्मचारी निष्पक्ष भाव से काम करेंगे तथा किसी निजी संगठन अथवा व्यक्ति को वरीयता नहीं देंगे।

राष्ट्रपति के कार्यपालक आदेश संख्या 12674 दिनांक 12 अप्रैल 1989 (कार्यकारी आदेश संख्या 12731 के अंतर्गत संशोधित) द्वारा, 'सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के नैतिक आचरण संबंधी सिद्धान्तों' का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इनमें से एक नीचे उद्धृत किया गया है :

धारा 101. नैतिक आचरण के सिद्धान्त

इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि प्रत्येक नागरिक संघीय सरकार की सत्यनिष्ठा पर पूर्ण विश्वास कर सके, प्रत्येक संघीय कर्मचारी नैतिक सेवा के उन मूलभूत सिद्धान्तों का सम्मान तथा पालन करेगा जिन्हें इस आदेश की धारा 201 और 301 के अन्तर्गत उद्घोषित विनियमों के अनुसार क्रियान्वित किया गया है :

(ए) लोक सेवा, एक सार्वजनिक ट्रस्ट है और कर्मचारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे संविधान, कानूनों तथा नैतिक सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा को निजी हित से ऊपर समझें।

स्पष्ट रूप से इस सारे कानून का मन्तव्य यह है कि सभी संघीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों के मन और मस्तिष्क में यह सिद्धान्त घर कर जाए कि अपने कार्यालयीन कर्तव्यों के निर्वाह में उन्हें न केवल संबंधित कानूनी प्रावधानों का ही, अपितु नैतिक सिद्धान्तों का पालन भी करना है।

ये नैतिक सिद्धान्त सभी सभ्य समुदायों तथा सुसंस्थापित राज्यव्यवस्थाओं के लिए एक जैसे हैं।

'सार्वजनिक अधिकारियों' के लिए भ्रष्टाचार के अपराध से संबंधित कानून व्यापक है और इसमें इस संबंध में कोई अस्पष्टता या भ्रम की गुंजाइश नहीं है कि उक्त शब्द के दायरे में कौन आता है और कौन नहीं। इस संदर्भ में निम्नलिखित उद्धरण प्रासंगिक है :

खंड 18 - अपराध एवं दंड प्रक्रिया कार्यविधि भाग 1 - अपराध अध्याय 2 - रिश्वत, घूस तथा हितों में विरोध

धारा 201 - सार्वजनिक अधिकारियों और गवाहों द्वारा रिश्वतखोरी:

(ए) इस धारा के उद्देश्य से :

(i) 'सार्वजनिक अधिकारी' पद का अर्थ है, कांग्रेस का सदस्य, प्रतिनिधि, अथवा स्थानिक आयुक्त - ऐसा अधिकारी जिसने इस संबंध में अर्हता पहले या बाद में प्राप्त की हो, अथवा कोई अधिकारी, या कर्मचारी या व्यक्ति, जो संयुक्त राज्य की ओर से अथवा वहां की सरकार के किसी विभाग, एजेंसी या शाखा, जिनमें कोलम्बिया का ज़िला शामिल है, के लिए, या उसकी ओर से, ऐसे किसी विभाग, एजेंसी या सरकारी शाखा के अधीनस्थ या अधिकार प्राप्त हो कर किसी भी सरकारी कार्यकलाप से संबंध रखता हो, या कोई ज्यूरी सदस्य ...

सरकार में नैतिकता के सर्वत्र 'संदर्शन' के संबंध में एक अंतिम बात और। यह निष्प्रयोजन नहीं है कि सरकार में सत्यनिष्ठा को लागू करने से संबंधित सारे काम का समायोजन *सरकारी नैतिकता के संयुक्त राज्य कार्यालय* द्वारा किया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका धर्मनिरपेक्षता के सुदृढ़तम गढ़ों में से एक है। वहां कोई सरकारी धर्म नहीं है और प्रत्येक नागरिक को अपनी पसंद के धर्म को मानने की स्वतंत्रता है। धर्म को पक्के तौर पर एक निजी मामला समझा जाता है और वहां के सरकारी प्रशासन में कोई भी किसी धर्म को - बहुसंख्यक ईसाई धर्म को भी - खुले रूप में अथवा चुपके-छिपके लादने का प्रयत्न नहीं करता। सभी प्रमुख धर्मों तथा उनके अगणित सम्प्रदायों के अपने-अपने अनुयायी हैं और वे सब केवल अमेरिकियों की तरह इकट्ठे रहते हैं। कोई किसी भी समुदाय के लोगों की धार्मिक भावनाओं को आहत करने वाली बात कहने या ऐसा कोई काम करने की बात कभी सोचता तक नहीं। अपने व्यक्तिगत धर्म के अतिरिक्त, सभी मामलों में, संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रत्येक नागरिक अपने देश और उसके संविधान के प्रति सम्पूर्ण तथा अप्रतिबन्धित निष्ठा रखता तथा उसको व्यक्त करता है। यह वास्तविक धर्मनिरपेक्षता है। परन्तु यूएसए में, धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या या उसका आचरण नीतिनिरपेक्षता की अवधारणा के रूप में नहीं है। इसके विपरीत, धर्मनिरपेक्षता को वहां नैतिकता

एवं सदाचार के सिद्धान्तों के साथ दृढ़तापूर्वक, स्पष्ट एवं अवियोज्य रूप से संमिश्रित कर दिया गया है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्षता का युग्मन यदि नैतिकता और सदाचार के सिद्धान्तों के साथ न किया जाए तो उसमें आधारहीन, अर्थहीन तथा भ्रष्ट राज्यव्यवस्था के रूप में पतनोन्मुख होने की प्रवृत्ति पनपने लगती है। और सच्ची धर्मनिरपेक्षता के बिना नैतिकता के, चुपके-छिपके, बहुसंख्यक धर्म के प्रच्छन्न धर्मतंत्र का रूप धारण कर लेने की आशंका रहती है। इस प्रकार, धर्मनिरपेक्षता और नैतिकता, दोनों के सिद्धान्तों के दृढ़संकल्पपूर्वक अनुसरण से ही सच्चा प्रजातंत्र - जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन - सुरक्षित बनाया जा सकता है, न केवल वर्तमान अपितु आने वाली सभी पीढ़ियों के लिए भी।

पर यद्यपि नैतिकता के सिद्धान्तों के बिना शर्त एवं निरवरोध पालन को सुनिश्चित बनाने के लिए संवैधानिक और सांविधिक व्यवस्थाएं आवश्यक एवं अनिवार्य हैं, मानव-प्रकृति, उसके मन तथा सत्ता के विनाशकारी प्रभाव को देखते हुए, वे अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं। सरकार का नेतृत्व करने वालों के लिए आवश्यक है कि वे अनुकरणीय आदर्शों के प्रतिमान बनें। उन्हें उदाहरण द्वारा नेतृत्व प्रदान करना है। यही कारण है कि जॉर्ज वाशिंगटन के कई उत्तराधिकारियों ने अपने देश का प्रशासन चलाने में नैतिकता और सदाचार के सिद्धान्तों के प्रति सार्वजनिक रूप से अपनी निष्ठा व्यक्त की है। जॉन क्विंसी एडम्स के राष्ट्रपतिकाल के दौरान, राष्ट्रपति के एक मित्र पर, जो लेखा परीक्षक था, सरकारी धन के ग़बन का आरोप लगाया गया था। एडम्स ने सुनिश्चित किया कि उस व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए तथा उस पर मुकदमा चलाया जाए। इसका परिणाम यह हुआ कि वह दोषी सिद्ध हुआ और उसे जेल की सज़ा हुई। राष्ट्रपति एडम्स ने अपने मित्र के विश्वासघात पर अपनी व्यथा निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की:

> मेरे लिए यह बात लगभग किसी भी अन्य घटना से अधिक संतापकारी है कि मेरे प्रशासन के एक अधिकारी ने, जिसकी नियुक्ति में कुछ सीमा तक मेरी सिफ़ारिश का भी हाथ था, सार्वजनिक धन के एक भाग का ग़बन किया है। और यह सोचकर कि उस व्यक्ति के साथ मेरी निजी तथा गहरी मित्रता थी, इस विपत्ति की गंभीरता कहीं अधिक हो जाती है।[4]

आइए, युनाइटिड किंगडम का उदाहरण लें। प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर अपनी कथनी या करनी में निष्ठापूर्वक नैतिकता के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं। वे एक नए 'देने के युग' के सूत्रपात की बात करते हैं। वे अपने राजनीतिक दल के संसत्सदस्यों को याद दिलाते रहते हैं कि 'हम जनता के सेवक हैं। वे स्वामी हैं।' सत्यनिष्ठा के संबंध में वे आए दिन यह कहते रहते हैं : 'हमें सदैव स्वच्छ, अपितु स्वच्छ से भी स्वच्छतर होना चाहिए।' उनके दल के किसी सदस्य अथवा

कार्यकर्त्ता को लेकर यदि किसी अशिष्ट या अनुचित आचरण की घटना सामने आती है तो रात बीतते- बीतते उसका प्रतिफल भी उसके सामने आ जाता है। जैसे ही यह पता चला कि दो कैबिनेट मंत्रियों ने निर्धारित नियमों की मर्यादा का उल्लंघन किया है, उन मंत्रियों को तुरंत त्यागपत्र देना पड़ा।

युनाइटिड किंगडम में सार्वजनिक जीवन में सर्वोत्तम मानदंडों का पालन करने पर निरन्तर बल दिया जाता है। 1994 में, युनाइटिड किंगडम की सरकार ने एक उच्च स्तरीय समिति की नियुक्ति की थी। इसका नाम था 'सार्वजनिक जीवन के मानकों की समिति'। इसके अध्यक्ष राइट ऑनरेबल लॉर्ड नोलन थे तथा इसके सदस्य अत्यंत विशिष्ट व्यक्ति थे। इस समिति के, जिसे अब नोलन कमेटी के नाम से जाना जाता है, विचारार्थ विषय निम्नलिखित हैं[5] :

> सार्वजनिक पदों पर नियुक्त सभी व्यक्तियों के आचार संबंधी मानकों की जांच करना; इनमें वित्तीय और व्यावसायिक गतिविधियों से संबंधित व्यवस्थाएं भी शामिल हैं, तथा वर्तमान व्यवस्थाओं में ऐसे परिवर्तनों की अनुशंसाएं करना जो सार्वजनिक जीवन में उच्चतम मानकों के पालन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हों।
>
> इन उद्देश्यों से, सार्वजनिक पद के अन्तर्गत निम्नलिखित शामिल हैं
>
> मंत्री, सरकारी सेवक और सलाहकार; संसत्सदस्य और योरोपीय संसद के युनाइटिड किंगडम के सदस्य; सभी अविभागीय सार्वजनिक संस्थाओं और एनएचएस संस्थाओं के सदस्य तथा वरिष्ठ अधिकारी; ग़ैर-मंत्रीय पदाधिकारी, सार्वजनिक धन से होने वाले कामों का निष्पादन करने वाली अन्य संस्थाओं के सदस्य और वरिष्ठ अधिकारी; और स्थानीय प्राधिकरणों के निर्वाचित सदस्य तथा वरिष्ठ अधिकारी।

नोलन कमेटी ने बहुत-से मुख्य अध्ययन पूरे कर लिए हैं और नैतिक ढांचे में ऐसे दूरगामी परिवर्तनों की महत्वपूर्ण अनुशंसाएं की हैं जिनकी सीमा में रह कर सभी सार्वजनिक पदाधिकारियों को अपना काम करना चाहिए।

प्रधानमंत्री को दी गई अपनी रिपोर्ट में, नोलन कमेटी ने अन्य बातों के साथ, सभी सार्वजनिक पदाधिकारियों के आचरण का नियमन करने वाले कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की सिफ़ारिश की है। इन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

सार्वजनिक जीवन के सात सिद्धान्त

निःस्वार्थनिष्ठता

सार्वजनिक पदाधिकारियों के केवल जनहित को सामने रख कर निर्णय करने

चाहिए। उन्हें ऐसा अपने, अपने परिवारों या अपने मित्रों के वित्तीय अथवा अन्य भौतिक लाभों की प्राप्ति के लिए नहीं करना चाहिए।

सत्यनिष्ठा

सार्वजनिक पदाधिकारियों को बाहर के किन्हीं व्यक्तियों या संगठनों के ऐसे किसी वित्तीय या अन्य प्रकार के आभार तले नहीं आना चाहिए जिसके कारण उनके सरकारी कर्तव्यों के निर्वाह पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़े।

विषयनिष्ठता

सार्वजनिक कामकाज करते हुए, जिसमें सार्वजनिक नियुक्तियां करना, ठेके देना, या पुरस्कारों और लाभों के वितरणार्थ व्यक्तियों की सिफ़ारिशें करना शामिल है, सार्वजनिक पदाधिकारियों को केवल योग्यता पर आधारित निर्णय करने चाहिए।

जवाबदेही

सार्वजनिक पदाधिकारी अपने निर्णयों और कामों के लिए जनता के प्रति जवाबदेह हैं और उनके पद के अनुरूप की जाने वाली किसी भी जांच-पड़ताल के लिए उन्हें प्रस्तुत रहना चाहिए।

खुलापन

जहां तक सम्भव हो, सार्वजनिक पदाधिकारियों को अपने द्वारा किए जाने वाले सभी कामों और निर्णयों में खुला व्यवहार करना चाहिए। उन्हें अपने निर्णय का कारण बताना चाहिए और जानकारी को तभी छिपाना चाहिए जब कि सार्वजनिक हित में यह सर्वथा आवश्यक हो।

ईमानदारी

अपने सार्वजनिक कर्तव्यों से जुड़े किसी भी काम में यदि उनका व्यक्तिगत हित आड़े आ रहा हो तो सार्वजनिक पदाधिकारियों को तुरंत उसकी घोषणा करनी चाहिए तथा इससे पैदा होने वाले किसी भी द्वंद्व को इस ढंग से मिटाना चाहिए जिससे सार्वजनिक हित सुरक्षित रहे।

नेतृत्व

सार्वजनिक पदाधिकारियों को उपरोक्त सिद्धान्तों का संवर्धन और समर्थन नेतृत्व तथा निजी उदाहरण द्वारा करना चाहिए।

ये सिद्धान्त सार्वजनिक जीवन के सभी पक्षों पर लागू होते हैं। कमेटी ने इनकी घोषणा किसी भी प्रकार से जनता की सेवा से जुड़े सभी लोगों के हित के लिए की है।

उपरोक्त 'सात सिद्धान्त', *सार्वजनिक जीवन के मानकों की कमेटी की तीसरी रिपोर्ट* में दिये गए हैं। यह रिपोर्ट कमेटी के अध्यक्ष, लॉर्ड नोलन द्वारा जुलाई 1997 में युनाइटिड किंगडम के प्रधानमंत्री को पेश की गई थी। अपनी रिपोर्ट के साथ भेजे गए पत्र में लॉर्ड नोलन ने 'सार्वजनिक पद के दुरुपयोग' नाम के एक नए सांविधिक अपराध को अमल में लाने का प्रस्ताव किया है जिसे रिश्वत और भ्रष्टाचार के न होते हुए भी अनुचित माना जाए।

सार्वजनिक जीवन के मानदंडों पर नोलन कमेटी द्वारा बनाए गए सात सिद्धान्त पूरे राष्ट्र में सार्वजनिक पदों पर नियुक्त सभी लोगों के लिए नैतिकता का ढांचा प्रस्तुत करते हैं। कमेटी ने इस सत्य की ओर ध्यान दिलाया है कि भ्रष्टाचार और कदाचार के उदाहरणों के बावजूद सरकारी अधिकारियों की एक बड़ी संख्या उच्च मानदंडों का पालन करती है। फिर भी लॉर्ड नोलन यह आवश्यक समझते हैं कि कदाचार की रोकथाम तथा उससे निपटने के प्रभावी उपायों का होना बहुत आवश्यक है।

जैसा कि पिछले एक अध्याय में संक्षेप से बताया गया है, प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने मंत्रियों के लिए एक आचार संहिता की प्रख्यापना की है।[6] अपने प्राक्कथन में प्रधानमंत्री ने, निम्नलिखित शब्दों में अपने उद्देश्य तथा भविष्यदृष्टि का वर्णन किया है :

> इस संहिता को जारी करते हुए मैं एक बार फिर ब्रिटेन की जनता तथा उनकी सरकार के बीच विश्वास के बन्धन को पुनःस्थापित करने की अपनी व्यक्तिगत पुष्टि करना चाहूंगा। हम सब यहां सेवा करने के लिए हैं तथा हम सब को ईमानदारी के साथ तथा उन लोगों के हितों को ध्यान में रख कर उनकी सेवा करनी चाहिए जिन्होंने हमें विश्वास के पद प्रदान किए हैं।

मैं सभी मंत्रियों से अपेक्षा करूंगा कि वे इस संहिता के शब्दों तथा भावों के अनुरूप आचरण करें। अपने पदीय कर्तव्यों को औचित्य के सर्वोच्च मानकों के अनुरूप निभाने में मंत्रियों के लिए यह संहिता उपयोगी मार्गदर्शन तथा संदर्भ का स्रोत सिद्ध होगी।

मैंने इस दस्तावेज़ को प्रकाशित करने का निर्णय किया है क्योंकि खुलापन एक अच्छी, उत्तरदायी सरकार का महत्वपूर्ण अंग है। और हम इस खुलेपन का और अधिक विस्तार 'सूचना की स्वतंत्रता के अधिनियम' के माध्यम से करेंगे।

मेरी यह मान्यता है कि हमें इस संबंध में बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए कि मंत्री जवाबदेह कैसे हों तथा, उन्हें संसद और जनता द्वारा जवाबदेह कैसे बनाया जाए। संहिता का प्रथम पैरा इन उत्तरदायित्वों का निरूपण स्पष्टतापूर्वक करता है तथा यह गत मार्च में अपनाए गए मंत्रियों की जवाबदेही के हाउस ऑफ कामन्स के प्रस्ताव की धाराओं के अनुसार है।

मैं अपने सभी सहयोगी मंत्रियों से इस संहिता की अभिशंसा करता हूं।

मंत्रियों की आचार संहिता का प्रथम पैरा नीचे उद्धृत किया जा रहा है। इसमें आधारभूत महत्व के सभी विषयों पर स्पष्ट शब्दों में, मंत्रियों के लिए अनिवार्य दिशानिर्देश दिए गए हैं :

1. साम्राज्ञी के मंत्री

साम्राज्ञी के मंत्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्यों के पालन में संवैधानिक एवं व्यक्तिगत आचरण के उच्चतम मानकों को अपनाएंगे। विशेष रूप से उन्हें मंत्रियों के आचरण के निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन अवश्य करना होगा :

(*i*) मंत्रियों के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन अनिवार्य है।

(*ii*) मंत्रियों का संसद के प्रति यह कर्तव्य है कि वे अपने विभागों तथा अगला कदम उठाने वाली एजेंसियों की नीतियों, निर्णयों और कामों के प्रति जवाबदेह हों और उन्हें उनके लिए जवाबदेह ठहराया जाए।

(*iii*) यह सर्वोपरि महत्व का विषय है कि मंत्री संसद को सही और सच्ची जानकारी दें। यदि भूल से वे कोई ग़लत जानकारी दे देते हैं, तो शीघ्रातिशीघ्र सही स्थिति बताएं। जो मंत्री जानबूझ कर संसद को ग़लत जानकारी देते हैं, उनसे अपेक्षित है कि वे प्रधानमंत्री को अपना त्यागपत्र सौंप दें।

(*iv*) मंत्री, संसद तथा जनता के प्रति, जहां तक संभव हो, खुलापन अपनाएं। जानकारी देने से इंकार उसी स्थिति में किया जाए जब प्रकटीकरण जनहित में न हो। इस संबंध में निर्णय, संबंधित कानून तथा व्यवहार तथा सरकारी जानकारी की प्राप्ति के लिए सरकार की संहिता (द्वितीय संस्करण, जनवरी 1977) के अनुसार किया जाए।

(*v*) इसी प्रकार, सरकारी सेवाओं को मंत्रियों की ओर से तथा उनके आदेश पर संसदीय समितियों को कई बार गवाही देनी होती है। मंत्रियों को चाहिए कि वे इन सरकारी सेवकों के लिए ऐसा करने को अनिवार्य करें

कि गवाही देते समय वे सिविल सेवा संहिता (जनवरी 1996) में वर्णित अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के अनुसार, जहां तक संभव हो, सही, सच्ची और पूरी जानकारी दे कर उनकी सहायता करें।

(*vi*) मंत्रियों को चाहिए कि वे सुनिश्चित करें कि उनके सार्वजनिक कर्तव्यों और निजी हितों के बीच कोई द्वंद्व पैदा न होने पाए और न ही ऐसा प्रतीत हो कि कोई द्वंद्व है।

(*vii*) मंत्रियों को ऐसा कोई उपहार या आतिथ्य स्वीकार नहीं करना चाहिए जिससे उनके निर्णय पर किसी प्रकार की आंच आती हो अथवा उन्हें किसी अनुचित आभार तले दबना पड़े या तर्कसम्मति से ऐसा लगता हो कि निर्णय पर आंच आ सकती अथवा आभार का दबाव पड़ सकता है।

(*viii*) हाउस ऑफ़ कॉमन्स में जो मंत्री हैं, उन्हें अपनी मंत्री की भूमिका तथा अपने क्षेत्र के सदस्य की भूमिका को अलग अलग रखना चाहिए।

(*ix*) मंत्रियों को किसी भी स्थिति में (सरकारी) साधनों का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यों से नहीं करना चाहिए। *उन्हें सरकारी सेवा की राजनीतिक निष्पक्षता का सम्मान करना चाहिए और सरकारी सेवकों से ऐसा कुछ करने के लिए नहीं कहना चाहिए जो सिविल सर्विस संहिता के विरुद्ध हो।*

(*नोट* : कथन पर बल हमारी ओर से दिया गया है)

मंत्रियों की आचार संहिता द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि वे अपनी व्यापक शक्तियों का उपयोग तथा निर्णय करने का काम तर्कसंगत आधार पर करेंगे तथा ऐसा करते समय वे सदा उन लोगों के हित का ध्यान रखेंगे जिन्होंने इस सरकार को चुना है और जो सर्वोपरि स्वामी हैं। इस स्थिति में, इस प्रकार, किसी के लिए एकपक्षीय अथवा मनमाने ढंग से काम करने की गुंजाइश नहीं है। इस संबंध में *मंत्रियों की आचार संहिता - मंत्रियों के आचार और दिशानिर्देशों* से संबंधित संहिता के अनुभाग 5 के पैरा 56, 57 और 58 प्रासंगिक हैं। इसलिए उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है :

5. मंत्री और सरकारी सेवक

56. मंत्रियों का कर्तव्य है कि वे नीतिगत निर्णय करते समय सरकारी सेवकों द्वारा सूझ-बूझ के साथ, निष्पक्ष भाव से दी गई राय के साथ-साथ अन्य बातों और सम्मतियों का भी उचित आदर करें और उनको यथोचित महत्व दें। उनका कर्तव्य है कि वे सरकारी सेवकों की राजनीतिक निष्पक्षता का आदर करें और सरकारी सेवकों से ऐसा कुछ करने के लिए न कहें जो

सिविल सेवा संहिता के विरुद्ध हो। उनका यह कर्तव्य है कि वे ध्यान रखें कि नियुक्तियों के मामले में उनके द्वारा दलगत उद्देश्यों से अपने प्रभाव का दुरुपयोग न किया जाए। और उनका कर्तव्य है कि अपने अधीन काम करने वालों की सेवाओं के नियमों और शर्तों के मामले में एक अच्छे नियोक्ता के उत्तरदायित्वों का पालन करें। सरकारी सेवकों से ऐसा कोई काम करने को नहीं कहना चाहिए जिससे उनकी राजनीतिक निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लगे अथवा यह आलोचना हो कि सार्वजनिक कोष से जिन्हें वेतन दिया जाता है, उन लोगों का उपयोग दलगत राजनीतिक उद्देश्यों से किया जा रहा है।

लेखाधिकारी की भूमिका

57. विभागाध्यक्षों तथा कार्यपालक एजेंसियों के मुख्य कार्यपालकों की लेखाधिकारियों के रूप में नियुक्ति की जाती है। इस भूमिका का तत्वार्थ उनकी निजी ज़िम्मेदारी है - उस सार्वजनिक धन के उपयोग के औचित्य और नियमितता की जिसके लिए उन्हें ज़िम्मेदार बनाया गया है; उचित हिसाब-किताब रखने की; नुकसान और अपव्यय को रोकने की तथा साधनों के कुशल और प्रभावी उपयोग की। लेखाधिकारी संसद के प्रति मंत्रियों की जवाबदेही के ढांचे के अन्तर्गत, अपने विभागों की नीतियों, कामकाज और आचरण के बारे में सार्वजनिक लेखा समिति को व्यक्तिगत रूप से जवाब देते हैं।

58. यह देखना लेखाधिकारियों की विशेष ज़िम्मेदारी है कि वे मंत्रियों को वित्तीय औचित्य और नियमितता, तथा मोटे-तौर पर प्रशासन में आर्थिक बुद्धिमत्ता और मितव्ययता, कुशलता, प्रभावकारिता तथा धन के सदुपयोग से संबंधित सभी पहलुओं पर ध्यान रख कर उचित सलाह दें। यदि किसी विभाग का प्रभारी मंत्री कोई ऐसा काम करने का विचार कर रहा है, जिसके अन्तर्गत होने वाले सौदे से लेखाधिकारी की सम्मति में, औचित्य अथवा नियमों की अवहेलना होती है, तो लेखाधिकारी लिखित रूप में उस प्रस्ताव पर अपनी आपत्तियों, उन आपत्तियों के कारणों और, सलाह के अस्वीकार किए जाने की स्थिति में, इस प्रकरण की, सूचना नियंत्रक महालेखापरीक्षक को देने की अपनी ज़िम्मेदारी की अभिव्यक्ति करेगा। यदि मंत्री इसके बावजूद अपने निर्णय के अनुसार काम करने का निश्चय करता है तो लेखाधिकारी उस काम को करने के लिए लिखित निर्देश मांगेगा और संबंधित काग़ज़ात नियंत्रक महालेखापरीक्षक के पास भेज देगा। यही कार्यविधि उस अवस्था में लागू होगी जिसमें लेखाधिकारी को

किसी काम पर खर्च होने वाले पैसे से होने वाले अनुकूल लाभ के संबंध में संदेह हो। इस कार्यविधि के अपनाए जाने पर सार्वजनिक लेखा समिति के लिए यह तय करना संभव होगा कि संबद्ध कार्य के लिए लेखाधिकारी निजीतौर पर ज़िम्मेदार नहीं है।

ज़ाहिर है कि मंत्रियों की आचार-संहिता के प्रस्तावों को बहुत सोच- समझ कर तैयार किया गया है ताकि पारदर्शी सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित किया जा सके।

संक्षेप में, प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने अपने सभी मंत्रियों से सार्वजनिक जीवन में सत्यनिष्ठा को प्रोत्साहन देने और सुरक्षा प्रदान करने तथा अपने उत्तरदायित्वों के प्रत्येक पहलू में उच्चतम आदर्शों का पालन करने को कहा है। मंत्री इन निर्देशों का स्वेच्छापूर्वक, प्रसन्नता से पालन करते हैं। जो पथभ्रष्ट हो जाते हैं, उन्हें तुरंत सरकार छोड़नी पड़ती है।

युनाइटिड किंगडम की नौकरशाही एक 'सिविल सेवा संहिता' द्वारा नियंत्रित है जिसके अंतर्गत सरकारी सेवकों के लिए सत्यनिष्ठा, राजनीतिक निष्पक्षता तथा संविधान द्वारा उचित रूप से स्थापित सरकार के प्रति वफ़ादारी के सिद्धान्तों का पालन अनिवार्य है। इस कोड में सरकारी सेवकों तथा मंत्रियों के संबंधों के विषय में भी स्पष्ट और बाध्यक दिशानिर्देश दिए गए हैं। दोनों के लिए ही नैतिकता के मानकों के अनुसार देश की सेवा करना आवश्यक है। संदर्भ के लिए यू.के. सिविल सेवा संहिता की सम्पूर्ण अन्तर्वस्तु नीचे उद्धृत की जाती है :

सिविल सेवा संहिता

1

सिविल सेवा की संवैधानिक एवं व्यावहारिक भूमिका, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा वस्तुनिष्ठता के साथ सरकारी नीतियां बनाने, सरकारी निर्णयों को क्रियान्वित करने तथा सरकार के दायित्व में आने वाली सार्वजनिक सेवाओं के प्रबंध में संविधान द्वारा विधिवत् स्थापित सरकार की सहायता करने की है, भले ही सरकार का राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ भी हो।

2

सरकारी सेवक साम्राज्ञी के सेवक हैं। संविधान के अनुसार, साम्राज्ञी मंत्रियों की सलाह के अनुसार काम करती हैं। और इस संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत, सरकारी सेवकों की वफ़ादारी संविधान द्वारा विधिवत् स्थापित सरकार के प्रति है।

3

इस संहिता को मंत्रियों के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के संदर्भ में जिन्हें 'मंत्रियों

की कार्यविधि के प्रश्नों' में निरूपित किया गया है, देखा जाना चाहिए। इनमें निम्नलिखित बातें शामिल हैं :

* संसद के प्रति जवाबदेही;
* सरकारी नीतियों, निर्णयों और कामों के बारे में संसद तथा जनता को जहां तक संभव हो, पूरी जानकारी देने और संसद तथा जनता को धोखा न देने और जानबूझ कर न बहकाने का कर्तव्य;
* सार्वजनिक साधनों का दलगत राजनीतिक उद्देश्य से प्रयोग न करने, सरकारी सेवा में राजनीतिक निष्पक्षता को कायम रखने और सरकारी सेवकों को किसी भी प्रकार से ऐसा कुछ करने के लिए न कहने का कर्तव्य जो सिविल सेवा संहिता के विरुद्ध हो;
* निर्णय लेते समय, सरकारी सेवकों द्वारा सूझ-बूझ और निष्पक्ष भाव से दी गई राय तथा अन्य बातों और सम्मतियों का भी उचित आदर करने एवं उन्हें यथोचित महत्व देने का कर्तव्य; और
* अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा संधियों के अंतर्गत दायित्वों सहित कानून के पालन करने तथा न्याय के प्रशासन को बनाए रखने का कर्तव्य।

इनके साथ इस संहिता की अंतर्वस्तु से सुपरिचित होने का कर्तव्य।

4

सरकारी सेवकों को संविधान द्वारा विधिवत् स्थापित सरकार की सेवा इस संहिता में वर्णित सिद्धान्तों के अनुसार, निम्नलिखित बातों को मान्यता देते हुए करनी चाहिए :

* मंत्री अथवा, स्थिति के अनुसार, अपने विभाग के प्रभारी के प्रति सरकारी सेवक की जवाबदेही;
* सार्वजनिक कर्तव्यों के समुचित एवं विधिसम्मत निर्वाह का सभी सार्वजनिक अधिकारियों का कर्तव्य;
* अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा संधियों के अंतर्गत दायित्वों सहित कानून के पालन करने तथा न्याय के प्रशासन को बनाए रखने का कर्तव्य; तथा
* प्रत्येक व्यवसाय के लिए निर्धारित नैतिक मानक।

5

सरकारी सेवकों को सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और ईमानदारी के साथ आचरण करना चाहिए। उन्हें बिना भय अथवा पक्षपात के मंत्रियों को ईमानदार और निष्पक्ष संलाह देनी चाहिए तथा निर्णय के लिए प्रासंगिक पूरी जानकारी मंत्रियों

को उपलब्ध करानी चाहिए। उन्हें मंत्रियों, संसद तथा जनता को धोखा नहीं देना चाहिए और जानबूझ कर गुमराह नहीं करना चाहिए।

6

सरकारी सेवकों को सार्वजनिक कामों को निपटाने में सहानुभूति, कार्यकुशलता तथा तत्परता से काम लेने तथा पूर्वाग्रह एवं कुप्रशासन से बचने का प्रयास करना चाहिए।

7

सरकारी सेवकों को सार्वजनिक धन के उचित, प्रभावी तथा कुशलतापूर्वक उपयोग को सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए।

8

सरकारी सेवकों को सरकारी कामकाज के दौरान मिलने वाली जानकारी का दुरुपयोग अपने अथवा दूसरों के निजी हित के लिए नहीं करना चाहिए। किसी तीसरे पक्ष से उन्हें ऐसी कोई लाभदायक वस्तु या सेवा प्राप्त नहीं करनी चाहिए जिससे तर्कसम्मति से ऐसा लगे कि यह उनके व्यक्तिगत निर्णय अथवा सत्यनिष्ठा के आड़े आ सकती है।

9

सरकारी सेवकों का व्यवहार ऐसा होना चाहिए जिससे उनके मंत्रियों का विश्वास उनमें बना रह सके और जिनके साथ किसी भावी प्रशासन में काम करना पड़े, उनके साथ भी वैसा ही संबंध स्थापित हो सके। उन्हें अपनी राजनीतिक गतिविधियों पर लगे प्रतिबंधों का अनुपालन करना चाहिए। सरकारी सेवकों का आचरण ऐसा होना चाहिए कि मंत्रियों तथा संभावित भावी मंत्रियों को यह निश्चय हो कि वे उन पर पूरी तरह भरोसा कर सकते हैं, तथा सिविल सेवा संविधान द्वारा विधिवत् स्थापित सरकार के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन करेगी तथा निष्पक्षभाव से उसकी सहायता करेगी, उसको सलाह देगी तथा उसकी नीतियों को कार्यान्वित करेगी।

10

सरकारी सेवकों को ऐसी किसी जानकारी का प्रकटीकरण, बिना अधिकार प्राप्त किए नहीं करना चाहिए जो सरकार के भीतर गोपनीय रूप से दी गई हो अथवा दूसरों से गोपनीय रूप से प्राप्त हुई हो। इस संहिता में जो कुछ भी दिया

गया है उसे, किसी जानकारी विशेष को गोपनीय रखने या उसके प्रकटीकरण करने से संबंधित वर्तमान सांविधिक अथवा निर्णयज कानून की बाध्यता से ऊपर नहीं माना जाना चाहिए। सरकारी सेवक होने के नाते जो कुछ जानकारी उनके पास है उसका अनधिकृत, अनुचित तथा असमय प्रकटीकरण करके उन्हें सरकारी नीतियों, निर्णयों और कामों को निष्फल या प्रभावित नहीं करना चाहिए

11

यदि किसी सरकारी सेवक को लगे कि उससे इस प्रकार का काम करने को कहा जा रहा है जो

* ग़ैर कानूनी, अनुचित अथवा अनैतिक है;
* संवैधानिक परंपराओं अथवा व्यावसायिक आचारसंहिता के प्रतिकूल है;
* कुप्रशासन की संभावना से युक्त हो सकता है; अथवा
* किसी अन्य प्रकार से संहिता से संगतिबद्ध नहीं है;

तो उसे इस मामले की विभागीय दिशानिर्देशों अथवा आचार नियमावली में वर्णित क्रियाविधि के अनुरूप रिपोर्ट करनी चाहिए। एक सरकारी सेवक को दूसरों की आपराधिक अथवा ग़ैर-कानूनी गतिविधियों के साक्ष्य की रिपोर्ट भी उचित प्राधिकारी को करनी चाहिए। यदि उसे किसी अन्य प्रकार से इस संहिता की अवज्ञा का पता चले अथवा उससे कोई ऐसा काम करने की अपेक्षा की जाए जिससे उसके अपनी अन्तशचेतना के विरुद्ध जाने का मूलभूत प्रश्न उठता हो, तो भी वह विभागीय कार्यविधि के अनुसार रिपोर्ट कर सकता है।

12

यदि किसी सरकारी सेवक ने 11वें पैरा में वर्णित मामले की रिपोर्ट विभागीय दिशानिर्देशों अथवा आचार नियमावली में बताई गई कार्यविधि के अनुसार कर दी है और उसे लगता है कि उसे प्राप्त प्रत्युत्तर उसके सरोकार से संबंधित विषय का युक्तिसंगत प्रत्युत्तर नहीं है तो वह इस मामले में सरकारी सेवा आयुक्त को लिखित रिपोर्ट भेज सकता है।

13

मंत्रियों के निर्णयों के परिणामस्वरूप जिन कामों को करना हो, उन्हें करने से इंकार करके अथवा उनसे तटस्थ रह कर, सरकारी सेवकों को सरकार की नीतियों, निर्णयों और कार्यों को विफल नहीं करना चाहिए। यदि 11वें और 12वें

अनुच्छेदों में वर्णित कार्यविधि के अन्तर्गत किसी विषय का समाधान सरकारी सेवक द्वारा मान्य आधार पर नहीं होता तो उसे या तो दिए गए निर्देशों का पालन करना चाहिए अथवा सरकारी सेवा से त्यागपत्र दे देना चाहिए। साम्राज्ञी की सेवा का त्याग करने के पश्चात् भी सरकारी सेवकों को गोपनीयता के अपने कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए।

ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण बात यह है कि सरकारी सेवकों से केवल इस बात की ही अपेक्षा नहीं की जाती कि वे सर्वदा सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता तथा ईमानदारी के साथ काम करेंगे पर इस बात की भी कि यदि मंत्री सरकारी सेवकों से कोई ऐसा काम करने को कहते हैं जिसे करने के लिए ग़ैर कानूनी, अनुचित अथवा अनैतिक साधन अपनाने पड़ें या ऐसे जो संवैधानिक परम्पराओं के विरुद्ध हों या फिर जिनसे प्रशासन में भ्रष्टता के आने की संभावना हो, तो उन्हें (सरकारी सेवकों को) उनके (मंत्रियों के) ऐसे किसी भी प्रयास का प्रतिरोध करना चाहिए। बाद की स्थिति में उनका यह कर्तव्य है कि वे मामले की रिपोर्ट स्वतंत्र अधिकारियों - जैसे, नियंत्रक महालेखापरीक्षक अथवा सरकारी सेवा आयुक्तों - को दें। इन प्रावधानों के द्वारा इस बात की पक्की व्यवस्था हो जाती है कि मंत्री तथा सरकारी सेवक, दोनों को अपना काम ईमानदारी से करना है और कोई भी अनुचित अथवा अनैतिक ढंग अपना कर बच नहीं सकता। दूसरे शब्दों में, यदि मंत्री सरकारी सेवकों पर नियंत्रण रख सकते हैं और उन्हें निर्देश दे सकते हैं तो सरकारी सेवक प्रभावी ढंग से मंत्रियों पर अंकुश रख सकते हैं।

आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री ने भी मंत्रियों के उत्तरदायित्व के आधारभूत सिद्धान्तों की निर्देशिका की घोषणा की है।[7]

एक संबद्ध उद्धरण नीचे दिया जाता है :

6. विभागों के साथ मंत्रियों के संबंध

आस्ट्रेलियाई लोक सेवा (एपीएस) इसलिए कायम की गई है कि वह सरकार को परामर्श दे सके तथा उसकी नीतियों को कार्यान्वित कर सके। यह सेवा कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित है। इनमें ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और आचरण का ऊंचा स्तर; जनता को न्यायसंगत सेवा प्रदान करना; मंत्रियों को बेबाक और व्यापक परामर्श देने की व्यवस्था; सरकार, संसद तथा समाज के प्रति प्रत्युत्तरदायित्व पर बल; दलगत-राजनीतिक-निष्पक्षता; तथा योग्यता पर आधारित स्टाफ़-नियुक्ति शामिल हैं।

यह आवश्यक है कि मंत्रियों तथा सार्वजनिक सेवकों के बीच विश्वास हो तथा इस विश्वास को स्थापित करने तथा कायम रखने के लिए दोनों का योगदान आवश्यक है। मंत्रियों को अत्यंत सावधानी बरतते हुए, सार्वजनिक सेवकों से ऐसा

कुछ करने को कहने से परहेज़ करना चाहिए जिससे एपीएस के सिद्धान्तों की अवज्ञा होती हो। ख़ासतौर पर उन्हें ऐसा कोई काम करने के लिए नहीं कहना चाहिए जिससे सार्वजनिक सेवकों की राजनीतिक-निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लग सकता हो।

मंत्री सलाह लेने के लिए कई स्रोतों का उपयोग कर सकते हैं, पर मुख्य रूप से उनको अपने निजी कार्यालय तथा विभागों से सलाह लेनी चाहिए। यह स्पष्ट है कि मंत्री सार्वजनिक सेवकों द्वारा दी गई सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं, पर यह आवश्यक है कि इस सलाह पर ध्यानपूर्वक तथा उचित तरीके से विचार किया जाए। ऐसी स्थिति में, जब कि मंत्री सार्वजनिक सेवक को सूचित कर दें कि उनकी सलाह पर पूरी तरह विचार कर लिया गया है फिर भी इसको पालन करने योग्य नहीं पाया गया, सार्वजनिक सेवकों को अपनी सलाह के माने जाने का आग्रह नहीं करते रहना चाहिए। परंतु सार्वजनिक सेवकों को इस बात की स्वतंत्रता है कि यदि उनकी समझ में किसी समस्या के पैदा होने की संभावना है अथवा संबंधित विषय पर पुनर्विचार के लिए कोई नई जानकारी सामने आई है, तो वे उस विषय को विचारार्थ दोबारा उठाएं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति के एक आदेश के अंतर्गत कार्यपालिका शाखा के सभी कर्मचारियों के लिए नैतिक आचरण के कठोर और स्पष्ट मानदंड निर्धारित किए गए हैं। इनका उद्देश्य संघीय सरकार के प्रति प्रत्येक नागरिक के विश्वास को सुनिश्चित बनाना है। राष्ट्रपति के कार्यपालक आदेश 12731 दिनांक 17 अक्तूबर 1990 की धारा 101 के अंतर्गत व्यवस्था है कि '(ए) सार्वजनिक सेवा एक सार्वजनिक न्यास है जिसमें कर्मचारियों से यह अपेक्षा है कि वे संविधान, कानूनों और नैतिक सिद्धान्तों के प्रति वफ़ादारी को व्यक्तिगत लाभ से अधिक वरीयता देंगे।' सरकारी सेवकों से अपेक्षा इस बात की की गई है कि उनकी निष्ठा संविधान और कानूनों के प्रति हो न कि किसी व्यक्ति के प्रति।

इस सब के बावजूद भी ऐसा नहीं है कि युनाइटिड किंगडम या आस्ट्रेलिया या संयुक्त राज्य अमेरिका में भ्रष्टाचार है ही नहीं। इन सभी देशों में निस्संदेह थोड़ा बहुत भ्रष्टाचार अवश्य है। युनाइटिड किंगडम की संसद के एक सदस्य ने संसद में प्रश्न पूछने के लिए पैसे लिये थे और/अथवा आतिथ्य स्वीकार किया था। जब एक जांच में उसे दोषी पाया गया, तो उसे जाना पड़ा। पुलिस के एक वर्ग - विशेषकर नशीले पदार्थों की तस्करी के मामलों से निपटने वालों - में भ्रष्टाचार के उदाहरण सामने आए हैं। स्थानीय सरकार के कार्यालयों में भी ऐसे ही कुछ उदाहरण मिले हैं। पर ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं और कभी-कभी ही नजर आते हैं। राजनीतिक वर्ग और नौकरशाही का एक बहुत बड़ा भाग निष्कलंक रूप से

ईमानदार है। स्कैंडेनेवियाई देशों - डेन्मार्क, फ़िनलैंड, स्वीडन और नार्वे - के राष्ट्रीय प्रशासन में सत्यनिष्ठा का स्तर सचमुच बहुत ऊंचा है और यही बात न्यूज़ीलैंड और सिंगापुर के संबंध में भी सच है। इसका कारण यह है कि इन देशों द्वारा अपने राजनीतिक वर्ग और नौकरशाहों की आवश्यकताओं का बहुत ध्यान रखा जाता है। वहां किसी को भ्रष्टाचार के विषय में सोचने तक की आवश्यकता नहीं है।

दुर्भाग्य से भारत की वर्तमान स्थिति, जैसा कि हम पहले ही देख आए हैं, बिल्कुल भिन्न है। देश भयंकर भ्रष्टाचार की मुट्ठी में जकड़ा हुआ है तथा स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है।

परन्तु भारत को किसी भी दशा में अराजकता के इस गर्त में डूबना नहीं है, न ही इसे डूबने दिया जा सकता है। यदि सर्वोच्च स्तर पर सुदृढ़ इच्छाशक्ति हो, तो अवश्य ही इस रुख़ को बदला जा सकता है। यह निश्चय ही संभव है। पर यह भी सच है, जैसा कि कई लोगों द्वारा कहा जाता है, कि ऐसा कोई जादुई डंडा नहीं है जिसके प्रयोग से भ्रष्टाचार को रातों-रात भगाया जा सके। परन्तु फिर भी रास्ता तो है। एक कठिन रास्ता, जिसे अपना कर भारत का नवनिर्माण हो सकता है - इस बार, नैतिकता को आधार बना कर। पर ऐसा तभी संभव है जब देश के नेताओं में राष्ट्र के राजनीतिक कार्यक्रम में भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करने के मुद्दे को सर्वोपरि स्थान देने की दृढ़ इच्छाशक्ति हो। साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध इस युद्ध को एकदम, सभी मोर्चों पर, सभी क्षेत्रों में तथा उन सभी लोगों से, जो पूरे देश में इस विनाशकारी काम में संलग्न हैं, एक साथ शुरू करने की योजना नहीं बनाई जा सकती।

जैसा कि हम देख चुके हैं, भारत में भ्रष्टाचार का आरंभ ऊंचे पदों से हुआ था और इसका रिसाव यह नीचे के स्तरों तक हुआ। अतएव सफ़ाई की प्रक्रिया भी ऊपर से ही आरंभ होनी चाहिए। इसलिए सर्वप्रथम, हमें ऐसी व्यवस्था को स्थापित करने के प्रयास करने होंगे जिसके अंतर्गत उच्चस्तरीय राजनीतिक नेता, अर्थात् मंत्री, संसत्सदस्य और विधायक तथा सर्वोच्च अधिकारीगण भ्रष्टाचार को अपनाने की किसी विवशता में न फंस कर अपना काम सत्यनिष्ठा तथा नैतिकता के सामान्य सिद्धान्तों पर अविचल रहते हुए कर सकें। तो आइए इस काम को हाथ में लें।

इतिहास से उपलब्ध सारी जानकारी इस बात की गवाही देती है कि एक पारदर्शी, नैतिकता पर आधारित और कार्यकुशल सरकारी प्रशासन अपने आप स्थापित नहीं हो जाता अपितु देश के सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व को इसकी स्थापना, संरक्षण और संपोषण करना होता है। यह भी एक मानी हुई बात है कि

देश के राज्यप्रशासन में सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित करने के लिए कम से कम दो निम्नलिखित तत्त्वों का होना आवश्यक है :

1. भ्रष्टाचार की रोकथाम और नियंत्रण तथा अपराधी पाए जाने वालों को जल्दी एवं निवारणार्थक दंड देने के लिए एक सुविचारित एवं व्यापक सांविधिक व्यवस्था तथा उसकी पूरक परम्पराएं, आचार संहिताएं आदि; और
2. सभी सार्वजनिक सेवकों के न्यायसंगत वेतनों के आरंभिक निर्धारण तथा उनके वार्षिक पुनरवलोकन एवं समुचित समायोजन के लिए एक उच्चस्तरीय एवं स्वतंत्र सांविधिक स्थायी तंत्र

भारत को अपनी राज्यव्यवस्था में इन दोनों तत्त्वों की अत्यधिक आवश्यकता है। जहां तक भ्रष्टाचार के निवारण और नियंत्रण तथा उसके साथ-साथ वेतनों के निर्धारण और वार्षिक समीक्षा के सांविधिक उपायों के लिए एक व्यापक कानूनी व्यवस्था का संबंध है, हमारा सुझाव है कि नीचे लिखे आठ प्रस्तावों को समुचित संसदीय विधेयकों का रूप देकर उनके क्रियान्वयन पर विचार किया जाए :

1. *निर्वाचन प्रणाली में भ्रष्टाचार की समाप्ति। देश के लब्धप्रतिष्ठ राजनीति-शास्त्रियों तथा कानून विशेषज्ञों की एक निर्वाचन-सुधार समिति की नियुक्ति।*

जैसा कि सुविदित है, भारत की वर्तमान चुनाव प्रणाली भ्रष्ट व्यवहारों तथा आपराधिक तत्त्वों में उलझी हुई है। इसी से प्रजातंत्र की यह मूल अवधारणा कि यह स्वतंत्रता और ईमानदारी से जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का शासन है, नकारी जा चुकी है। बहुत से मामलों में दुःसाहस के साथ काले धन और 'बाहुबल' का प्रयोग किया जाता है। विचाराधीन कैदी जिन पर लूटपाट, हत्या आदि जैसे अभियोग हैं, पुलिस की सुरक्षा में, नामांकन पत्र दाखिल करने के लिए जेलों से बाहर आते हैं। सुप्रतिष्ठित राजनीतिक दल भी ऐसे प्रत्याशियों को मैदान में उतारते हैं क्योंकि कतिपय निर्वाचन क्षेत्रों में उनका प्रभाव है!

यह एक कटु सत्य है कि राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार की जड़ें काले धन की दलदल में हैं। यह काला धन विभिन्न दलों के प्रत्याशियों को अनैतिक तत्त्वों द्वारा दिया जाता है। यह क्यों और कैसे होता है, इसका दृष्टान्त नीचे दिया जाता है :

भारतीय संसद का सर्वोच्च, प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा गठित, सदन लोकसभा है। इसके 543 निर्वाचित तथा 2 नामांकित सदस्य हैं। इस प्रकार इसकी कुल सदस्य संख्या 545 है। लोकसभा के एक निर्वाचन क्षेत्र की वर्तमान औसत जनसंख्या 18

लाख और मतदाताओं की संख्या 10 लाख है। वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष चुनाव के लिए औसत एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र का यह आकार भारत में दूसरे देशों की तुलना में बहुत बड़ा है। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में निर्वाचन के लिए एक औसतन चुनाव क्षेत्र की जनसंख्या 6.2 लाख के लगभग होती है। युनाइटिड किंगडम के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के लिए यह तुलनात्मक आंकड़ा 90,000 का है। दो सदनों वाली विधायिकाओं वाले देशों में उच्च सदनों की स्थिति अलग-अलग है।

भारत की लोकसभा के लिए निर्वाचित होने के लिए समर्थन प्राप्त करने हेतु एक प्रत्याशी को एक बहुत बड़ा क्षेत्रफल तय करना पड़ता है, मतदाताओं के एक विशाल समुदाय से सम्पर्क करना पड़ता है। इसके लिए काफ़ी ख़र्च करना पड़ता है। सभी चुनाव क्षेत्रों पर पैसे वाले लोगों का आधिपत्य न हो जाए, इसके लिए कानून द्वारा प्रत्येक प्रत्याशी द्वारा खर्च की जाने वाली राशि की सीमा 15 लाख रुपये निर्धारित की गई है। परन्तु यह सीमा पूरी तरह अयथार्थ है। यह सर्वविदित है कि इस सीमा का शायद ही कहीं सचमुच पालन होता हो। एक आम गैर सरकारी अनुमान के अनुसार लोकसभा के अधिकतर चुनाव क्षेत्रों में प्रत्येक प्रत्याशी का 1.5 से 2 करोड़ रुपये तक का खर्च होता है। यह सारा का सारा काला धन होता है। और इसे बड़े-बड़े राजनीतिक दलों के उन प्रत्याशियों को दिया जाता है जिनके जीतने की संभावना रहती है। इसे देने वाले उस राज्य या क्षेत्र के "बड़े-बड़े महारथियों" के प्रतिद्वन्द्वी ग्रुपों के लोग होते हैं। पर यह धन किसी परोपकार की भावना से नहीं दिया जाता। यह हमेशा एक कठिन सौदा होता है; यह एक प्रकार का पूंजीनिवेश है जिससे भविष्य में होने वाले भारी लाभ पर नज़र रहती है। और जो व्यक्ति इस वित्तीय ठहराव को अपने निर्वाचन के लिए स्वीकार कर लेता है, वह एक ऐसे जाल में फंस जाता है जिससे वह बाहर नहीं निकल सकता। चुनाव हर पांच वर्ष बाद होते हैं। यदि समयपूर्व सदन को भंग कर दिया जाए तो यह इससे पहले भी हो सकते हैं। एक संसत्सदस्य, जो कई बार पुनर्निर्वाचित होने को उत्सुक हो, अपने उपकारकों के उस चंगुल से मुक्त होने में समर्थ नहीं है, जिसमें उन्होंने उसे फांस रखा है। उसका तो निरन्तर यही प्रयास रहता है कि अगले निर्वाचन के लिए, अनधिकृत धन की यह जीवन रेखा बरकरार रहे।

अपने उपकारकों के ऋण से उऋण होने के लिए, एक संसत्सदस्य के लिए अपने कार्यक्रम के प्रारंभ से ही भ्रष्टाचार के पथ पर चलना अनिवार्य हो जाता है। इसी प्रकार कई संसत्सदस्य कथित रूप से 'सत्ता के दलाल', 'सौदों के बिचौलिये', 'परमिट बनवाने वाले', 'रिश्वत लेने वाले', इत्यादि बन जाते हैं। और यही वह

तरीका है, जो भ्रष्टाचारतंत्र को निरंतर चालू रखता है। भारतीय चुनाव प्रणाली का यही गहरा रोग देश के राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार - विकराल भ्रष्टाचार - की बुनियाद है। और इसी बुनियाद को जड़ से उखाड़ कर भस्म करने की आवश्यकता है। इसके स्थान पर देश को एक नई बुनियाद स्थापित करने की आवश्यकता है, केवल इसलिए नहीं कि राज्यशासन में सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित किया जा सके अपितु इसलिए भी कि प्रजातंत्र और स्वाधीनता की रक्षा हो सके जोकि कहीं अधिक आवश्यक है। ऐसा तुरंत किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा, चुनावी तंत्र पर माफ़िया की मुट्ठी और कसती चली जाएगी और उससे छुटकारा मिलना निरन्तर कठिनतर होते-होते एक दिन असंभव हो जाएगा।

स्पष्ट है कि चुनावी प्रक्रिया में काले धन के उपयोग और अपराधियों की भूमिका को समाप्त करना भारतीय प्रजातंत्र को बचाने के लिए अनिवार्य है। ऐसे विशेष नए कानूनों की व्यवस्था करना आवश्यक है जिनके अंतर्गत उन तमाम लोगों को चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित किया जा सके जिनके विरुद्ध हत्या, मानव-हत्या का आपराधिक आशय, लूट, बलात्कार, धन- प्रक्षालन तथा ऐसे ही गंभीर अपराध किसी न्यायालय द्वारा निर्धारित किए गए हों। ऐसे लोगों को प्रत्याशियों अथवा चुनाव-एजेंटों के रूप में निर्वाचन प्रक्रिया में भाग लेने के अयोग्य घोषित करना होगा। चुनावी प्रक्रिया की अधिसूचना जारी होने से लेकर, चुनाव परिणाम घोषित होने के दो दिन बाद तक कोई भी शस्त्र, लाठी या चाकू लेकर निकलने को निषिद्ध करार देना होगा। चुनावों के दौरान, किसी भी व्यक्ति द्वारा हिंसक आचरण किए जाने को एक संज्ञेय अपराध बनाया जाना चाहिए। खर्च की जानी वाली धन राशि और जिन वस्तुओं पर इसका ख़र्च किया जा सकता है - दोनों को सख़्ती से सीमित कर दिया जाना चाहिए। इस संबंध में किसी भी उल्लंघन के लिए जेल की निवारणार्थक सज़ा निर्धारित की जानी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को दांडिक अपराध का दोषी पाया जाए तो उसे लम्बे समय के लिए प्रत्याशी या चुनाव-एजेंट, यहां तक कि मतदाता के रूप में चुनाव प्रक्रिया में भाग लेने के अयोग्य घोषित कर दिया जाना चाहिए।

इन तमाम और इनसे जुड़े अन्य मामलों पर संवैधानिक कानून और राजनीति शास्त्र के विख्यात एवं मान्य व्यक्तियों की एक स्वतंत्र समिति द्वारा गंभीर विचार किया जाना चाहिए। ऐसे विशेषज्ञों की समिति, चुनावों का ख़र्च राज्य द्वारा उठाने संबंधी इन्द्रजीत गुप्त-समिति की अनुशंसाओं पर भी विचार कर सकती है। इस समय जिस बात की आवश्यकता है वह यह है कि 'जनप्रतिनिधित्व कानून 1951' को व्यापक रूप से सशक्त बनाया जाए ताकि काले धन, बाहुबल, नकली मतदान,

मतदान केन्द्रों पर कब्ज़ा तथा सभी प्रकार के अपराधों के अभिशाप से चुनाव प्रक्रिया को मुक्त किया जा सके। फरवरी 2000 के विधानसभा चुनावों में हत्या और हिंसा की जो घटनाएं देखने में आई हैं, उनसे अत्यंत गंभीर चिन्ता पैदा हुई है। प्रजातंत्र को बचाने के लिए चुनावों के संचालन से संबंधित कानून में कुछ कठोर प्रावधानों को जोड़ना ज़रूरी हो सकता है। इसलिए हमारा यह प्रस्ताव है कि विशेषज्ञों की एक उच्चस्तरीय समिति की नियुक्ति की जाए जो इस पूरे मामले की जांच करे और अपनी सुविचारित अनुशंसाएं प्रस्तुत करे।

2. सभी 'सार्वजनिक अधिकारियों' द्वारा विस्तृत सम्पत्ति विवरणियों का प्रस्तुतीकरण

'सार्वजनिक अधिकारी' भ्रष्ट साधनों से धन इकट्ठा न करें, इसके लिए आवश्यक है कि वे नियुक्ति के समय पर ही, अपनी 'सम्पत्ति की विवरणी' एक पदनामित प्राधिकारी को प्रस्तुत करने के लिए कानून के अंतर्गत बाध्य हों। इस विवरणी में रिपोर्ट करने वाले अधिकारी, उसके/उसकी पति/पत्नी तथा नाबालिग बच्चों के नाम पर शेयरों, आभूषणों, नकदी इत्यादि सहित सब प्रकार की चल और अचल सम्पत्ति का पूरा तथा सच्चा विवरण रहना चाहिए।

इसके लिए कानून द्वारा एक विस्तृत प्रोफॉर्मा निर्धारित किया जाना आवश्यक होगा जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि दी गई जानकारी विस्तृत है, सुस्पष्ट है तथा मदवार है। इसमें ऐसे किसी अस्पष्ट और सामान्य प्रकृति के विवरण के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए जिसका उपयोग भविष्य में भ्रष्ट साधनों से इकट्ठी की गई किसी सम्पत्ति पर पर्दा डालने के लिए किया जा सके।

संयुक्त राज्य अमेरिका में, सरकार में नैतिकता के अधिनियम-1978 के अंतर्गत सम्पत्ति की रिपोर्टों की सूची के लिए जिस विवरण का दिया जाना आवश्यक है, उसकी विस्तृत व्याख्या की गई है। जानकारी के लिए, विधायी कार्मिकों पर लागू होने वाले संबंधित अनुभाग अनुलग्नक-1 में उद्धृत किए गए हैं। सरकार में नैतिकता के अधिनियम-1978 में कार्यपालिका शाखा तथा न्यायिक शाखा के कार्मिकों के लिए समानान्तर प्रावधान भी शामिल हैं।

इस विषय पर, भारतीय कानून में, अन्य बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातों के अनुपालन की व्यवस्था की जानी चाहिए :

1. किसी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति होने के 30 दिन के भीतर सम्पत्ति-विवरणियां नामनिर्दिष्ट प्राधिकारी को प्रस्तुत की जानी चाहिएं।
2. निश्चित तिथि तक सम्पत्ति-विवरणी पेश न किए जाने पर जुर्माने की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि नियुक्ति की तिथि के कुल 60 दिन के भीतर सम्पत्ति-विवरणी पेश न की जाए तो चूककर्ता व्यक्ति को निलंबित किए

जाने का प्रावधान होना चाहिए। 90 दिनों से अधिक के विलंब का परिणाम त्यागपत्र अथवा सेवा से हटाया जाना होना चाहिए।

3. पदनामित प्राधिकारी को चाहिए कि वह सम्पत्ति विवरणी का पुनरवलोकन करे और, आवश्यकतानुसार, पूरक जानकारी या स्पष्टीकरण देने के लिए कहे।
4. यदि ग़लती भूलवश न की गई हो तो, जानबूझ कर दी गई ग़लत विवरणी दण्डनीय होनी चाहिए।
5. सभी सम्पत्ति विवरणियां प्रतिवर्ष अद्यतन की जानी चाहिएं।
6. एक निर्धारित मूल्य से अधिक की सम्पत्ति का उपार्जन किए जाने की सूचना पदनामित प्राधिकारी को उपार्जन करने के 30 दिन के भीतर दी जानी चाहिए।
7. सभी सम्पत्ति विवरणियां सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध होनी चाहिएं।

यदि सर्वसहमति से इस विषय पर केन्द्र तथा राज्यों के लिए इस विषय पर एक सर्वमान्य कानून बनाया जा सके, तो इस कानून के अंतर्गत 'सार्वजनिक अधिकारी' के अर्थ, तथा उसके अंतर्गत, प्रधानमंत्री, मंत्री, संसत्सदस्य तथा राज्यों में वैसे ही सार्वजनिक पदाधिकारी शामिल होने चाहिएं। 'सार्वजनिक अधिकारी' संज्ञा में राजपत्रित दर्जे के सभी अधिकारी भी शामिल होने चाहिएं।

इस प्रकार के सांविधिक प्रावधानों से 'सार्वजनिक अधिकारियों' द्वारा अपने पद का दुरुपयोग करके भ्रष्ट साधनों से स्वयं को धनवान् बना सकने की संभावना समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार "सत्ता" में निहित भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति को विफल किया जा सकेगा।

3. आचार संहिताएं

(i) मंत्रियों;
(ii) संसत्सदस्यों और विधायकों;
(iii) ज़िला परिषदों के प्रधानों और दूसरे राजनीतिज्ञों, जो विकास संबंधी मामलों में किसी भी प्रकार के कार्यपालक अधिकार का प्रयोग करते हों; तथा
(iv) सरकारी सेवकों के लिए ।

किसी भी वर्ग विशेष के सार्वजनिक अधिकारियों के उत्तरदायित्वों, अधिकारों की परिधि, उन अधिकारों के परिसीमन तथा एक सार्वजनिक अधिकारी द्वारा अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह के तरीकों को निर्दिष्ट करने में आचार संहिताओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। ये संहिताएं मंत्रियों और संसद के बीच तथा

मंत्रियों और सरकारी सेवकों के बीच के संबंधों को सुस्पष्ट रूप से परिभाषित भी करती हैं। इतना ही नहीं, ये संहिताएं सभी सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए यह अनिवार्य बनाती हैं कि वे सभी अवस्थाओं में, उत्तरदायित्व की उच्च भावना, गरिमा और शालीनता के साथ, पूरी सत्यनिष्ठा से, देश के संविधान एवं कानूनों के प्रति बिनाशर्त वफ़ादारी के साथ काम करें। मामूली कीमत के उपहारों को छोड़ कर, उन्मुक्त आतिथ्य को स्वीकार करना प्रतिबन्धित है। संक्षेप में, आचार संहिताएं, व्यवहारों, व्यक्तियों और समूहों के साथ सम्बन्धों, और उन मापदंडों के संबंध में बाध्यकारी दिशानिर्देश प्रदान करती हैं जिनके भीतर रहते हुए विशिष्ट उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होता है। परन्तु आचार संहिताओं का बाध्यकारी दस्तावेज़ होना आवश्यक है। इसलिए सांविधिक संस्वीकृति की आवश्यकता की बात कही गई है।

भूतपूर्व मंत्री पी. उपेन्द्र की अध्यक्षता में गठित, 11वीं लोकसभा की नैतिक समिति तथा भूतपूर्व गृहमंत्री एस.बी. चह्वाण की अध्यक्षता वाली राज्यसभा की नैतिकता समिति ने दूसरे प्रजातांत्रिक देशों की आचार संहिताओं के संबंध में काफ़ी जानकारी एकत्र की है। इस महत्वपूर्ण विषय पर और जानकारी के लिए, इस पुस्तक में अतिरिक्त सामग्री दे दी गई है। अब आवश्यकता है अगला कदम उठाने की - मंत्रियों और संसत्सदस्यों के लिए नई आचार संहिताओं का प्रारूप तैयार करने की, और उसके बाद मंत्रिमंडल तथा संसद के दोनों सदनों के उस पर विचार करने और उसको स्वीकृति देने की।

उन दूसरे प्रजातांत्रिक देशों ने, जहां 'ट्रांसपेरेंसी इंटरनैशनल' के सूचकांक के अनुसार, सत्यनिष्ठा का स्तर भारत से बहुत ऊंचा है, यह आवश्यक समझा है कि मंत्रियों, संसत्सदस्यों और सरकारी विभागों के सार्वजनिक पदाधिकारियों के लिए कठोर आचार संहिताओं की घोषणा की जाए और उन्हें क्रियान्वित किया जाए ताकि राजनीतिक वर्ग में पारदर्शिता तथा सत्यनिष्ठा के उच्चतम स्तर को कायम रखा जा सके।

उच्च कर्मचारी पहले से ही संसद के अधिनियमों के अंतर्गत बनाए गए आचरण नियमों के अधीन हैं, पर इन्हें और कड़ा बनाना होगा, ख़ासतौर पर यह व्यवस्था करने के लिए कि उनका अनुसरण नैतिकता के सामन्यतया स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार किया जा सके।

4. रिश्वतखोरी के लिए दंड

रिश्वतखोरी के अपराध संबंधी कानून का पुनरवलोकन आवश्यक है, विशेषकर झारखंड मुक्ति मोर्चा के एक संसत्सदस्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखते हुए इसको अधिक समर्थ बनाया जाना ज़रूरी है। यह साफ़ है कि रिश्वतखोरी से संबंधित कानून पर्याप्त रूप से स्पष्ट या व्यापक नहीं हैं। ग़ैर

कानूनी ढंग से इकट्ठी की गई चल अथवा अचल सारी सम्पति को ज़ब्त करने, भारी जुर्माना करने और जेल की लम्बी सज़ा देने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में रिश्वतखोरी के विषय पर एक बहुत व्यापक कानून है। इस कानून के अंतर्गत आने वाले सभी सार्वजनिक अधिकारियों की सुस्पष्ट परिभाषा दी गई है; इसमें विस्तारपूर्वक बताया गया है कि रिश्वतखोरी किसे कहते हैं और इसमें अपराधियों को कठोर दंड देने की व्यवस्था की गई है। इस संबंध में संयुक्त राज्य संहिता के खंड 18 का अनुभाग 201 द्रष्टव्य है। पाठकों की सुविधा के लिए, इस पूरे अनुभाग को नीचे उद्धृत किया जाता है ताकि वे स्वयं देख सकें कि संयुक्त राज्य में इस विषय पर कानून बनाने में कितनी सावधानी से काम लिया गया है और फिर वे भी भारत में ऐसा ही व्यापक कानून बनाए जाने की मांग करें :

धारा 201 . सार्वजनिक अधिकारियों तथा गवाहों की रिश्वतखोरी

(ए) इस अनुभाग के लिए :

(1) 'सार्वजनिक अधिकारी' पद का अर्थ है, पहले से या बाद में अर्हता प्राप्त कांग्रेस के सदस्य, प्रतिनिधि, अथवा स्थानिक आयुक्त अथवा कोई अधिकारी या कर्मचारी या व्यक्ति जो संयुक्त राज्य की ओर से, अथवा वहां की सरकार के किसी विभाग, एजेंसी या शाखा, जिनमें कोलम्बिया का ज़िला शामिल है, के लिए, या उसकी ओर से, ऐसे किसी विभाग, एजेंसी या सरकारी शाखा के अधीनस्थ या अधिकार प्राप्त हो कर किसी भी सरकारी कार्यकलाप से संबंध रखता हो, या कोई ज्यूरी सदस्य;

(2) 'सार्वजनिक अधिकारी बनने के लिए चयनित व्यक्ति' पद का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जो सार्वजनिक अधिकारी बनाए जाने के लिए नामित अथवा नियुक्त किया गया हो या जिसे आधिकारिक रूप से सूचित किया गया हो कि उस व्यक्ति को इस रूप में नामित या नियुक्त किया जाएगा; और

(3) 'पदीय कार्य' पद का अर्थ है किसी प्रश्न, विषय, मामले, वाद, कार्यवाही अथवा विवाद संबंधी निर्णय अथवा अभिकार्य जो किसी भी समय लम्बित हो अथवा जिसे कानून के द्वारा किसी सार्वजनिक अधिकारी के सामने, उस अधिकारी की पदीय हैसियत में उस अधिकारी के विश्वसनीय स्थान या लाभ के स्थान पर लाया जाए।

(बी) जो कोई भी :

(1) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी सार्वजनिक अधिकारी को, या ऐसे किसी व्यक्ति को जिसका सार्वजनिक अधिकारी बनने के लिए चयन किया गया है, भ्रष्टतापूर्वक कोई मूल्यवान् वस्तु देता है, देने का प्रस्ताव करता है या देने का प्रण करता है या ऐसे किसी सार्वजनिक अधिकारी को या ऐसे किसी व्यक्ति को जिसका सार्वजनिक अधिकारी बनने के लिए चयन किया गया है, कोई मूल्यवान् वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या अस्तित्व को दिए जाने के लिए देता है, या देने का प्रस्ताव करता है या देने का प्रण करता है, इस नीयत के साथ कि -

(ए) किसी शासकीय कार्य पर असर डाला जा सके; या

(बी) किसी सार्वजनिक अधिकारी पर या ऐसे व्यक्ति पर जिसका सार्वजनिक अधिकारी बनने के लिए चयन किया गया है, असर डाला जा सके जिससे वह संयुक्त राज्य के साथ धोखाधड़ी करने के लिए या धोखाधड़ी करने में सहायता करने के लिए, या शामिल होने के लिए, या उस धोखाधड़ी की अनुमति देने के लिए या उस धोखाधड़ी के करने का अवसर प्रदान करने के लिए राज़ी हो सके; या

(सी) किसी सार्वजनिक अधिकारी या ऐसे व्यक्ति को जिसका सार्वजनिक अधिकारी बनने के लिए चयन किया गया है, उस अधिकारी या व्यक्ति को विधि सम्मत कर्तव्य के विरुद्ध किसी काम को करने अथवा न करने के लिए अपने साथ मिलाया जा सके;

(2) सार्वजनिक अधिकारी या ऐसा व्यक्ति होते हुए जिसका सार्वजनिक अधिकारी बनने के लिए चयन किया गया है, भ्रष्टतापूर्वक कोई मूल्यवान् वस्तु मांगता है, लेने की इच्छा करता है, लेता है, स्वीकार करता है, लेने या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है जो,

(ए) उसके पदीय कार्य के निष्पादन पर असर डालती है;

(बी) संयुक्त राज्य के साथ धोखाधड़ी करने के लिए या धोखाधड़ी करने में सहायता करने के लिए, या शामिल होने के लिए या उस धोखाधड़ी की अनुमति देने के लिए या उस धोखाधड़ी के करने का अवसर प्रदान करने के लिए उस पर असर डालती है;

(सी) ऐसे किसी अधिकारी या व्यक्ति को विधि सम्मत कर्तव्य के विरुद्ध किसी काम को करने या न करने के लिए उत्प्रेरित करती है;

(3) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भ्रष्टतापूर्वक किसी व्यक्ति को कोई मूल्यवान् वस्तु देता, देने का प्रस्ताव अथवा प्रण करता है, या ऐसे किसी व्यक्ति को कोई मूल्यवान वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या अस्तित्व को दिए जाने के लिए देने का प्रस्ताव या प्रण करता है जिससे किसी न्यायालय में उपस्थित मुकदमे या सुनवाई या कार्यवाही में, या कांग्रेस के किसी एक या दोनों सदनों, किसी एजेंसी, आयोग या संयुक्त राज्य के कानूनों के अंतर्गत गवाही सुनने या साक्ष्य लेने के लिए प्राधिकृत अधिकारी के समक्ष प्रथम वर्णित व्यक्ति की गवाही पर या ऐसे व्यक्ति पर उस प्रक्रिया से अनुपस्थित रहने का असर पड़ता है;

(4) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने लिए अथवा किसी अन्य व्यक्ति या अस्तित्व के लिए भ्रष्टतापूर्वक ऐसी कोई मूल्यवान् वस्तु मांगता, लेने की इच्छा करता, लेता, स्वीकार करता या लेने अथवा स्वीकार करने की स्वीकृति देता है, जिसके बदले में गवाह के रूप में, वह शपथ या प्रतिज्ञानपूर्वक किसी ऐसे मुकदमे, सुनवाई या अन्य कार्यवाही पर असर डालने या उनसे अनुपस्थित रहने को राजी होता है; उसे इस खंड के अंतर्गत अथवा उस मूल्यवान् वस्तु के तिगुने मूल्य की राशि से अनधिक का, जो इन दोनों में से अधिक हो, जुर्माना किया जाएगा या जेल की सज़ा दी जाएगी, जो पन्द्रह वर्ष से अधिक न हो, या दोनों प्रकार का दंड दिया जाएगा और उसे संयुक्त राज्य के अधीनस्थ किसी भी सम्मान, विश्वास या लाभ का पद ग्रहण करने के अयोग्य घोषित किया जा सकेगा।

(सी) जो कोई भी :

(1) कानून द्वारा विहित अपने पदीय कर्तव्य का उचित निर्वाह करने के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से

(ए) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, किसी सार्वजनिक अधिकारी, भूतपूर्व सार्वजनिक अधिकारी अथवा सार्वजनिक अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए चयनित व्यक्ति को, ऐसे सार्वजनिक अधिकारी, भूतपूर्व सार्वजनिक अधिकारी अथवा सार्वजनिक अधिकारी के

रूप में नियुक्ति के लिए चयनित व्यक्ति द्वारा किये गए अथवा किए जाने वाले किसी पदीय कार्य के लिए, कोई मूल्यवान् वस्तु देता है, देने का प्रस्ताव करता है या देने का प्रण करता है; अथवा

(बी) सार्वजनिक अधिकारी, भूतपूर्व सार्वजनिक अधिकारी अथवा सार्वजनिक अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए चयनित व्यक्ति होते हुए, कानून द्वारा विहित अपने पदीय कर्तव्य का उचित निर्वाह करने के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से, व्यक्तिगत रूप से, किसी किये गए अथवा किये जाने वाले कार्य के लिए या उसके कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई मूल्यवान् वस्तु मांगता, लेने की इच्छा करता, लेता, स्वीकार करता या लेने अथवा स्वीकार करने की स्वीकृति देता है;

(2) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी व्यक्ति को, उस व्यक्ति के द्वारा, मुकदमे के गवाह के रूप में सुनवाई में या किसी अन्य कार्यवाही में किसी न्यायालय, कांग्रेस के किसी एक या दोनों सदनों की किसी कमेटी, अथवा संयुक्त राज्य के कानूनों द्वारा गवाही सुनने या साक्ष्य लेने के लिए प्राधिकृत किसी एजेंसी, आयोग या अधिकारी के समक्ष शपथ या प्रतिज्ञानपूर्वक दिये गए या दिये जाने वाले साक्ष्य के लिए या उसके कारण या ऐसे व्यक्ति की वहां से अनुपस्थिति के लिए या उसके कारण, कोई मूल्यवान वस्तु देता, देने का प्रस्ताव करता अथवा देने का प्रण करता है;

(3) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, ऐसे व्यक्ति के द्वारा ऐसे किसी मुकदमे, सुनवाई या अन्य कार्यवाही में शपथ या प्रतिज्ञानपूर्वक दिये गए या दिये जाने वाले साक्ष्य के लिए या उसके कारण अथवा ऐसे व्यक्ति के वहां से उपस्थित रहने के लिए अथवा उसके कारण, कोई मूल्यवान् वस्तु मांगता, लेने की इच्छा करता, लेता, स्वीकार करता या लेने अथवा स्वीकार करने की स्वीकृति देता है

उसे इस खंड के अंतर्गत जुर्माना किया जाएगा, या अधिक से अधिक दो वर्ष तक की जेल का दण्ड या दोनों दण्ड दिये जाएंगे।

(डी) उपधारा (बी) के पैरा (3) और (4) तथा उपधारा (सी) के पैरा (2) और (3) का अर्थ यह नहीं लगाया जायेगा कि कानून द्वारा विहित, गवाह की फीस की अदायगी या स्वीकृति वर्जित है, या जिस पार्टी की ओर से गवाह

को बुलाया गया है, उसके द्वारा समुचित यात्रा-ख़र्च, निर्वाह-ख़र्च और कार्यवाही में हुए उचित ख़र्च या, विशेषज्ञ गवाह के द्वारा दिये जाने वाले साक्ष्य के लिए समुचित फ़ीस की संबद्ध पार्टी द्वारा अदायगी या गवाह द्वारा स्वीकृति वर्जित हैं

(इ) इस धारा में निर्धारित अपराध और दण्ड उन अपराधों और दण्डों से भिन्न और अतिरिक्त हैं जिनका निर्धारण इस खंड की धाराओं 1503, 1504 और 1505 में किया गया है।

5. प्रधानमंत्री, मंत्रियों, संसत्सदस्यों और राज्यों की विधायिकाओं के वेतन के निर्धारण और वार्षिक समीक्षा के लिए स्थायी समिति

जैसा कि हम पहले प्रमाणित कर चुके हैं, भारत में राजनीतिक पदाधिकारियों के वेतन अत्यंत कम और अपर्याप्त हैं। अपने निजी साधनों अथवा, उनके अभाव में, अनधिकारक हित-चिन्तकों की सहायता के बिना उनके लिए समुचित जीवन-स्तर बनाए रख पाना संभव नहीं है। भारत में ऐसी स्थिति कई वर्षों से बनी हुई है और राजनीतिक वर्ग में भ्रष्टाचार इसका सीधा परिणाम है।

भ्रष्टाचार को दूर करने तथा सत्यनिष्ठा को सुनिश्चित बनाने के लिए इन राजनीतिक पदाधिकारियों के वेतन के ढांचे का पुनरवलोकन आवश्यक है ताकि प्रत्येक वर्ग के लिए उपयुक्त पारिश्रमिक का निर्धारण किया जा सके और उसे व्यवस्थित रखा जा सके।

यह विषय, प्रकट रूप में, राजनीतिक दृष्टि से संवेदनशील है तथा संसत्सदस्य अपने और मंत्रियों के लिए समुचित वेतन निर्धारित करने से हिचकिचाते रहे हैं। उन्हें यह शंका है कि उनका ऐसा कदम जनता को स्वीकार नहीं होगा। इस संदर्भ में, यह उचित भी है और आवश्यक भी कि वैधानिक रूप से एक स्वतंत्र, उच्च स्तरीय, स्थायी समिति का गठन किया जाए और उसे पहले तो वेतन निर्धारण की ज़िम्मेदारी सौंपी जाए, तत्पश्चात् प्रतिवर्ष पुनरवलोकन की; निस्संदेह, इस निर्धारण और पुनरवलोकन पर स्वीकृति की मुहर संसद की होगी। यह कोई नया सुझाव नहीं है। इस प्रकार की स्थायी समितियां, विभिन्न नामों से कई देशों में बनी हुई हैं और वे इस संबंध में प्रतिवर्ष अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत करती हैं। साधारणतः, ऐसी समितियों की अनुशंसाएं उन देशों की संसदों द्वारा बिना अधिक विवाद के स्वीकृत कर ली जाती हैं। इसका बहुत बड़ा लाभ यह है कि मंत्रियों और संसत्सदस्यों के पारिश्रमिक का प्रश्न राजनीतिक दायरे से बाहर हो जाता है और एक ऐसी स्वतंत्र संस्था के हाथ में चला जाता है जिस पर यह भरोसा किया जा सके कि वह वस्तुपरक कसौटी पर आधारित अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत करने के योग्य है।

जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, देश के सारे उच्च राजनीतिक वर्ग

के वेतन के ढांचे में होने वाली किसी भी तर्कसम्मत वृद्धि का वित्तीय प्रभाव उस लाभ की तुलना में अत्यंत कम होगा जो देश की राज्यव्यवस्था को ईमानदारी और पारदर्शिता से चला सकने से होने वाले अत्यधिक लाभ से उपलब्ध हो सकेगा।

6. राजनीतिक दलों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता केवल बैंकिंग-माध्यमों से ही दी जानी चाहिए

राजनीतिक दलों के चरित्रहीन नेताओं के हाथ में संसद अथवा राज्यों की विधायिकाओं के सदस्यों को भ्रष्टाचारी बनाने के लिए जो सबसे प्रभावकारी साधन है, वह संभवतः 'काला धन' है। इसे चुनाव के दिनों में चुनिन्दा लोगों में सहायता के तौर पर बांटा जाता है या, वेतनों के अपर्याप्त होने के दृष्टिगत व्यक्तिगत ख़र्च चलाने के लिए पूरक आय के तौर पर 'पैकेटों' में दिया जाता है। व्यक्तिगत वफ़ादारी खरीदने के लिए इस साधन को अपनाया जाता है। जैसे ही कोई सदस्य किसी नेता का ग़ैर सरकारी रूप से वेतन-प्राप्त सेवक बन जाता है, उसका अंतःकरण उसे फटकारना बंद कर देता है और वह सदा के लिए ग़ुलाम हो जाता है।

चूंकि राजनीतिक दलों के नेताओं के लिए भारी मात्रा में इकट्ठे किए हुए 'काले धन' का हिसाब-किताब रखना आवश्यक नहीं होता, वे इसका उपयोग चुनावों में अपने मनपसंद प्रत्याशियों की सहायता करने के लिए, और बाद में भी, मनमाने ढंग से करते हैं। और, बेशक, इस प्रकार की वित्तीय सहायता सदैव मेज़ तले ही दी जाती है।

भ्रष्टाचार के इस स्रोत को यह कानून बना कर बंद किया जा सकता है कि राजनीतिक दलों को दान केवल बैंकिंग माध्यमों से ही दिया जाए। ऐसा होने से हिसाब-किताब ठीक ढंग से रखना पड़ेगा और सांविधिक रूप से लेखा-परीक्षा अनिवार्य होगी। इस प्रकार राजनीतिक दलों द्वारा धन का दुरुपयोग बंद हो जाएगा। ऐसा संभव है कि इसके बावजूद थोड़े-बहुत काले धन का एकत्र किया जाना चलता रहे, परन्तु उसकी मात्रा बहुत कम हो जाएगी और, इस कारण, उसका प्रभाव कम घातक होगा।

7. सरकार में नैतिकता पर राष्ट्रीय आयोग

यदि हम चाहते हैं कि केन्द्रीय सतर्कता आयोग को भ्रष्टाचार का प्रतिरोध करने और सत्यनिष्ठा की संस्कृति की स्थापना में सफलता का अवसर प्राप्त हो सके, तो इस शिखरस्थ संस्था की प्रतिष्ठा, शक्ति तथा उत्तरदायित्व में वृद्धि करना आवश्यक है। यह सही है कि भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा केन्द्रीय सतर्कता

आयोग को स्वतंत्रता दिये जाने की अनिवार्य आवश्यकता संबंधी अधिकथन के परिणामस्वरूप, इस आयोग को एक अध्यादेश द्वारा सांविधिक दर्जा प्रदान कर दिया गया है। पर जो लक्ष्य हमारे सामने है, उसके लिए शायद इतना मात्र पर्याप्त न हो। भारत में इस समय कई बड़े-बड़े राजनीतिक नेता तथा कई उच्चपदस्थ नौकरशाह भ्रष्टाचार ग्रस्त हैं। इसके अतिरिक्त, भ्रष्टाचार सभी संवर्गों के अधिकारियों और कर्मचारियों में सर्वत्र व्याप्त है। अतः उस शिखरस्थ संस्था को, जिसे भ्रष्टाचार का रुख पलटने का काम सौंपा गया है, उचित संवैधानिक दर्जा तथा स्वतंत्रता देने के साथ-साथ पर्याप्त शक्तियां तथा संसाधन भी उपलब्ध कराने होंगे ताकि वह इस अत्यंत दुष्कर कार्य को प्रभावशाली ढंग से निष्पादित कर सके। इसलिए, हमारा यह सुझाव है कि केन्द्रीय सतर्कता आयोग का नया नामकरण किया जाए। यह नाम 'सरकार में नैतिकता पर राष्ट्रीय आयोग' हो। साथ ही, जैसा दर्जा संविधान की धारा 148 के अन्तर्गत भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक को और धारा 324 के अंतर्गत चुनाव आयोग को दिया गया है, वैसा ही दर्जा, संविधान में संशोधन करके इस आयोग को भी दिया जाए। सरकार में नैतिकता पर प्रस्तावित राष्ट्रीय आयोग का अधिकार क्षेत्र बढ़ा कर इस के दायरे में प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्रियों, कैबिनेट मंत्रियों, संसत्सदस्यों, विधायकों के साथ-साथ राजपत्रित सरकारी कर्मचारियों को भी शामिल किया जाए। सरकार में नैतिकता पर प्रस्तावित राष्ट्रीय आयोग के दो प्रभाग बनाए जा सकते हैं, एक राजनीतिक नेताओं के लिए और दूसरा सरकारी सेवकों के लिए।

सरकार में नैतिकता पर राष्ट्रीय आयोग का प्रस्तावित नया पदनाम इस बात की ओर संकेत करेगा कि इस आयोग का उत्तरदायित्व केवल भ्रष्टाचार का प्रतिरोध करने तक ही सीमित नहीं होगा अपितु यह एक सुविचारित, क्रमबद्ध कार्यक्रम के आधार पर, सत्यनिष्ठा के एक नए वातावरण, एक नई संस्कृति के संवर्धन की दिशा में सकारात्मक कदम उठाने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

इस विषय का एक महत्वपूर्ण पहलू इस नए आयोग को उपलब्ध कराए जाने वाले संसाधनों से संबंधित है। सुविदित वित्तीय मजबूरियों को देखते हुए इस विषय में एक सीमा से अधिक कुछ कर पाना कठिन है पर हमें यह ध्यान में रखना होगा कि राज्य के कामकाज के किसी भी क्षेत्र में भ्रष्टाचार के दूर होने से जनता को जो लाभ होंगे, वे उस खंड में भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए किए गए निवेश से कहीं अधिक होंगे।

सरकार में नैतिकता पर प्रस्तावित राष्ट्रीय आयोग, जो कि संविधान के अंतर्गत स्थापित किया जाएगा, वह भ्रष्टाचार के दानव से युद्ध करने के लिए एक प्रभावशाली शस्त्र सिद्ध होगा। इससे देश में स्वच्छ, पारदर्शी और कुशल प्रशासन

के पुनः स्थापित होने की संभावना बढ़ेगी। इस प्रकार की शिखरस्थ संस्था के बिना, सफलता की संभावनाएं क्षीण ही रहेंगी। भ्रष्टाचार की समस्या के साथ अब छोटी-मोटी छेड़-छाड़ करके बहुत दिन तक काम चलने वाला नहीं है। इसके साथ अब सीधे द्वंद्व की आवश्यकता है।

इस प्रकार के उपक्रम की सफलता के लिए यह अत्यावश्यक है कि इस आयोग में केवल उन्हीं लोगों की नियुक्ति की जाए जो अपनी योग्यता, निष्पक्षता तथा सत्यनिष्ठा के लिए उच्चतम ख्याति अर्जित कर चुके हों तथा जिन्हें संसद, राष्ट्रीय प्रशासन अथवा न्यायपालिका के उच्च पदों पर कार्य करने का अनुभव प्राप्त हो।

इस उच्च अधिकार सम्पन्न प्रस्तावित सतर्कता तंत्र के कामकाज के ढंग के संबंध में कुछ स्पष्ट दिशानिर्देश लागू करना भी आवश्यक होगा। एक सुव्यवस्थित सरकार का एक प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार के वातावरण को सुनिश्चित करना होना चाहिए जिसमें सार्वजनिक अधिकारी समझ-बूझ और ईमानदारी के साथ शीघ्रतापूर्वक निर्णय ले सकें ताकि सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को समयोचित, प्रभावी, साफ़-सुथरे और जनता के लिए संतोषप्रद ढंग से लागू किया जा सके। दुर्भाग्यवश, पिछले तीस वर्षों में वरिष्ठ सरकारी अधिकारी एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के प्रबंधक साहसिक निर्णय करने तथा उनके परिणामों का उत्तरदायित्व स्वीकार करने में उत्तरोत्तर हिचकिचाहट प्रदर्शित करते रहे हैं। इसका कारण यह व्यापक आशंका है कि यदि कुछ ग़लत हो गया तो उनकी सत्यनिष्ठा पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा। ऐसे लोग भी, जो सर्वथा ईमानदार हैं तथा, इसी कारण, उन्हें किसी बात का भय नहीं है, अधिक से अधिक अन्य अधिकारियों और मंत्रालयों को निर्णय-प्रक्रिया में सम्मिलित करके उत्तरदायित्व तथा जवाबदेही की परिधि को जितना संभव हो सके, फैला लेते हैं ताकि वे सुरक्षित रह सकें। निस्संदेह, इससे विलंब भी होता है और अनुमानित व्यय की सीमाओं का उल्लंघन भी होता है पर काम में सुस्ती के लिए सरकार में कोई दण्ड या जवाबदेही नहीं है। विलम्ब के लिए सफ़ाई आसानी से, गंभीर मुखमुद्रा बना कर, यह कह कर दी जा सकती है कि संबंधित विषय पर गहराई से विचार करना अत्यावश्यक था। इस स्थिति का पूरा-पूरा फ़ायदा भ्रष्टाचारी उठाते हैं - काम को जल्दी निपटाने की कीमत सर्वानुमति के साथ वसूल करके।

अच्छी राज्यव्यवस्था की एक बुनियादी आवयश्कता यह है कि रोज़मर्रा के सामान्य कामकाज में पारदर्शिता, जवाबदेही तथा तेज़ी के साथ निर्णय किए जाएं। यदि सतर्कता-कार्मिक ऐसे ढंग से काम करें जिससे सार्वजनिक अधिकारी निर्भीक एवं निःसंकोच रूप से, अपनी विवेक-बुद्धि तथा उस समय उपलब्ध सभी तथ्यों के आधार पर स्वतंत्रता पूर्वक निर्णय कर सकें, ऐसा करते समय वे सोची-समझी

सीमा तक जोखिम उठा सकें और उन्हें किसी कुशंका के भाव से इधर-उधर देखना न पड़े, तो वे इस प्रक्रिया में काफ़ी सहायक हो सकते हैं। साधारणतः तो ऐसे निर्णयों का परिणाम संतोषजनक ही होता है, पर कहीं इक्का-दुक्का मामलों में ग़लती भी संभव है। ऐसा प्रत्येक काम की प्रकृति में ही निहित है और शतप्रतिशत सफलता की गारंटी कोई नहीं दे सकता। पर चूंकि सार्वजनिक अधिकारी सभी परिस्थितियों में अपनी आचार संहिता द्वारा पूरी सत्यनिष्ठा के साथ काम करने के लिए वचनबद्ध हैं, यह मान कर चलना चाहिए कि ऐसे विषयों में भी जिनके परिणाम सही सिद्ध नहीं हुए, निर्णय लेने में नेकनीयत से ही काम लिया गया है। ज़रूरी नहीं है कि ऐसा प्रत्येक कार्य जिसका परिणाम संतोषजनक नहीं है, सतर्कता का ही मामला हो। सतर्कता प्राधिकारियों की भूमिका अत्यंत कठिन और नाज़ुक है। उनके लिए यह आवश्यक है कि वे 'न्यायिक' मनोवृत्ति के साथ काम करें, न कि एक 'अभियोजक' की दृष्टि से, ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन प्राप्त हो सके। परन्तु एक बार यदि किसी काम में बेईमानी के प्रमाण दिखाई दें तो पेंचों को सख़्ती तथा तेज़ी के साथ कसना होगा। इस प्रकार का सुस्पष्ट भरोसा दिलाये जाने पर, मंत्रालयों, विभागों और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के प्रमुख तथा उनके सहयोगी अपना कार्य साहस के साथ एवं प्रभावी ढंग से कर सकेंगे।

अनाम तथा छद्मनाम शिकायत पत्रों के संबंध में भी स्पष्ट नीति का होना आवश्यक है। दुर्भाग्य से, आजकल अनाम अथवा छद्नाम शिकायतें भेजने की प्रथा-सी चल निकली है। इन पत्रों में वरिष्ठ अधिकारियों के उपापराधों के संबंध में प्रत्यक्षतः जांच किए जा सकने वाले 'तथ्यों' का उल्लेख होता है। साधारणतः, ऐसी शिकायतें भेजने वाले असन्तुष्ट अधीनस्थ होते हैं। जब किसी मंत्रालय, विभाग तथा सार्वजनिक प्रतिष्ठान का प्रमुख अनुशासन और समय की पाबंदी लागू करता है तथा दिन का काम ईमानदारी से किए जाने की अपेक्षा करता है, ऐसे कुछ अधीनस्थ कर्मचारी, जिन्हें काम में ढिलाई की आदत हो चुकी होती है, परेशान होने लगते हैं। अपने ऐसे 'गुस्ताख़' स्वामी के लिए मुश्किल पैदा करने के उद्देश्य से वे शिकायत करते हैं, इस आशा के साथ कि जब बड़े प्राधिकारी द्वारा उस शिकायत पर स्वामी की टिप्पणी मांगी जाएगी तो इस 'गुस्ताख़' स्वामी को घबराहट और तकलीफ़ का अनुभव होगा। कभी-कभार - शायद बहुत कम मामलों में - अपने उद्दण्ड अधीनस्थ को सीधा करने के लिए और उसे परेशान करने के उद्देश्य से स्वामी उसके विरुद्ध शिकायत करवाने का प्रबंध करता है। अनुभव से पता चलता है कि जब किसी अधिकारी की पदोन्नति पर विचार करने का समय निकट आ जाता है, तब उसकी पदोन्नति की संभावना कमज़ोर बनाने के उद्देश्य से उसके विरुद्ध अनाम शिकायतों का सिलसिला शुरू हो जाता है। ऐसी शिकायतें

या तो प्रतिस्पर्द्धियों द्वारा की जाती हैं या असन्तुष्ट अधीनस्थों द्वारा। इस प्रकार का घातक खेल सब ओर से खेला जाता है और बिना मतलब इससे अत्यधिक नुकसान होता है। इसे खत्म करने के लिए एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने इस आशय के आदेश जारी किये थे कि अनाम अथवा छद्मनाम शिकायतों पर कोई ध्यान न दिया जाए। इन आदेशों का पूरी तरह पालन किया जाना अभी भी बाकी है।

भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए उत्सुक विकसित देशों में भी कुछ लोगों का यह मत है कि किसी भी संगठन में ऐसे 'सीटी बजाने वाले' लोगों को जो, अपनी अंतश्चेतना की प्रेरणा पर अपने 'स्वामियों' के भ्रष्टाचार के कर्मों का प्रकटीकरण करना चाहते हैं, ऐसा अवसर, बिना उन पर अनुशासनहीनता का आरोप लगे, मिलना चाहिए। निश्चित रूप से, इस बात को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, पर अनाम शिकायतों द्वारा नहीं। दूसरे साधन ढूंढे जा सकते हैं। भारत में, इसके लिए उपयुक्त मार्ग यह है कि सतर्कता आयोग में एक वरिष्ठ अधिकारी को ऐसे 'सीटी बजाने वालों' की शिकायतें स्वीकार करने के लिए नामित किया जाए, बशर्ते कि वह शिकायतकर्त्ता अपनी पहचान बताने को राज़ी हो। साथ ही, इस व्यवस्था का एक अंग यह भी होना चाहिए कि जो भी झूठी शिकायत करे, उसे आपराधिक कानून के अंतर्गत कड़ा दण्ड दिया जाए। भ्रष्टाचार से संबंधित कानून के इस भाग को अन्य भागों के साथ प्रभावी ढंग से, इस प्रकार से लागू किया जाना चाहिए कि वह साफ़ दिखाई पड़े तथा उसमें वस्तुनिष्ठता स्पष्ट रूप से नज़र आए।

वास्तविक आवश्यकता सत्यनिष्ठा की संस्कृति को प्रोत्साहित करने और अनाम शिकायतों की मरीचिका में दौड़ते न रह कर भ्रष्टाचार का प्रतिरोध करने के लिए 'नैतिकता पर संवैधानिक आयोग' के गठन की है।

परन्तु सतर्कता का अविच्छिन्न और प्रभावी होना ज़रूरी है जिससे भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति वाले लोगों पर बराबर अंकुश रहे, पर साथ ही, ईमानदारी से काम करने वालों को किसी प्रकार की आशंका न हो। और जहां कहीं भ्रष्टाचार के होने का प्रमाण मिले, उन मामलों पर रोज़मर्रा आधार पर, बिना लम्बे स्थगन के न्यायालय में मुकदमे चलाए जाएं। जब कोई व्यक्ति भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाए तो उसे कड़ा दंड दिया जाए जिसमें पर्याप्त अवधि की जेल की सज़ा तथा अवैध ढंग से प्राप्त की गई सम्पत्ति का अधिहरण शामिल हो। भ्रष्टाचार को एक अत्यंत जोखिम भरा, अत्यंत महंगा और बर्बाद करने वाला व्यापार बनाने का यही रास्ता है। अपनी निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता और सत्यनिष्ठा के लिए विख्यात कुछ न्यायाधीशों द्वारा, बिना विलंब के किए गए इस प्रकार के कुछ निर्णयों के सामने आने से, भ्रष्टाचार का आश्रय लेने के लिए तैयार लोग अपने कदम पीछे हटाएंगे और समाज पर भी उनका स्वास्थ्यकारी प्रभाव पड़ेगा।

8. भ्रष्टाचार के लिए विशेष न्यायालय

यह सुविदित है कि भारत में न्यायिक प्रक्रिया बहुत धीमी है तथा विचाराधीन मामलों का एक अंबार लगा पड़ा है। भ्रष्टाचार के मामलों के मुकदमे असाधारण रूप से लम्बे समय तक, प्रायः कई वर्षों तक, चलते हैं। पिछले कुछ वर्षों में, ऐसे मामले बहुत कम ही होंगे जो निर्णय के अंतिम चरण तक पहुंच पाए हों।

भ्रष्टाचार-नियंत्रण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है शीघ्रातिशीघ्र दण्ड की व्यवस्था। यदि भ्रष्टाचार के मुकदमे अन्तहीन समय तक खिंचते चले जाएं तो उनका प्रभाव समाप्त हो जाता है। इसलिए हमारा सुझाव है कि 'सार्वजनिक सेवकों' (जिनमें संसत्सदस्य और मंत्री तथा अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य शामिल होंगे) के मुकदमों के निपटान के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किए जाएं। इन न्यायालयों में उच्चस्तरीय न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाए तथा निर्णय होने तक दैनन्दिन आधार पर प्रत्येक मुकदमे की सुनवाई करके उसे निपटाया जाए।

राष्ट्रीय सर्वानुमति की आवयश्कता

यह स्पष्ट है कि देश को आज एक नई शुरुआत की आवयश्कता है, और, जैसा कि हम पहले कह आए हैं, यह शुरुआत नैतिकता पर आधारित कार्यक्रम के आधार पर करनी होगी। इस दिशा में आगे बढ़ने वाला पहला चरण, आवश्यक रूप से, एक ईमानदार और मुक्त राष्ट्रीय बहस और सर्वानुमति को प्रोत्साहन देने का होगा और यह बहस केवल राजनीतिक नेताओं तक सीमित नहीं होगी। सबसे ज़रूरी यह है कि इस विषय को लेकर जनता में बहस हो कि भ्रष्टाचार के दैत्य से लड़ना आवश्यक क्यों है और इस लड़ाई के लिए साधन कौन-से अपनाने होंगे। भारत की साधारण जनता, जो भ्रष्टाचार के परिणामों का कष्ट भोगती रही है, सहर्ष इस विषय पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर देगी क्योंकि नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित प्रशासन का सबसे अधिक लाभ उसी को होगा। परन्तु जनता के निम्नलिखित वर्गों से स्वीकृति प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयत्न करने पड़ेंगे

1. केन्द्रीय मंत्रिमंडल के संबंधित मंत्रियों, राज्यों के मुख्यमंत्रियों और सभी राजनीतिक दलों के अध्यक्षों सहित राजनीतिक नेतागण;
2. मुख्य समाचारपत्रों के संपादक तथा राजनीतिक विश्लेषक;
3. नौकरशाह;
4. व्यापारी और उद्योगपति;
5. व्यावसायिक वर्गों के लोग जैसे, शिक्षाशास्त्री, वकील, डॉक्टर, वैज्ञानिक, तकनीकी विशेषज्ञ, चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट्स इत्यादि।

'सरकार में नैतिकता' पर एक राष्ट्रीय कन्वेंशन का आयोजन किया जाए। इसका आकार इतना बड़ा होते हुए भी कि इसमें प्रत्येक खंड के प्रमुख नेता शामिल हों, इतना सुसंहत हो कि इसमें सार्थक बहस के द्वारा संतोषजनक निष्कर्ष तक पहुंचा जा सके। इस कन्वेंशन का आयोजन, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा किया जा सकता है। इसमें आमंत्रित लोगों की संख्या 500 से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रस्तावित कन्वेंशन की सफलता का दारोमदार बहुत हद तक इस बात पर होगा कि उसकी तैयारी कितनी सावधानी से और विचारपूर्वक की जाती है। विचार विनिमय को केन्द्रित रखने के लिए, अन्य बातों के अतिरिक्त, निम्नलिखित दस्तावेज़ों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक होगा :

1. प्रथम, एक ऐसा दस्तावेज़ जिसमें देश में भ्रष्टाचार की वर्तमान स्थिति का सच्चा और निर्भीक वर्णन हो, इससे होने वाले नुकसान तथा निकट भविष्य में उपस्थित होने वाले उस परिदृश्य का उल्लेख हो जिसमें ठग, अपराधी और माफ़िया सरग़ना, प्रजातंत्र और स्वाधीनता को नष्ट करके अपना आधिपत्य स्थापित कर लेंगे।
2. दूसरे, एक अन्य दस्तावेज़ जिसमें उन लाभों का वर्णन हो जो, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सहित देश के प्रत्येक पक्ष से संबंधित प्रशासन के पूर्णतया नैतिकता पर आधारित होने से, जनता के सभी वर्गों को सुलभ हो सकेंगे। इस दस्तावेज़ में आज से 2 या 3 दशक बाद के भारत का चित्र भी प्रस्तुत किया जाए जिसमें कोई ग़रीबी की रेखा से नीचे नहीं रहेगा, कोई जीवन की बुनियादी ज़रूरतों से वंचित नहीं रहेगा, जिसमें अधुनातन ढांचागत सुविधाओं से सम्पन्न उन्नत कृषि और उद्योगों के द्वारा राष्ट्रीय समृद्धि में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी और समाज नैतिक मूल्यों पर समाश्रित होगा।
3. तीसरे, एक दस्तावेज़ जिसमें भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए पूर्व प्रस्तावित 8 सूत्री कार्यक्रम की विस्तृत व्याख्या हो।
4. चौथे, एक ऐसा दस्तावेज़ जिसमें ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के करोड़ों अतिदरिद्र एवं विपन्न निवासियों को राहत पहुंचाने वाले 10 वर्षीय समयबद्ध कार्यक्रम की रूपरेखा हो, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित तत्त्व शामिल हों :

   (*i*) प्रत्येक गांव में निम्नलिखित व्यवस्थाएं करने के सुस्पष्ट प्रस्तावः

   (*a*) स्वच्छ पेय जल;

(*b*) शौचादि की पर्याप्त सुविधाएं;

(*c*) ग्रामीण आवासों के सुधार के लिए सहायता;

(*d*) एक कार्यशील दवाख़ाना;

(*e*) प्रारंभिक शिक्षा के लिए एक कार्यशील पाठशाला

(*ii*) शहरी क्षेत्रों में रहने वाले ग़रीब लोगों को निम्नलिखित आवश्यकताएं प्रदान करने के सुस्पष्ट प्रस्ताव :

(*a*) कम ख़र्च पर निर्मित आवासीय बस्तियां (जो नगरीय क्षेत्रों में सहकारी समितियों द्वारा निर्मित हों), जिनमें उपयुक्त शौच व्यवस्था और बहते पानी की सुविधाएं हों;

(*b*) प्रत्येक आवासीय बस्ती के लिए एक कार्यशील प्रारंभिक पाठशाला और एक कार्यशील दवाखाना;

(*c*) इन बस्तियों के बीच तथा प्रत्येक बस्ती से निकटतम नगर-केन्द्र तक सार्वजनिक परिवहन की व्यवस्था।

इस प्रस्तावित नैतिकता पर राष्ट्रीय कन्वेंशन के लिए ऊपर जिन दस्तावेज़ों का सुझाव दिया गया है उनसे भारत की जनता को पता चल सकेगा कि उद्देश्य केवल भ्रष्टाचार का उन्मूलन ही नहीं है अपितु ऐसा हो जाने पर जो लाभ होंगे उनसे ग़रीबों को एक बेहतर जीवन प्रदान करना है। निर्धनता के अभिशाप के विरुद्ध संघर्ष करने से बड़ी नैतिकता और कोई नहीं हो सकती।

अब तक यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि भ्रष्टाचार के इस शिकारी दानव के साथ लोहा लेने और उसे समाप्त करने के लिए भारतीय समाज के सभी वर्गों द्वारा सामूहिक राष्ट्रीय प्रयास किया जाना कितना आवश्यक है। ऐसा यदि जल्दी ही नहीं किया गया तो यह दानव इस देश की जनता की स्वाधीनता को लील जाएगा। जैसा कि 1777 में ब्रिस्टल के शेरिफ़ों को लिखे अपने पत्र में एडमंड बर्क ने कहा था, "जिस देश के लोग साधारणतया भ्रष्टाचारी होते हैं, उसमें स्वाधीनता बहुत दिन तक नहीं टिक सकती।"

हमारा देश और उसकी जनता इस स्थिति से बहुत दूर नहीं है। एक नयी दिशा में बढ़ने का समय आ चुका है। यही समय है सरकार में नैतिकता पर कन्वेंशन के आयोजित किए जाने का और दूरदर्शन के कैमरों के सामने बहस का ताकि भारत के लोग स्वयं देख सकें कि देश के नेता भारत के सबसे बड़े आंतरिक शत्रु - भ्रष्टाचार - के साथ कैसे निपटते हैं। और यदि उक्त कन्वेंशन द्वारा प्रस्तावित आठ-सूत्री कार्यक्रम को उचित संशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया जाता है तो यह 'राष्ट्रीय राज्यव्यवस्था में नैतिकता पर जनता का अधिकार-पत्र' बन सकेगा जिसे

भारत की जनता के सामूहिक संकल्प के अनुरूप घोषित और क्रियान्वित किया जा सकेगा।

अंत्यसंकेत

1. गुर्ट्रुड हिम्मलफ़ार्ब, *लार्ड एक्टन - अ स्टडी इन कांशियेंस एंड पॉलिटिक्स*, इंस्टीच्यूट फ़ॉर कन्टेम्परेरी स्टडीज़, सैन फ़्रांसिस्को, कैलिफ़ोर्निया, 1993, पृष्ठ 51।
2. विलियम जी. टोर्पे, *फ़ेडरल एक्ज़ीक्युटिव ब्रांच इथिक्स*, डब्ल्यू.जी. टोर्पे, अलैक्ज़ैंड्रिया, वर्जिनिया, यूएसए, 1990, पृष्ठ 11।
3. वही, पृष्ठ 12।
4. वही, पृष्ठ 15।
5. 1994 में यू के सरकार ने 'द कमिटी ऑन स्टैंडर्ड्स इन पब्लिक लाइफ़' नामक एक उच्चस्तरीय कमेटी की नियुक्ति की थी। यह कमेटी 'नोलन कमेटी' के नाम से जानी जाती है। 1997 में इसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें 'सार्वजनिक जीवन के सात सिद्धान्त' अनुशंसित किये थे। उन्हीं को इस पुस्तक में उद्धृत किया गया है।
6. *मिनिस्टिरियल कोड - अ कोड ऑफ़ कंडक्ट एंड गाइडेंस ऑन प्रोसीजर्ज़ फ़ॉर मिनिस्टर्ज़*, कैबिनेट ऑफ़िस, लंदन, यूके, जुलाई 1997।
7. *अ गाइड ऑन की एलिमेंट्स ऑफ़ मिनिस्टिरियल रिस्पॉन्सिबिलिटी*, प्राइम मिनिस्टर, गवर्न्मेंट डिविज़न, डिपार्टमेंट ऑफ़ द प्राइम मिनिस्टर एंड कैबिनेट, कैनबरा, एसीटी, अप्रैल 1996।

अध्याय 12

नैतिकता पर आधारित समाज की ओर

सर्वव्यापी भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए, राज्यव्यवस्था में नैतिकता को प्रोत्साहित करने के प्रयासों के साथ-साथ समाज के सभी क्षेत्रों के लोगों को भी नैतिकता के सर्वमान्य मूल्यों के साथ जोड़ने के प्रयास करने होंगे। वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की मूलभूत अवधारणा के साथ इसका किसी प्रकार का विरोध नहीं है। सच तो यह है कि यदि इस काम को निष्ठा, ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ किया जाए तो इससे राज्य का धर्मनिरपेक्ष चरित्र सुदृढ़ होगा, समाज में सामंजस्य और समन्वय को प्रोत्साहन प्राप्त होगा और भ्रष्टाचार से लड़ने की सामूहिक इच्छाशक्ति पैदा होगी। इस संबंध में, आइए, सबसे पहले भारतीय संविधान की उन व्यवस्थाओं को देखें जिनमें धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा प्रतिष्ठापित है।

1. उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्णप्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक गणराज्य** के रूप में गठित करने का सत्यनिष्ठापूर्वक संकल्प करते हुए और सभी नागरिकों के लिए :

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक **न्याय**;

विचार, अभिव्यक्ति, मान्यता, विश्वास एवं पूजा पद्धति की **स्वतंत्रता**, पद और अवसर की **समानता**, और सभी के बीच व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को सुनिश्चित बनाते हुए बंधुत्व को सुरक्षित करने के उद्देश्य से

अपनी संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवम्बर 1949 को,

एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकार, अधिनियमित एवं स्वयं को प्रदान करते हैं।

2. धारा 14. कानून के समक्ष समानता

राज्य किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता अथवा भारतीय राज्यक्षेत्र के भीतर कानूनों द्वारा समान सुरक्षा से वंचित नहीं करेगा।

3. धारा 15. धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध

(1) राज्य किसी नागरिक के साथ केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

(2) किसी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर निर्योग्यता, दायित्व, निर्बंधन अथवा शर्त के अध्यधीन नहीं माना जाएगा।

4. धारा 16. सार्वजनिक रोज़गार के अवसर की समानता

(1) राज्य के अधीनस्थ किसी भी पद पर रोज़गार अथवा नियुक्ति के विषय में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्राप्त रहेगी।

(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्‌भव, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर राज्य के अंतर्गत किसी रोज़गार अथवा पद के लिए अयोग्य नहीं माना जाएगा अथवा उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा।

5. धारा 25. अंतश्चेतना की और धर्म के अबाध रूप से मानने और प्रचार करने की स्वतंत्रता

(1) लोक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य तथा इस भाग की अन्य व्यवस्थाओं के अध्यधीन, सभी लोगों को समान रूप से अंतश्चेतना की स्वतंत्रता तथा धर्म को मानने, उस पर आचरण करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार है।

6. धारा 29. अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा

(1) भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में निवास करने वाले नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनकी अपनी अलग भाषा, लिपि अथवा संस्कृति है, उसे सुरक्षित रखने का अधिकार होगा।

(2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर, किसी नागरिक को राज्य द्वारा संचालित अथवा राजकोष से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने से वंचित नहीं किया जाएगा।

7. धारा 30. अल्पसंख्यकों को शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने तथा उनका प्रशासन चलाने का अधिकार

(1) सभी अल्पसंख्यकों को, भले ही वे धर्म पर आधारित हों या भाषा पर, अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने तथा उनका प्रशासन चलाने का अधिकार होगा।

(2) धारा (1) में वर्णित किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित एवं प्रशासित किसी शिक्षा संस्था की सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण की व्यवस्था करने वाला कानून बनाते समय राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि इस प्रकार की सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिए ऐसे कानून के अंतर्गत निश्चित या निर्धारित कीमत ऐसी हो जिससे उक्त धारा के अंतर्गत दिए गए अधिकार का निर्बंधन अथवा निराकरण न होता हो।

(3) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देते समय राज्य किसी शिक्षा संस्था के साथ इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि यह किसी भाषाई अथवा धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के प्रबंधन में है।

इन संवैधानिक व्यवस्थाओं को एक साथ देखने पर हम पाएंगे कि ये (i) एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करने वाली हैं (ii) अन्य बातों के साथ, धर्म पर आधारित भेदभाव का निषेध करती हैं (iii) सभी व्यक्तियों को अंतश्चेतना की स्वतंत्रता तथा निर्बाध रूप से धर्म को मानने, उस पर आचरण करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार देती हैं तथा (iv) अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ अपनी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनके संचालन का अधिकार प्रदान करती हैं।

ये मूल अधिकार हैं। किसी भी प्रजातांत्रिक समाज के, विशेषकर विभिन्न धर्मों एवं विभिन्न संस्कृतियों वाले समाज के, जैसा कि आज का भारतीय समाज है, सभ्य ढंग से जीवित रहने के लिए यह अत्यंत आवश्यक एवं अनिवार्य हैं। पर जहां, 1950 में संविधान के आरंभ से, इन व्यवस्थाओं के द्वारा अल्पसंख्यकों - विशेषकर धार्मिक अल्पसंख्यकों - को उनके लिए अत्यावयक सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त हुआ, वहां किसी संलयन संबंधी तत्त्व के अभाव में, उनमें स्वाधीनता से पहले की ही 'पृथक्ता' की प्रवृत्ति प्रोत्साहित और संपोषित होती रही, जब कि देश के विभाजन और स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद के वर्षों की एक समक्षणिक बुनियादी आवश्यकता यह थी कि पारस्परिक समझ-बूझ और स्वीकृति की नई भावना का विकास किया जाता और देश की समृद्ध सांस्कृतिक एवं धार्मिक विविधता को एकता में पिरोने के लिए क्रमशः एक सूत्र की संरचना की जाती। ऐसा नहीं किया गया और महात्मा गांधी के निधन के पश्चात् अतीत के घावों को भरने तथा समुदायों में समरसता को बढ़ावा देने के कोई दीर्घकालीन प्रयास नहीं किए गये।

इसके विपरीत, राजनीतिक दलों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और 'पृथक् अस्मिता' की अवधारणा का चतुराई से उपयोग करके अपने लाभ के लिए 'वोट बैंक' खड़े कर लिए। उनको अपने लिए यह सुविधाजनक नहीं लगा कि वे एक ऐसे नए भारत की, संगठित जनता की, एक राष्ट्र की, बात करें जिसमें सभी व्यक्तियों, विशेषकर अल्पसंख्यकों, को सम्पूर्ण धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्त है।

अब प्रश्न यह है कि क्या अल्पसंख्यकों को अपने इस महत्वपूर्ण तथा बहुमूल्य 'वोट बैंक' के स्तर से कोई ठोस लाभ पहुंचा है? पिछले वर्षों में रोज़गार के अवसरों तथा देश की वाणिज्यिक, औद्योगिक एवं व्यापारिक गतिविधियों में अल्पसंख्यकों का भाग अपेक्षाकृत कम ही हुआ है। राजनीतिक दलों द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से सामंजस्य के स्थान पर चलाई जा रही इस 'पृथक्तावादी' राजनीति के परिणामस्वरूप आज सर्वत्र धार्मिक कट्टरता एवं अलगाववाद फैली हुई है। क्या आज कहीं संगठित भारतीय राष्ट्र है? नहीं। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग सभी धार्मिक संप्रदायों तथा अगणित मूलवंशों के लोग रहते हैं, फिर भी वे केवल अपने अमेरिकी होने पर गर्व करते हैं। स्वाधीनता के पश्चात् भी भारत विभिन्न धार्मिक समुदायों और भाषाई समूहों की एक खिचड़ी के रूप में ही विकसित हुआ है। अलग-अलग व्यक्ति विभिन्न हिन्दू जातियों के रूप में अथवा मुसलमानों, सिक्खों या पारसियों के रूप में ही जाने जाते हैं। या फिर उनकी पहचान पंजाबियों, बिहारियों, बंगालियों, महाराष्ट्रियों, तमिलों, तेलुगुओं अथवा अन्य प्रदेशों के निवासियों के रूप में होती है। कितना सुन्दर होता यदि वे अपनी पहचान केवल भारतीयों कें रूप में करवाते!

इसके अतिरिक्त, जब धर्म को संवैधानिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति का निजी मामला मान लिया गया - जो कि ठीक भी था - तो सरकारी प्रशासन और समाज की गतिविधियों को नैतिक अथवा सदाचारपरक अनुशासन का आधार प्रदान करने वाला कोई संबल रहा ही नहीं। मानव इतिहास के आदिकाल से ही भारतीय जीवन का आधारभूत लक्षण रहे 'उचितानुचित विवेक' को पिछले वर्षों में त्याग दिया गया है। उसका स्थान निर्नैतिकता ने ले लिया है। जीवन की प्राथमिकताएं पूर्ण रूप से बदल गई हैं। सभी जगह लोग सब से पहले अपने संबंध में सोचते हैं, उसके बाद परिवार के संबंध में, फिर स्वजनों के संबंध में और फिर समाज के संबंध में। युद्ध-जैसी परिस्थितियों को छोड़ कर राष्ट्रीय हित की बात बहुत ही कम लोग सोचते हैं।

जब भारत स्वाधीन हुआ, उसी समय से ऐसे प्रयास किए जा सकते और किए जाने चाहिए थे जिनके द्वारा सभी समुदायों के बच्चों - भावी नागरिकों - को नैतिकता पर आधारित शिक्षा प्राप्त होती और इस प्रकार एक नए सुसंगठित राष्ट्र

का निर्माण संभव हो पाता। नैतिकता धर्म से भिन्न है। नैतिकता, अन्य बातों के साथ-साथ, जीवन-मूल्यों का प्रतिपादन करती है, जैसे, सच बोलो, सब लोगों, विशेषकर बड़ों और शिक्षकों का आदर करो, कानूनों और नागरिक आचार संहिताओं का पालन करो तथा पूर्ण एवं पारदर्शी ईमानदारी के साथ सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव रखो और उसे व्यवहार में चरितार्थ करो, इत्यादि। यह एक त्रासद सत्य है कि स्वाधीन भारत में राष्ट्र-निर्माण करने वाली किसी व्यापक शिक्षा पद्धति का प्रतिपादन नहीं किया गया। किसी भी सरकार ने भारत के संविधान में समाविष्ट राज्य के निम्नलिखित नीतिनिर्देशक तत्त्व को क्रियान्वित करने का अविच्छिन्न प्रयास नहीं किया :

45. बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था

> इस संविधान के आरंभ होने के दस वर्षों की अवधि के भीतर राज्य सब बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा तब तक देने की व्यवस्था करने का प्रयत्न करेगा जब तक वे चौदह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेते।

यदि इस स्पष्ट, सुनिश्चित और समयबद्ध संवैधानिक निर्देश को संविधान के लागू होते समय, 1950 से ही क्रियान्वित किया जाता तो आज भारत में निरक्षरता कहीं दिखाई न देती (अधिकांश जनसंख्या आज भी निरक्षर है!), बच्चों का शोषण नहीं होता, महिलाएं कहीं अधिक शक्तिसम्पन्न होतीं, जनसंख्या वृद्धि पर स्वैच्छिक नियंत्रण कहीं अधिक होता, प्रजातांत्रिक प्रक्रिया कहीं अधिक सुदृढ़ हुई होती, ग़रीब, विशेषकर ग्रामीण जनता के जीवन में दर्शनीय सुधार हुआ होता और एक ऐसे नूतन राष्ट्र का उदय हुआ होता, जिसमें सभी समुदायों के नागरिक भारतीयता की भावना से ओत-प्रोत, नैतिकता की शिक्षा से सम्पन्न और देशभक्त होते। इस अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य को हाथ में क्यों नहीं लिया गया? क्या साधनों की कमी के कारण? कदापि नहीं। यदि नूतन स्वाधीनता प्राप्त भारत में, प्रारंभ से ही बच्चों को अनिवार्य शिक्षा देने के कार्यक्रम को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती तो उसके लिए साधनों के बड़े भाग को देश के भीतर से ही जुटाया जा सकता था। जैसा कि नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. अमर्त्य सेन ने बार-बार कहा है, जहां तक बच्चों की शिक्षा का प्रश्न है, साधनों के अभाव की कोई बात हो ही नहीं सकती थी। इसके अतिरिक्त, संयुक्त राष्ट्र संघ तथा कई विकसित प्रजातांत्रिक देश प्रसन्नतापूर्वक अतिरिक्त वित्तीय सहायता देने को तत्पर हो जाते। पूरे विकसित विश्व की सहायता-एजेंसियों द्वारा मानव संसाधन विकास को सर्वत्र सदैव सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती रही है। नहीं, साधनों की कमी की समस्या नहीं थी। समस्या थी देश के कार्यव्यापार के प्रबंधन से जुड़े कुछ आधारभूत मुद्दों पर पर्याप्त ध्यान न देने की।

आइए, इस दुखद कथा को यहीं विराम दें और 1976 में घटित एक उत्साहवर्द्धक घटना की ओर नज़र डालें। 1976 में एक संशोधन करके, भारतीय संविधान में एक नया उपबंध जोड़ा गया जो कि 3 जनवरी 1997 से प्रभावी हुआ :

भाग 4 ए
मूल कर्तव्य

51ए. मूल कर्तव्य

प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह

(ए) संविधान के प्रति निष्ठा रखे और इसके आदर्शों एवं संस्थाओं - राष्ट्रीय ध्वज तथा राष्ट्रगीत - का सम्मान करे;

(बी) उन उच्च आदर्शों की कद्र तथा उनका अनुसरण करे जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी थी;

(सी) भारत की संप्रभुता, एकता तथा एकात्मता का अनुमोदन करे तथा उसका परिरक्षण करे;

(डी) देश की रक्षा करे तथा जब भी कहा जाए, राष्ट्रीय सेवा करे;

(इ) धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय तथा वर्ग संबंधी भेदभाव से ऊपर उठ कर भारत के सभी लोगों में समरसता तथा व्यापक भ्रातृभावना को प्रोत्साहित करे; महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध आचरण का परित्याग करे;

(एफ) हमारी सामासिक संस्कृति की समृद्ध धरोहर का समादर और परिरक्षण करे;

(जी) वनों, सरोवरों, नदियों और वन्य-प्राणियों सहित प्राकृतिक वातावरण का परिरक्षण और परिवर्द्धन करे और जीवधारियों के प्रति करुणा का भाव रखे;

(एच) वैज्ञानिक स्वभाव, मानवीयता, जिज्ञासावृत्ति तथा सुधारवृत्ति का विकास करे;

(आइ) सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करे तथा हिंसा का परित्याग करे; और

(जे) वैयक्तिक तथा सामूहिक कार्यकलाप के सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठता का प्रयास करे ताकि राष्ट्र निरन्तर उच्चस्तरीय प्रयासों और उपलब्धियों की दिशा में अग्रसर रहे।

इस नए अनुच्छेद में श्रेष्ठ सिद्धान्त समाहित हैं परन्तु चूंकि इनका अंगीकरण आपतकाल के दौरान हुआ था और उस समय संविधान द्वारा गारंटी किए गए सभी मूल अधिकार निलंबित थे, मूल कर्तव्यों का निर्धारण करने वाले इस अनुच्छेद का प्रभाव नगण्य ही रहा है।

पिछले दशकों में राजनीतिक वर्ग एवं नौकरशाही में भ्रष्टाचार के भयंकर प्रसार का समाज पर अत्यंत विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। आध्यात्मिक मूल्यों और करुणामय संस्कारों का, जिनसे भारत में मानव संबंध युगों से संपोषित होते रहे हैं, स्थान स्थूल भौतिकवाद ने ले लिया है। अपवादों को छोड़ कर, भारतीय हृदयहीनता की हद तक स्वार्थपरायण और अहंमन्य हो गए हैं। उचित या अनुचित, किसी भी प्रकार से पैसा इकट्ठा करना एकमात्र उद्देश्य रह गया है। कानून के शासन के प्रति कोई सम्मान नहीं रहा। सुशिक्षित तथा भौतिक दृष्टि से सम्पन्न लोग भी नियमों-विनियमों का उल्लंघन करने से परहेज़ नहीं करते। एक दूसरे के प्रति व्यवहार में रूखापन ही नहीं अक्खड़ता भी आ गई है जिसके परिणामस्वरूप समाज में अशिष्टता का वातावरण बनता जा रहा है। पाश्चात्य समाज के दोष तो हमारे शहरी उच्चवर्ग और मध्यमवर्ग में घर कर गए हैं, उस के गुणों को हमने ग्रहण नहीं किया। भारत के लोग पश्चिम की उपभोक्तावादी तथा स्त्री-पुरुष के बीच अस्थिर संबंधों की संस्कृति का तो अनुकरण कर रहे हैं पर पश्चिम के उदात्त गुणों - श्रेष्ठता का संधान, सत्यपरायणता, विश्वसनीयता, समयनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, उत्तरदायित्व और जवाबदेही की प्रबल भावना, व्यापार के सिद्धान्तों और नैतिक मूल्यों का अनुसरण, कानूनों, नियमों तथा विनियमों का पूर्ण परिपालन, आपस में शिष्ट व्यवहार, वरिष्ठ नागरिकों का समुचित लिहाज़ इत्यादि - का नहीं। ये अच्छी नागरिकता के वे अनिवार्य गुण हैं जिनसे एक अच्छे प्रजातंत्र की स्थापना और पुष्टि होती है।

सामाजिक मूल्यों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने वाले तथा कानून के शासन के प्रति सच्चा सम्मान रखने वाले समाज को बढ़ावा देकर जनता का पुनरुद्धार करना आज देश की एक सर्वोपरि आवश्यकता बन चुकी है। इस दिशा में सबसे आवश्यक पहला कदम यह होगा कि दो राष्ट्रीय आचार संहिताएं बनाई जाएं, एक स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए और दूसरी देश के नागरिकों के लिए।

बच्चों के लिए राष्ट्रीय आचार संहिता का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उनका विकास अनुशासित, ईमानदार, और कानून का सम्मान करने वाले भावी नागरिकों के रूप में हो। इस आचार संहिता के माध्यम से बच्चों के मन में राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना भरी जाए, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगीत के प्रति आदर, सभी परिस्थितियों में सत्यपरायणता तथा सद्व्यवहार के पथ पर दृढ़तापूर्वक चलने की इच्छा, सभी धर्मों तथा समुदायों का सम्मान, अपने माता-पिता, सभी गुरुजनों तथा शिक्षकों का आदर, एक मानव परिवार के सदस्य होने का अहसास, एक वैश्विक वातावरण के प्रति जागरूकता, अध्ययन के प्रति निष्ठा और सफ़ाई के प्रति सदैव सतर्कता इत्यादि भावों को जगाया जाए।

नागरिकों के लिए आचार संहिता में अन्य बातों के साथ जीवन के सभी क्षेत्रों में कर्तव्यपालन संबंधी श्रेष्ठता के मानदंडों का निर्धारण, धर्मनिरपेक्षता को प्रोत्साहन, सभी समुदायों के बीच पारस्परिक समरसता तथा सार्वजनिक जीवन में नैतिक, सदाचरणयुक्त, कानूनसम्मत और शिष्ट व्यवहार शामिल होने चाहिएं।

भारतीय संविधान का 51वां अनुच्छेद, जिसमें सभी भारतीय नागरिकों के मूल कर्तव्य दिये गये हैं, नागरिकों की राष्ट्रीय आचार संहिता का एक अंग होना चाहिए।

एक छोटा-सा कार्यदल, जिसमें सभी समुदायों से लिए गए विद्वान्, आदरणीय और सुख्यात व्यक्ति शामिल हों, उचित समय-सीमा में इन दोनों आचार संहिताओं की रचना कर सकता है। इस संबंध में वे भारत की समृद्ध सामासिक धरोहर तथा विश्व के अन्य उचित स्रोतों से प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

यदि सभी प्रदेशों के शिक्षामंत्री तथा शिक्षा के लिए उत्तरदायी केन्द्रीय- मंत्री स्वीकृति प्रदान कर दें तो बच्चों की राष्ट्रीय आचार संहिता को पूरे देश की स्कूल-शिक्षा के पाठक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जा सकता है।

यदि सभी प्रदेशों के मुख्यमंत्री तथा देश के प्रधानमंत्री स्वीकृति प्रदान कर दें तो नागरिकों की राष्ट्रीय आचार संहिता की अनुशंसा सभी नागरिकों के प्रति की जा सकती है और राष्ट्रीय मीडिया द्वारा इसके प्रचार-प्रसार की व्यवस्था की जा सकती है।

इन संहिताओं का उद्देश्य सभी लोगों के बीच एक नये चिंतन का सूत्रपात करना और, संभव हो तो, वर्तमान अव्यवस्था और अराजकता की ओर बढ़ती हुई दिशाहीनता की स्थिति को रोकना है। यदि तुरंत कुछ ठोस और प्रभावी उपाय न किये गए, तो सम्पूर्ण माफ़िया हकूमत केवल एक या दो आम चुनाव ही दूर है।

पुनश्च

सच्ची धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए सम्राट् अशोक के ईसा पूर्व 250 के 12वें शिलालेख को नीचे उद्धृत किया जाता है :

> महामहिम धर्मप्रिय सम्राट् उपहारों तथा आदर के अन्य साधनों द्वारा सभी सम्प्रदायों के व्यक्तियों - संन्यासियों अथवा गृहस्थों - के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। परन्तु महामहिम सम्राट् उपहारों अथवा बाहरी श्रद्धा की उतनी चिंता नहीं करते जितनी इस बात की कि विभिन्न भौतिक साधनों में अन्तर्निहित सार की संवृद्धि हो, परन्तु इनके मूल में वाणी का संयम ही है, उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को अकारण ही अपने सम्प्रदाय का आदर अथवा दूसरे के सम्प्रदाय की निंदा नहीं करनी चाहिए। निंदा केवल विशिष्ट कारणों के लिए ही होनी चाहिए, क्योंकि दूसरे लोगों के सभी सम्प्रदाय किसी न किसी कारण श्रद्धा के पात्र हैं।

जो व्यक्ति केवल सम्पूर्ण आसक्ति के कारण अपने सम्प्रदाय का सम्मान बढ़ाने के उद्देश्य से दूसरे के सम्प्रदाय की निंदा करते हुए अपने सम्प्रदाय का गुणगान करता है, वह वास्तव में अपने इस आचरण के द्वारा अपने ही सम्प्रदाय पर सबसे अधिक आघात करता है। अतएव, सामंजस्य ही श्रेयस्कर है, उदाहरणार्थ, अन्य लोगों द्वारा स्वीकृत धर्मचर्या के नियम को स्वेच्छापूर्वक ध्यान से सुनना।[1]

यदि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन, पारसी तथा अन्य सभी भारतीय सम्राट् अशोक द्वारा प्रतिपादित धर्मनिरपेक्षता के इस श्रेष्ठ सिद्धान्त को ईमानदारी से स्वीकार कर लें और अपने दैनिक जीवन में इसकी अभिव्यक्ति करें, इस पर आचरण करें, तो सच्चे अंतर्साप्रदायिक सौहार्द का श्रीगणेश हो सकता है।

धर्म विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत मामला है और इसका आह्वान केवल धार्मिक मामलों में ही किया जाना चाहिए। राज्य से संबंधित जीवन के अन्य सभी पक्षों - देश के कानून, समाज, रोज़गार के अवसर, व्यापार, उद्योग, वाणिज्य, खेलकूद, संगीत अथवा मनोरंजन आदि - में प्रत्येक भारतीय को अवसर की समानता प्राप्त होनी चाहिए। भारतीय शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में कोई भी सितार, सरोद, वीणा अथवा तबला बजाने वाले 'उस्ताद' के धर्म की चिन्ता नहीं करता। पूरा का पूरा समूह, जिसमें साधारणतः विभिन्न धर्मों के लोग होते हैं, सम्पूर्ण समरसता के साथ अपने अपने वाद्य बजाता है, प्रत्येक वादक इस सामूहिक प्रयास से उठने वाली स्वरलहरी का आनन्द उठाते हुए झूमता और मुस्कुराता है। यही है वह भाव, जिसके साथ समूचे भारत को अपने राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहभागी बनने की कामना करनी चाहिए।

इस सब के लिए साम्प्रदायिकता से सर्वथा दूर एक नई मानसिकता की आवयकता है। यदि आज हम बच्चों के साथ प्रारंभ करें, तो अगले कुछ वर्षों में हमें वर्तमान सहस्राब्दी के भारतीयों के राष्ट्र की उपलब्धि होगी। यह एक विलक्षण अवसर है जो हम सब का आह्वान कर रहा है।

अंत्यसंकेत

1. आल्डस हक्सले, *पिरिनियल फ़िलॉसोफ़ी*, हार्पर कोलिन्स, न्यूयॉर्क, 1990, पृष्ठ 199।

अध्याय 13

व्यापार और उद्योग में नैतिकता की ओर

भारत में भ्रष्टाचार के एक बहुत बड़े भाग का उद्‌गम व्यापार और उद्योग से होता है। जब से 'लाइसेंस परमिट और कोटा राज' का ज़माना आया और उसके साथ ही सरकारी हुक्मरानों को अपने-अपने राजनीतिक दलों की गतिविधियों को वित्तपोषित करने के लिए काले धन की आवयश्कता शुरू हुई, तभी से अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा करने तथा, उस के साथ ही, शासक वर्ग को संतुष्ट और प्रसन्न रखने के लिए, वाणिज्यिक, औद्योगिक तथा ऐसी ही अन्य गतिविधियों से जुड़े लगभग सभी संगठनों के नेताओं के लिए भ्रष्टाचार का आश्रय लेना आवश्यक हो गया है। पिछले कई वर्षों से, महत्वपूर्ण व्यापारिक प्रतिष्ठानों ने नई दिल्ली तथा प्रदेशों की राजधानियों में अपने-अपने संपर्क प्रतिनिधियों के माध्यम से एक पक्की व्यवस्था कर रखी है। इसके अन्तर्गत अत्यंत चतुराई के साथ नकद धनराशि का वितरण किया जाता है तथा पांच-सितारा होटलों अथवा भव्य फ़ार्म भवनों में वैभवशाली आतिथ्यों का आयोजन किया जाता है। इन उदार उपहारों के लाभभोगी वे लोग हैं जो राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं तथा वे लोग जो सरकार की प्रशासकीय, कार्यपालिका और जांच संबंधी शाखाओं में निर्णायक पदों पर नियुक्त हैं।

चंदन मित्रा के कथनानुसार :

इस विषय में शायद ही मतभेद हो कि राजनीति पर भ्रष्टाचार का सब से अधिक दुष्प्रभाव व्यापार और उद्योग डालते हैं। पूंजीवादी उद्यमिता के आरंभिक वर्षों से ही अधिकाधिक लाभ और प्रभुत्व अर्जित करने की निरंकुश प्रवृत्ति के कारण व्यापार के संचालन में नैतिकता का लगातार ह्रास हुआ है। एक व्यापारी की आवश्यकता यह होती है कि सरकारी नीति को अपने व्यापार की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाए अथवा अपने प्रतिद्वंद्वी के मार्ग में बाधा उत्पन्न की जाए। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए वह राजनीतिज्ञों को अपनी मुट्ठी में समेटने का प्रयत्न करता है और बदले में, राजनीतिज्ञ अपने संयुक्त (व्यापारी और राजनीतिज्ञों के) हितों को सिद्ध करने के लिए नौकरशाही को भ्रष्ट बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यापारी-राजनीतिज्ञ-नौकरशाह की

तिकड़ी बनती है जिसे प्रायः आपराधिक संगठनों का सहयोग प्राप्त होता है। यही वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार का मुख्य आधार है और जहां तक भारत का संबंध है, इस गठबंधन का दुष्प्रभाव पूरी की पूरी व्यवस्था पर, निचले से निचले स्तर - रेलगाड़ी के टिकट परीक्षक, सड़क के चौराहे पर खड़े यातायात-सिपाही अथवा ऐसे किसी भी व्यक्ति पर जिस के पास सत्ता का छोटे से छोटा पद भी है - पड़ता है।[1]

व्यापारियों और उद्योगपतियों ने इसी प्रकार अपने वैध और, अधिकतर, अवैध व्यापारिक हितों का साधन करके विशाल व्यापारिक साम्राज्य खड़े करने और बेशुमार सम्पत्ति उपार्जित करने में सफलता प्राप्त की है। इन कामों को सफलता-पूर्वक सम्पन्न करने के लिए वे अपने धन का बहुत बड़ा भाग अलग करके उसे उस लेखे में अन्तरित करते रहे हैं जिसे सामान्य भाषा में 'लेखा नं. 2' कहा जाता है। खर्च की बनावटी मदें शामिल करके तथा सही आमदनी को छिपा कर कंपनियों के नकली खाते तैयार किए जाते हैं। इस प्रकार काले धन की बड़ी-बड़ी राशियां पैदा की जाती हैं जो करों के जाल से पूर्णतया बाहर रहती हैं। इस प्रकार के मामलों की चार्टर्ड-एकाउन्टैन्ट व्यर्थ चिन्ता नहीं करते और कंपनी लेखा परीक्षकों के तौर पर प्रसन्नतापूर्वक अप्रतिबन्धित प्रमाणपत्र दे देते हैं। और, निस्संदेह संबंधित राजस्व विभागों के अधिकारियों की सेवा तो मुक्तहस्त से की ही जाती है। इसका कुल परिणाम यह होता है कि करों और शुल्कों के रूप में मिलने वाले अरबों रुपयों से राजकोष वंचित रह जाता है। यदि यह धन राजकोष में जमा हो पाता, तो इस का उपयोग ग़रीब जनता के कल्याण के लिए हो सकता था।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य की स्थिति भी यही है। निर्यात के बीजकों में कम दरें लगाकर तथा, यदि लाभदायक हो तो, आयात के बीजकों में ऊंची दरें लगाकर, संबंधित व्यापारिक प्रतिष्ठानों के नेता विशाल विदेशी मुद्राधीन धन को स्विस बैंकों के कूट संख्या वाले अपने खातों में जमा कर देते हैं। कहा जाता है कि अब तक इस प्रकार जमा धन अरबों डालरों की संख्या तक जा पहुंचा है।

कुछ बड़े-बड़े व्यापारी, जिनकी पहुंच ऊंचे सरकारी क्षेत्रों में होती है, उस 'भव्य भ्रष्टाचार' में मध्यस्थों या बिचौलियों के रूप में भी शामिल हो जाते हैं जिसका आश्रय तब लिया जाता है जब सरकारी मंत्रालयों अथवा सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को युद्ध सामग्री, अत्याधुनिक मशीनें और उपकरण आदि खरीदने होते हैं। इन सौदों में बहुत बड़ी-बड़ी रकमों का लेन-देन होता है; कभी-कभी यह राशि अरबों डॉलरों तक की होती है। ऐसे प्रत्येक सौदे में यदि व्यापारी तथा निर्णय करने वालों को पांच-पांच प्रतिशत की दलाली भी मिल जाए तो हर एक को कई लाख डॉलरों का लाभ हो सकता है।

इससे भी अधिक क्षुब्ध करने वाली धारणा वह है जिसका उल्लेख जानकार लोग बहुधा करते हैं। ये लोग व्यापार और उद्योग जगत् से ही संबंधित हैं। इनके अनुसार उनमें से चंद बड़े लोगों ने शानदार उपहार दे-देकर सरकारी निर्णय तंत्र के प्रमुख अनुभागों में निर्णायक प्रभाव स्थापित कर लिया है और अपने इस प्रभाव का उपयोग वे बिना हिचकिचाहट अपने फ़ायदे तथा अपने व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वियों को नुकसान पहुंचाने के लिए करते हैं।

तो यह है आज के भारत में व्यापार की तस्वीर - खौलता हुआ और सर्वत्र फैला भ्रष्टाचार, काले धन की अर्थव्यवस्था के साथ लिपटी और संभोग करती सफ़ेद धन की अर्थव्यवस्था और शासक वर्ग को भ्रष्ट करता कीचड़ से सना धन! यह तस्वीर क्षुब्ध करती है और अभी तक ऐसा दिखाई नहीं देता कि व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठान सुधार की किसी विशेष प्रक्रिया को प्रारंभ करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर एक नई उत्साहवर्द्धक बात यह है कि कार्पोरेट जगत् में श्री नारायणमूर्ति जैसे नए नेताओं का पदार्पण हुआ है जो देश के व्यापारिक क्षेत्र में सत्यनिष्ठा की सर्वोच्च मर्यादाओं का पालन तथा परिपोषण करने के लिए कृतसंकल्प हैं।

विकसित विश्व में हाल ही के वर्षों में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक लेन-देन में भ्रष्टाचार के प्रश्न को लेकर काफ़ी सोच-विचार किया गया है। अब यह आमतौर पर अनुभव किया जाने लगा है कि रिश्वतखोरी को आधार बनाकर की जाने वाली प्रतिस्पर्द्धा से देर-सवेर प्रत्येक व्यापारिक प्रतिष्ठान को गणनातीत नुकसान होगा। भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कई उपाय किए गये हैं। कई कंपनियों ने नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित अपनी-अपनी प्रबंधन संहिताओं की प्रख्यापना की है। इन नियमों के पालन को सुनिश्चित करने के लिए 'नैतिकता अधिकारियों' की नियुक्ति भी की है। बहुत-सी कंपनियां आजकल अपने कंपनी लेखा परीक्षकों को यह निर्देश देती हैं कि प्रत्येक लेन-देन के औचित्य की रिपोर्ट देने के लिए 'नैतिकता लेखा परीक्षा' भी करें। संयुक्त राज्य अमेरिका तो इससे और आगे गया है। 1977 के 'विदेशी भ्रष्टाचरण अधिनियम', जिसका 1988 में संशोधन किया गया था, के अंतर्गत यूएस कंपनियों द्वारा विदेशों में भी रिश्वत दिया जाना न केवल वर्जित है अपितु एक अपराध के रूप में दंडनीय भी है।

संयुक्त राज्य का विदेशी भ्रष्टाचरण अधिनियम कांग्रेस की सुनवाई के दौरान हुए उस प्रकटीकरण का परिणाम था जिसमें यह तथ्य सामने आया था कि यूएस की बड़ी-बड़ी निगमों, जैसे लॉकहैड, युनाइटिड ब्रांड्स, नार्थरुप और गल्फ़, ने विदेशी ऑर्डर हासिल करने के लिए रिश्वत का उपयोग किया है। रिश्वत लेने वालों में जापान का एक प्रधानमंत्री, इटली का एक रक्षा मंत्री, हॉनडुरास का एक राष्ट्रपति तथा नैदरलैंड्स के राजकुमार बर्नहार्ड शामिल थे ।

विदेशी भ्रष्टाचरण अधिनियम के अंतर्गत किसी विदेशी अधिकारी, किसी विदेशी राजनीतिक दल अथवा किसी विदेशी राजनीतिक पद के प्रत्याशी को पैसा देना वर्जित है। यह अधिनियम सरकारी सेवकों और निर्वाचित अधिकारियों, दोनों पर लागू होता है। यह ऐसे भुगतानों पर लागू होता है जो नया व्यापार करने अथवा वर्तमान व्यापार को जारी रखने के उद्देश्य से किसी कदम अथवा निर्णय को प्रभावित करने के लिए किये जाते हैं।[2]

यद्यपि भारतीय व्यापारी वर्ग में भ्रष्टाचार सर्वव्यापी है और देश में कालाधन सफ़ेद धन के साथ भरपूर मात्रा में मौजूद है, कुछ मंचों पर इक्का दुक्का बहसों के अतिरिक्त, इस बुराई को नष्ट करने के कोई ठोस प्रयास नहीं किए गए हैं।

भारतीय उद्योग परिसंघ (सीआइआइ) ने 1998 में एक दस्तावेज़ प्रकाशित किया था जिसका शीर्षक था *'वांछित कार्पोरेट शासन - एक आचारसंहिता'*। इस दस्तावेज़ के प्राक्कथन में सीआइआइ के तत्कालीन अध्यक्ष ने इसके उद्देश्य का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया था :

> सीआइआइ की यह पहलकदमी जिन सार्वजनिक सरोकारों से उत्पन्न हुई है, वे हैं - निवेशक, विशेषकर छोटे निवेशक के हितों की रक्षा करना; व्यापार और उद्योग में पारदर्शिता को बढ़ावा देना, कार्पोरेट क्षेत्र के प्रकटीकरण-नियमों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर का बनाना तथा इस सब के द्वारा व्यापार और उद्योग में उच्चस्तरीय सार्वजनिक विश्वास का विकास करना। निस्संदेह यह कदम स्वागत के योग्य है तथा इसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। पारदर्शिता और प्रबंधन के उच्चतर मानकों की जितनी आवश्यकता सरकारी प्रशासन में है, उतनी ही व्यापार और उद्योग में भी।

कार्पोरेट शासन संहिता में बोर्ड स्तरीय लेखा परीक्षा कमेटी का भी उल्लेख है जिसमें कम से कम 3 ऐसे ग़ैर-कार्यपालक निदेशक शामिल किए जाने की व्यवस्था है जो कंपनी के खातों की गुणवत्ता और सत्यपरता के साथ साथ लेखा परीक्षकों की अपनी योग्यता के संबंध में सांविधिक लेखा परीक्षकों और आन्तरिक लेखा परीक्षकों के साथ विचार-विमर्श कर सकें। एक और अनुशंसा 'अनुपालन प्रमाणपत्र' की आवश्यकता के विषय में है जिस पर मुख्य कार्यपालक अधिकारी तथा मुख्य वित्तीय अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए। इसमें इस बात की पुष्टि होनी चाहिए कि "वार्षिक रिपोर्ट में दी गई वित्तीय विवरणियों और जानकारी को तैयार करने, उनके सत्यनिष्ठ होने और सही प्रस्तुतीकरण के लिए प्रबंधन उत्तरदायी है ..."।

ये अनुशंसाएं अपने आप में ठीक हैं तथा सभी कार्यविवरणों में 'औचित्य' जांच की अवधारणा की दिशा में यह एक अगला कदम है। परन्तु इन से 'नैतिकता लेखा

परीक्षा' की कमी पूरी नहीं होती। सच तो यह है कि सीआइआइ की अनुशंसाओं में 'नैतिकता' शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया है।

अब सीआइआइ को चाहिए कि वह व्यापार और उद्योग में भ्रष्टाचार की वर्तमान स्थिति की जांच करने तथा इस संकट से लड़ने के लिए सुस्पष्ट सुझाव देने के लिए 'व्यापार में नैतिकता' पर एक समिति की स्थापना करे। यह आवश्यक है कि इसका उद्देश्य देश की अर्थव्यवस्था से काले धन की समाप्ति और भविष्य में नैतिकता के मानदंडों का दृढ़तापूर्वक पालन करना हो, ठीक वैसे ही जैसे इन दिनों अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है। 'व्यापार में नैतिकता' की अवधारणा को प्रोत्साहन और समर्थन देने के लिए देश की सरकार द्वारा कौन से कदम उठाए जाना ज़रूरी है, इस बात का विस्तृत विवरण भी इसमें दिया जाना चाहिए।

यह तो स्पष्ट है कि यदि राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार के सभी रूपों के विरुद्ध संघर्ष का प्रयास किया जाता है तो, व्यापारिक वर्ग के लिए उसका अविभाज्य अंग होना अनिवार्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि सरकार के सर्वोच्च पदों पर स्थित राजनीतिक नेताओं, सीआइआइ, फ़िक्की तथा एस्सोचैम जैसे राष्ट्रीय व्यापारिक और औद्योगिक संगठनों के बीच कार्यसूची की निम्नलिखित मदों पर बातचीत की जाए तो कुछ ठोस काम के लिए मार्ग प्रशस्त हो सकता है :

1. प्रबंधन में सत्यनिष्ठा - नैतिकता पर आधारित एक आचार संहिता बनाई जाए जिसे प्रबंधकों तथा निजी क्षेत्र के बहुसंख्यक एकल शेयरधारकों पर, जो 'मालिकों' के रूप में अपनी कंपनियों के दैनिक कामकाज पर प्रभावी नियंत्रण रखते हों, लागू किया जाए। साथ ही, यह जनप्रतिनिधियों के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों पर स्वामित्व का अधिकार रखने वाले मंत्रियों और संसत्सदस्यों पर भी लागू हो। इसमें स्पष्ट रूप से अपने प्रतिष्ठानों के संसाधनों का निजी लाभ अथवा हित के लिए उपयोग करने का निषेध हो।
2. आचार संहिताओं के प्रभावकारी कार्यान्वयन के लिए 'नैतिकता अधिकारियों' की नियुक्ति की जाए।
3. कंपनी के लेखा परीक्षकों द्वारा हिसाब-किताब के रख-रखाव में सत्यनिष्ठा- लेन-देन की सभी मदों की कंपनी लेखा परीक्षकों द्वारा 'नैतिक लेखा परीक्षा'। इसके अंतर्गत न केवल प्रत्येक मद की समुचित स्वीकृति की जांच की जाए अपितु नैतिकता की दृष्टि से उसके औचित्य की जांच भी हो, जैसा कि यूरोप और अमेरिका के कई प्रमुख व्यापारिक प्रतिष्ठानों में हो रहा है।
4. सभी देय करों और शुल्कों की स्वेच्छापूर्वक समयानुसार अदायगी।

'भारतीय चार्टर्ड एकाउंटैंट्स संस्थान' के प्रतिनिधियों के साथ भी ऐसा ही विचार विमर्श उपयोगी सिद्ध होगा। इससे कंपनियों के खातों की लेखा परीक्षा के लिए, विशेषकर नैतिकता की दृष्टि से, अधिक कड़े मानकों के निर्धारण में सहायता मिलेगी। चार्टर्ड एकाउंटैंट्स संस्थान इस बात पर भी अपनी राय दे सकेगा कि क्या वांछित परिणाम हासिल करने के लिए कंपनी अधिनियम को और सुदृढ़ बनाए जाने की आवयकता है।

भारत के प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) को भी, व्यापार में नैतिकता को प्रोत्साहित करने के इस राष्ट्रीय प्रयास में भाग लेने के लिए आमंत्रित करना होगा।

वैश्विक अर्थव्यवस्था के आज के संसार में, भारतीय व्यापार एवं उद्योग के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी दृष्टियों से आचरण के वैश्विक मानकों की कसौटी पर खरा उतरे। जहां तक सरकार की ज़िम्मेदारी का प्रश्न है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह और अधिक उदारीकरण, घटे हुए स्तरों के साथ सरलीकृत कर संरचना और राज्यव्यवस्था में परिवर्द्धित पारदर्शिता की मांगों को ध्यानपूर्वक सुने।

सरकार और उद्योग के बीच उच्चतम स्तरों पर निरंतर एवं मैत्रीपूर्ण संवाद बना रहने से वांछित परिणामों की सही उपलब्धि होने की काफ़ी संभावना है। और यदि सत्यनिष्ठा पर आधारित एक नई भागीदारी की स्थापना हो सके तो एक अरब की जनसंख्या वाले इस देश के करोड़ों किसानों और मज़दूरों की मूलभूत, अत्यावश्यक और अत्यंत विलंबित आवयश्कताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधनों को जुटाया जा सकता है। क्या संपत्तिशाली लोगों सहित भारत की सारी जनता के लिए यह अत्यंत संतोष का विषय नहीं होगा कि वे सब नई सहस्राब्दी में जाति, संप्रदाय, धर्म, भाषा, व्यवसाय, जीवन-स्तर के भेदभाव से ऊपर उठ कर एक नए भारत के निर्माण के लिए हाथ मिलाएं - एक ऐसे भारत के लिए जिसमें प्रत्येक नागरिक के साथ न्यायसंगत व्यवहार होता है?

अंत्यसंकेत

1. चंदन मित्रा, *द करप्ट सोसाइटी*, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 18, 19।
2. जॉर्ज, मूडी स्टुआर्ट, *ग्रैंड करप्शन*, वर्ल्डव्यू पब्लिशिंग, ऑक्सफ़ोर्ड, यू.के., 1997, पृष्ठ 63, 64।

अध्याय 14

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार के प्रतिरोध के उपाय

इन दिनों तीसरी दुनिया के लगभग सभी देशों की विकास योजनाओं पर भ्रष्टाचार के प्रभाव को लेकर व्यापक चिंता है, और यह बढ़ रही है। राष्ट्रीय बजटों द्वारा निर्धारित अथवा सहायता देने वाले देशों या एजेंसियों द्वारा ग़रीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए दी गई धनराशि का बहुत बड़ा भाग महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर बैठे बेईमान राजनीतिक नेता अथवा नौकरशाह खुर्द-बुर्द कर देते हैं। रिश्वत और दलाली की मोटी-मोटी रकमों की कदम-कदम पर मांग होती है जिसके कारण औद्योगिक पुनर्निर्माण की महत्वपूर्ण परियोजनाओं पर आने वाले खर्च में अनावश्यक वृद्धि होती चलती है और कल्याण योजनाओं के लिए होने वाला वास्तविक ख़र्च घटते-घटते कभी-कभी तो निधिबद्ध राशि का केवल 15 प्रतिशत ही रह जाता है।

राष्ट्रों या सरकारों के प्रमुखों तथा अन्य अधिकारियों के संबंध में यह विदित है कि उन्होंने अनुचित साधनों से उपार्जित अपने धन को स्विस बैंकों के कूट संख्याओं वाले खातों में जमा कर रखा है। इस व्यापार में इकट्ठी धनराशि की मात्रा चौंका देने वाली है। इस विषय में पीटर जॉन पैरी का कथन यह है :[1]

> अधिकतम राशि के संबंध में अरबों डॉलर का अनुमान कोई असाधारण बात नहीं है। कॉककौफ़्ट (1990, 180) के अनुसार 1974 से 1985 के बीच जब अफ़्रीकी देशों में लोक-ऋण बढ़ रहा था और उसके साथ साथ भ्रष्टाचार भी प्रगति पर था तब, अफ़्रीकी नागरिकों की समुद्रपारीय परिसंपत्तियों का मूल्य 20 अरब डॉलर को छूने लगा था। इससे बाद की स्थिति का उल्लेख करते हुए अयित्ती (1990, 235) ने आरोप लगाया है कि प्रतिवर्ष अफ़्रीका से 15 अरब डॉलर देश से बाहर विदेशी बैंकों में चले जाते हैं, यह राशि वार्षिक विदेशी सहायता की राशि से अधिक है; और (1990, 235) केन्या निवासियों की विदेशी परिसंपत्तियां, जिनकी मात्रा 5 अरब डॉलर है, उस देश के कुल लोक-ऋण से 1 अरब ज़्यादा है। ईगन ने उद्धृत किया है कि 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में अफ़्रीकी नेताओं की स्विस बैंकों में जमाराशियां 20 अरब डॉलर थीं, पर आगे चलकर उसने कहा है कि भ्रष्टाचार के कारण किए गए ग़लत निर्णयों की बढ़ती हुई कीमत इस से कहीं अधिक होने की संभावना है (1993, 9)। ऐसा कहा गया है (हाइडनहाइमर, 1989, 786) कि 1952-61

के काल में लेटिन अमेरिका के राष्ट्राध्यक्षों द्वारा उपार्जित सम्पत्ति करीब-करीब उन देशों को मिलने वाली सहायता के बराबर थी। नाइजिरिया में, 1992 में लगभग 3 अरब डॉलर - वहां के अनुमानित सकल घरेलू उत्पाद के 10 प्रतिशत के बराबर - लोकलेखाओं से ग़ायब हो गए थे; इनमें से अधिकांश भ्रष्टाचार की भेंट हो गए थे (*द इकोनॉमिस्ट*, 5 मार्च 1994)। स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार का महत्व दीर्घ-आर्थिक और, इसलिए दीर्घ-भौगोलिक दृष्टि से भी है। व्यक्तिगत उद्यमिता के स्तर पर, विलियम्स (1987, 99) ने 1980 में एक अपेक्षाकृत छोटी, नाइजिरियाई चावल कंपनी के 1 करोड़ पाउंड का उद्धरण दिया है।

अरबों डॉलरों के मूल्य की युद्ध सामग्री अथवा अत्याधुनिक तकनीकी मशीनों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक सौदों में निर्माताओं और आपूर्तिकर्त्ताओं से, जो कि प्रायः विकसित देशों के रहने वाले होते हैं, आयात करने वाले देशों के मंत्री और अधिकारी करोड़ों डॉलरों की दलाली मांगते हैं। इस प्रकार प्राप्त काले धन को विदेशों में कूटांकित खातों में सुरक्षित रूप से जमा कर दिया जाता है। प्रायः इस धन को नकली कंपनियों के नाम से जमा किया जाता है ताकि इस का पता न चल सके।

विकसित देशों में भी भ्रष्टाचार है तो सही, पर यह अपेक्षाकृत बहुत कम है और उसका असर वहां के आम लोगों के दैनन्दिन-जीवन पर नहीं पड़ता। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार सर्वत्र व्यापक है और वहां के करोड़ों साधारण लोगों को, जो आज भी नारकीय एवं अपमानजनक जीवन जी रहे हैं, राहत पहुंचाने के सभी प्रयासों को निष्फल कर देता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के प्रशासक जेम्स गुस्ताव स्पेथ ने, विजयी मित्र देशों द्वारा किए गए एक 'अभावमुक्त', साहसी, नये विश्व के निर्माण के दृढ़ संकल्प के 55 वर्ष बाद, वर्तमान स्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया है :

विश्व-भर में फैले विकासशील देशों के 4.4 अरब लोगों का 3/5वां भाग ऐसे समुदायों में रहता है जहां बुनियादी शौच सुविधाएं नहीं हैं; एक तिहाई लोगों को पीने का पानी उपलब्ध नहीं है; एक चौथाई लोगों के पास पर्याप्त आवासीय सुविधा नहीं है; उनका पांचवां भाग कुपोषण ग्रस्त है और 1.3 अरब लोग 1 डॉलर प्रतिदिन से भी कम में निर्वाह करते हैं। निर्धनतम देशों के लगभग एक तिहाई लोग, जिनमें अधिकतर अफ्रीका के सहारा अंचलों में रहते हैं 40 वर्ष तक पहुंचते-पहुंचते मर जाने की आशंका से ग्रस्त हैं।[2] *(इस वक्तव्य पर बल हमने अपनी ओर से दिया है)*

विश्व के ग़रीब लोगों की उपरोक्त स्थिति को लेकर विश्व के समृद्ध, विकसित देशों के कई नेताओं की अंतश्चेतना आकुल है। इनमें से चार - विकास-सहयोग

की डच मंत्री, एवेलिन हर्फकेन्स, नार्वे के अंतर्राष्ट्रीय विकास और मानवाधिकार मंत्री हिल्डी एफ़ जॉन्सन, ब्रिटेन की अंतर्राष्ट्रीय विकास की राज्य सचिव, क्लेयर शार्ट और जर्मनी के विकास सहयोग मंत्री, विक्ज़ोरेक ज़्युल ने विकासशील विश्व में व्याप्त ग़रीबी और भ्रष्टाचार से व्याकुल होकर 1999 की गर्मियों में पश्चिमी नॉर्वे के उत्सतिन ऐबी नामक स्थान पर भेंट की और इन बुराइयों के संबंध में कुछ निर्णयात्मक कदम उठाने का निश्चय किया। अपने विचार-विमर्श के पश्चात् उन्होंने निम्नलिखित घोषणा पत्र को स्वीकार किया :

हमारे युग की बहुत बड़ी नैतिक समस्या ग़रीबी है। यह समस्या बद से बदतर होती जा रही है। इन दो वाक्यों के साधारण सत्य का निहितार्थ नीतिनिर्धारकों के लिए जितना स्पष्ट है, उतना ही क्षुब्ध करने वाला भी।

यदि हम ग़रीबी की समस्या के समाधान की दिशा में प्रगति नहीं कर पाते, तो अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिज्ञों के रूप में हम सफलता का दावा भी नहीं कर सकते।

हमारी आज की दुनिया की सच्चाई की इस भविष्यदृष्टि से प्रेरित हो कर हम चारों पश्चिमी नार्वे के उत्सतिन ऐबी नामक स्थान पर हाल ही में इकट्ठे हुए थे। अंतर्राष्ट्रीय विकास के मंत्रियों के नाते हमने इस विषय पर विचार करने के लिए भेंट की कि ग़रीबी के विरुद्ध संघर्ष में और अधिक प्रगति कैसे की जा सकती है।

ग़रीबी के वर्तमान प्रवाह को पलटने की शक्ति केवल स्वयं में तो हमारे पास नहीं है। परंतु परिवर्तन के लिए सुदृढ़ संगठन खड़ा करने की ज़िम्मेदारी में हम सहभागी हैं।

अपने विचार-विमर्श के दौरान हमने जिन मुद्दों को केन्द्र में रखा उनमें सहायता देने वालों के बीच तालमेल में सुधार करना और अपनी सहायता पर लगे बंधनों को खोलना, भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष को समर्थन देना, ऋण-राहत को अधिक गहराई से पूरा करने के अपने प्रण को निभाना और द्वंद्वों तथा संकटों के निराकरण से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के संकल्प एवं योग्यता को सुदृढ़ करना शामिल हैं।

बहुत से निर्धनतम देश अनेक सहायता देने वालों और सहायता राशि के उपयोग के औचित्य को सिद्ध करने वाली रिपोर्टों की तैयारी के बोझ तले दबे हैं। सहायता देने वाले देश प्रायः स्वयं प्राथमिकताएं निर्धारित करते हैं और सहायता के लिए सामग्री एवं सेवाओं की ख़रीद अपने देशों से करने की शर्त रखते हैं।

हमें निर्धन देशों की सहायता करनी चाहिए और उनके प्रयासों में बाधक नहीं बनना चाहिए, न ही उनका संचालन अपने हाथों में लेना चाहिए। हमें उन्हें छूट देने के लिए तैयार रहना चाहिए और अपने सहभागियों को उनकी विकास संबंधी रणनीतियों की कमान उन्हें स्वयं संभालते देखना चाहिए। हमें उन देशों की

सरकारों और संसदों को अपनी राजनीति के नियंता स्वयं होने का एक सच्चा अवसर देना चाहिए।

विश्व बैंक द्वारा प्रस्तावित विकास की विस्तृत रूपरेखा परिवर्तन का महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बन सकती है। जो इसे अपनाना चाहें, हम उन सरकारों की सहायता के लिए तैयार हैं।

भ्रष्टाचार, चाहे वह संभ्रान्त लोगों के लालच से प्रेरित हो, या फिर कम वेतन पाने वाले मुलाज़िमों की ज़रूरत से, विकास के मार्ग की एक बहुत बड़ी बाधा है। भ्रष्टाचार प्रजातंत्र की जड़ें काटता है तथा सरकार की विश्वसनीयता को नष्ट करता है। भ्रष्टाचार का अर्थ है ग़रीबों की जेब काटना।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध युद्ध सभी देशों को छेड़ना होगा। हम अपने सहभागी देशों के प्रयासों का समर्थन करने तथा उनमें से कइयों के साथ पहले से चल रहे उन्मुक्त संवाद को जारी रखने के लिए कृतसंकल्प हैं। हम सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों का समर्थन करेंगे और नियंत्रण-व्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने में सहायता करेंगे।

इसके साथ ही हमें ग़रीब देशों के ऋण-संकट के समाधान के लिए तत्परतापूर्वक उपाय करने होंगे। हाल ही में आयोजित सात देशों (जी-7) की कोलोन शिखर वार्ता में ऋण से राहत देने संबंधी पहलकदमी एक बहुत अच्छी खबर है। जी-7 देशों के प्रस्ताव को लागू करके, हम ग़रीब ऋणी देशों को ग़रीबी घटाने के लिए और अधिक धन निर्धारित कर सकने योग्य बना पाएंगे।

परन्तु इस पहलक़दमी की सफलता दो ख़ास बातों पर आधारित है। प्रथम, सभी द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय ऋणदाताओं द्वारा पर्याप्त वित्तीय साधन जुटाए जाने की सामूहिक क्षमता जो पारदर्शी और समुचित ढंग से भार बंटाने के सिद्धान्त पर आधारित हो। दूसरे, ऋण राहत को सच्चे अर्थों में ग़रीबी कम करने तथा विकास की निरन्तरता में परिवर्तित करने की योग्यता।

हम ऋणदाता देशों को, पूरी शक्ति के साथ इस बात के लिए प्रोत्साहित करते हैं कि वे पेरिस क्लब द्वारा प्रस्तावित निर्गमन समाधानों को सुदृढ़ करने के उपाय ढूंढें। एक स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण योगदान यह होगा कि प्रभावी नीतियों का पालन करने वाले निर्धनतम देशों द्वारा लिए गए विकास सहायता ऋण के शेष भाग को माफ़ कर दिया जाए।

अन्य विकल्पों में बहुपक्षीय समझौतों में सर्वोपरि वाणिज्यिक ऋणों की माफ़ी अथवा एचआइपीसी ट्रस्ट कोष में, जो कि बहुराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी गई ऋण-राहत में सहयोग देता है, अतिरिक्त धनराशि देना शामिल हैं।

हम पेरिस क्लब से अनुरोध करते हैं कि वह ऋण-जाल से सच्चे अर्थों में मुक्ति

देने के उद्देश्य की उपलब्धि के लिए, जब आवश्यक हो, ऋण के स्तर में 90 प्रतिशत से भी अधिक कमी करने के प्रस्ताव को अंगीकार करे।

निर्धनता के अभिशाप से संघर्ष करने के लिए केवल ऋण ही नहीं अपितु व्यापार और विकास संबंधी वित्तपोषण जैसे विषयों पर भी कल्पनाशील ढंग से विचार करने और ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। ज़रूरतमंद देशों में निजी निवेश को आकर्षित करने के ठोस उपाय करना भी आवश्यक है।

वास्तविक जीवन को बेहतर बनाने के लिए हम अधिकाधिक निजी-सार्वजनिक सहभागिता को प्रोत्साहित करेंगे। अभी हाल में पोलियो निर्मूलन के लिए विश्व-स्वास्थ्य संगठन और एक अंतर्राष्ट्रीय कंपनी के बीच सहयोग एक ऐसा ही उदाहरण है।

आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओइसीडी) के देशों द्वारा मान्य कुल प्राधिकृत विकास सहायता (ओडीए) सकल घरेलू उत्पाद के अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त 0.7 प्रतिशत लक्ष्य से बहुत कम है। हम ओडीए में कमी आने के रुख़ को बदलने के लिए मिल कर काम करेंगे। हम सभी संबद्ध सहभागियों का अंतर्राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों के प्रति नई वचनबद्धता के लिए आह्वान करते हैं। इन लक्ष्यों में 2015 ई. तक, सम्पूर्ण विपन्नता का जीवन जी रहे लोगों के अनुपात को आधा करने का लक्ष्य भी शामिल है।

सहायता करने वाले देशों की इस वचनबद्धता को प्रमाणित करने का एक सीधा उपाय यह है कि वे उन देशों के लिए अधिक सहायता राशि का निर्धारण करें जो आर्थिक नीतियों और अच्छी राज्य व्यवस्था की सही दिशा में बढ़ रहे हैं और अधिकाधिक सामाजिक न्याय के लिए प्रयत्न कर रहे हैं तथा ऐसा करके वे हमारे देशों की जनता को इस बात का प्रमाण दे रहे हैं कि ग़रीबी कम करने के लिए अहर्निश उपायों का ठोस परिणाम सामने आ रहा है।

बहुपक्षीय पद्धति को सुदृढ़ बनाया जाना अत्यावश्यक है। यह अनिवार्य है कि संयुक्त राष्ट्र को अपनी भूमिका - विशेषकर विश्वभर में द्वंद्व और संकटों को दूर करने के प्रयासों से संबंधित भूमिका - को निभाने में सहयोग दिया जाए। हम सभी सम्बद्ध पार्टियों से आग्रह करते हैं कि वे अपनी वित्तीय ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करके नीतिगत प्राथमिकताओं के निर्धारण में तथा अधिक ठोस अंतर्राष्ट्रीय तालमेल द्वारा संयुक्त राष्ट्र और विकास बैंकों के प्रति अपने समर्थन की दोबारा पुष्टि करें।

मानवीय सहायता देने वाली एजेंसियों तथा दीर्घकालिक विकास-सहायता देने वाली संस्थाओं के बीच और अधिक तालमेल की आवश्यकता है।

ग़रीबी एक नैतिक समस्या है तो है ही, पर यह विश्व की अनेक समस्याओं का मूल कारण भी है। विकास मंत्री होने के नाते हमारे सामने सर्वप्रथम चुनौती यह

है कि 21वीं शताब्दी में प्रवेश करते हुए, हम अपने देशों और विदेशों में अधिकतम सद्भाव पैदा करें ताकि यह ग़रीबी पूरी तरह नष्ट हो सके और निश्चित रूप से हो जाए।

हम आह्वान करते हैं, सब से पहले और सब से अधिक, विकासशील देशों के साथ सच्ची सहभागिता का, पर उसके साथ ही सभ्य समाज के कर्मठ दलों, निजी क्षेत्र तथा बौद्धिक समुदाय के सर्वश्रेष्ठ वर्गों के साथ सहभागिता का भी। इससे अधिक महत्वपूर्ण, इस से अधिक श्रेयस्कर और कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे दिलों पर और किसी उत्तरदायित्व का इतना बोझ नहीं है।[3] (बल हमने जोड़ा है)

अंतःकरण द्वारा प्रेरित उपरोक्त उत्कृष्ट घोषणा में मंत्रियों ने ग़रीबी के साथ संघर्ष करने की रणनीति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यद्यपि उन्होंने भ्रष्टाचार के साथ संघर्ष के लिए भी अपने संकल्प का संकेत दिया है, पर इस विषय पर कोई सुस्पष्ट उपायों का उल्लेख नहीं किया गया। इसलिए यहां इस बात पर बल देना आवश्यक है कि ग़रीबी उन्मूलन के कार्यक्रम तभी सफल होंगे जब भ्रष्टाचार के साथ भी समक्षणिक युद्ध छेड़ा जाए। अभिवर्द्धित विकास सहायता तथा ऋण-राहत के प्रभावी उपाय निस्संदेह बहुत ज़रूरी हैं पर विकासशील देशों का वास्तविक हित इस बात में निहित है कि उक्त सहायता तथा उपायों को ईमानदार, कार्यकुशल, पारदर्शी तथा जवाबदेह सरकारी प्रशासन के साथ जोड़ा जाए।

यहां 1994 में ब्रिटेन की तत्कालीन समुद्रपारीय विकास मंत्री बैरोनेस चॉकर द्वारा निम्नलिखित हितसंप्रेरित चेतावनी की ओर ध्यान दिलाना उचित होगा :

> जब कोई सरकार प्रजातंत्र की दिशा में बढ़ने में मदद देने के लिए, अपनी संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए, भ्रष्टाचार और अक्षमता को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए हमारी सहायता चाहेगी, हम अवश्य देंगे। पर जब कोई सरकार प्रजातंत्र से मुंह मोड़ ले, जवाबदेही की अवहेलना करे, मानवाधिकारों का तिरस्कार करे और भ्रष्टाचार को फलने-फूलने दे, तब हमारी सहायता मानवीय आधार पर ही, केवल उन्हीं लोगों के लिए होगी जिन्हें इसकी वास्तविक ज़रूरत है। सहायता देने वाले किसी देश के किसी करदाता से तीसरी दुनिया के भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के स्विस बैंकों के खातों में उसके योगदान की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।[4]

इस कथन से किसी का न्यायसंगत विरोध नहीं हो सकता। पर इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न अवश्य उठता है। सहायता देने वाले देशों के पास क्या कोई ऐसा उपाय है जिसके द्वारा वे सामूहिक रूप से स्विट्ज़रलैंड के अधिकारियों को इस बात के लिए राज़ी कर सकें कि वे अपने बैंक-गोपनीयता संबंधी कानूनों में संशोधन करें जिससे स्विस बैंकों के कार्यव्यवहार को अन्य यूरोपीय देशों अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका के कार्यव्यवहार जैसा बनाया जा सके। यही प्रश्न अन्य

करमुक्त शरणस्थलों के संबंध में भी उठता है। यदि विकसित देश इस प्रकार के सुधार की दिशा में पहलकदमी करें तो विकासशील विश्व के अरबों लोगों पर यह उनका सबसे बड़ा उपकार होगा।

इसके साथ ही, दो सुझाव और हैं। प्रथम, परिवर्द्धित सहायता प्रदान करते समय, दाताओं को स्वच्छ पेय जल, पर्याप्त शौच सुविधाओं, कार्यशील दवाखानों, प्राथमिक कक्षाओं की पाठशालाओं और ग्रामीण आवासों में समयबद्ध सुधार जैसे कार्यक्रमों को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए और उनके समुचित अनुश्रवण की व्यवस्था करनी चाहिए। दूसरे, अंतर्राष्ट्रीय सहायता के लिए उत्तरदायी चार मंत्रियों ने इस समय 'सम्पूर्ण विपन्नता' में जीने वाले लोगों की संख्या को 2015 तक आधा करने का लक्ष्य तय किया है। जैसा कि उन्होंने संकेत किया है, वे नई सहस्राब्दी में स्थिति के पुनरवलोकन के लिए दोबारा मिलने वाले हैं। उस समय उन्हें शेष आधे भाग को इस विपन्नता के चंगुल से मुक्त करने के लिए भी लक्ष्य तिथि - 2025 के आसपास की - तय करने पर विचार करना चाहिए।

यहां यह आशा प्रकट करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जिस प्रकार नैदरलैंड्स, नार्वे, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी के मंत्रियों को उनकी अन्तश्चेतना ने झकझोर कर ग़रीबी के साथ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है, वैसे ही और उतने ही निष्कपट भाव से विकासशील देशों के राजनीतिक नेता, नौकरशाह और व्यापारी भी भ्रष्टाचार की घृणास्पद बुराई से दूर रहने और उसे मार-भगाने के लिए प्रेरित होंगे।

आइए, अब हम भ्रष्टाचार रूपी बुराई से लड़ने के लिए पिछले कुछ वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए कुछ अन्य प्रयासों की ओर ध्यान दें। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओइसीडी) विश्व की सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली अन्तः सरकारी संस्थाओं में से एक है। इसने 27 मई 1994 को एक व्यापक अनुशंसा को अंगीकार किया था जिसमें सदस्य देशों से अनुरोध किया गया है कि वे विदेशों के सार्वजनिक अधिकारियों को 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से संबंधित रिश्वतखोरी से दूर रखने, बचाने और उनके द्वारा उसके विरुद्ध संघर्ष छेड़े जाने के प्रभावी उपाय करें'। इस अनुशंसा के समर्थन में, ओइसीडी सरकारों ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

रिश्वतखोरी नैतिक और राजनीतिक चुनौतियां पेश करती है। इसके अतिरिक्त, इसकी भारी आर्थिक कीमत भी चुकानी पड़ती है - इससे कारोबार के ख़र्च में वृद्धि होती है और मुक्त बाज़ार के परिचालन में विकृति आती है और इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास और निवेश को धक्का लगता है। विकासशील देशों के लिए तो यह विशेष रूप से हानिकारक है क्योंकि यह आवश्यक सहायता की धारा को दूसरी ओर मोड़ देती है तथा उस सहायता की कीमत बढ़ा देती है।

इस अनुशंसा में 'ठोस और सार्थक उपायों' का प्रस्ताव है और ग़ैर-सदस्य देशों से अपील की गई है कि वे अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से रिश्वतखोरी को समाप्त करने के ओइसीडी सदस्यों के प्रयासों में उनका हाथ बंटाएं। इस में क्रियान्वयन के अनुश्रवण के लिए अनुवर्ती कार्यवाही का प्रस्ताव भी किया गया है।

1994 की अपनी अनुशंसा के क्रियान्वयन में हुई प्रगति के पुनरवलोकन के पश्चात् ओइसीडी परिषद् ने 23 मई 1997 को एक नए उपकरण को स्वीकृति दी। इसका शीर्षक था, "अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से रिश्वतखोरी को दूर करने के लिए परिषद् की संशोधित अनुशंसा"। अन्य बातों के साथ-साथ, इस अनुशंसा में सदस्य देशों से आग्रह किया गया था कि वे :

1. विदेशों के सार्वजनिक अधिकारियों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से संबंधित रिश्वतखोरी से दूर रखने, बचाने और उनके द्वारा उसके विरुद्ध संघर्ष छेड़े जाने के प्रभावी उपाय करें; और
2. विदेशों के सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी को प्रभावी तथा समायोजित ढंग से दांडिक अपराध बनाने की व्यवस्था करें।

उसी समय ओइसीडी परिषद् ने निर्णय किया कि 'स्वीकृत तत्त्वों के सामान्य आधार पर रिश्वतखोरी का अपराधीकरण करने के उद्देश्य से तुरन्त एक अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन पर चर्चा प्रारंभ की जाए', संबंधित संधि 1997 के अंत तक हस्ताक्षरों के लिए तैयार हो जाए ताकि उसके 12 महीने बाद उसे प्रवर्तन में लाया जा सके।

इससे ओइसीडी देशों के उस दृढ़ संकल्प और तत्परता का पता चला जिनके साथ वे अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से भ्रष्टाचार की बुराई को मिटाना चाहते थे। अनुवर्ती कार्यवाही भी इसके शीघ्र बाद ही शुरू कर दी गई। नवम्बर 1997 में सदस्य देशों के वार्ताकारी सम्मेलन का आयोजन किया गया और एक नए संधिपत्र को स्वीकृति प्रदान की गई। इस में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में रिश्वतखोरी के रोग का व्यापक विवेचन किया गया था। इस वैश्विक महत्व के उपकरण और उसके संलग्नक का पाठ नीचे दिया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में विदेशों के सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी से संघर्ष करने के लिए आयोजित कन्वेंशन

वार्ताकारी सम्मेलन द्वारा 21 नवम्बर 1997 को अंगीकृत

उद्देशिका

पार्टियों ने

यह ध्यान में रखते हुए कि व्यापार और निवेश सहित अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक

कारोबार में रिश्वतखोरी एक व्यापक बुराई की तरह फैली है, जिससे गंभीर नैतिक और राजनीतिक चिंताएं उत्पन्न होती हैं, अच्छी राज्यव्यवस्था और आर्थिक विकास को आघात पहुंचता है, और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धात्मक अवस्थापनाएं विकृत होती हैं;

यह ध्यान में रखते हुए कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से रिश्वतखोरी को दूर करने में सहयोग करना सब देशों की ज़िम्मेदारी है;

आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओइसीडी) की परिषद् द्वारा अंगीकृत अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में रिश्वतखोरी से संघर्ष करने की 23 मई 1997, सी (97) 123 अंतिम, की संशोधित अनुशंसा ***के दृष्टिगत*** जिसमें अन्य बातों के साथ, अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में विदेशों के सार्वजनिक अधिकारियों को रिश्वतखोरी से दूर रखने, बचाने तथा उनके द्वारा इसके विरुद्ध संघर्ष किए जाने का, विशेषकर इस प्रकार की रिश्वतखोरी को अविलंब, प्रभावी एवं समायोजित ढंग से, उस अनुशंसा के अंतर्गत स्वीकार किए गए सामान्य तत्त्वों के अनुरूप तथा प्रत्येक देश के अधिकार क्षेत्रीय और आधारभूत कानूनी सिद्धान्तों के अनुसार, दांडिक अपराध बनाने का अनुरोध किया गया है;

हाल ही की उन अन्य घटनाओं का ***स्वागत करते हुए*** जिनसे अंतर्राष्ट्रीय सौहार्द को और सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी मिटाने के प्रयत्नों को, जिनमें संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन, अमरीकी राज्यों का संगठन, यूरोप की परिषद् और यूरोपीय यूनियन के प्रयत्न शामिल हैं, बढ़ावा मिलता है;

कंपनियों, व्यापारिक संगठनों और मज़दूर यूनियनों तथा अन्य ग़ैर-सरकारी संगठनों द्वारा रिश्वतखोरी दूर करने के उपायों का ***स्वागत करते हुए***;

अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में व्यक्तियों और उद्यमों द्वारा रिश्वत मांगे जाने पर अंकुश लगाने के संबंध में सरकारों की भूमिका को ***मान्यता देते हुए***;

यह स्वीकार करते हुए कि इस दिशा में प्रगति करने के लिए केवल राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास ही आवश्यक नहीं हैं अपितु बहुपक्षीय सहयोग, अनुश्रवण तथा अनुवर्तन भी आवश्यक है;

यह स्वीकार करते हुए कि इस कन्वेंशन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य और उद्देश्य पार्टियों द्वारा किए जाने वाले उपायों में तुल्यता प्राप्त करना है, जिसके लिए ज़रूरी है कि इस तुल्यता को हानि पहुंचाए बिना, कन्वेंशन का अनुमोदन किया जाए;

निम्नलिखित विषयों पर सहमति व्यक्त की है :

अनुच्छेद 1

विदेशों के सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी का अपराध

1. प्रत्येक पार्टी आवश्यकतानुसार ऐसे उपाय करेगी जिनसे उसके यहां के कानून के अंतर्गत यह व्यवस्था हो कि किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी से उसके अपने अथवा किसी तीसरी पार्टी के लिए प्रत्यक्ष या मध्यस्थों द्वारा जानबूझकर अनुचित आर्थिक या कोई अन्य ऐसा लाभ पहुंचाने का प्रस्ताव करना, प्रण करना या पहुंचाना, दांडिक अपराध माना जाए जिससे वह अधिकारी किसी व्यापार को हासिल करने या कायम रखने अथवा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रक्रिया में अनुचित लाभ उठाने के संदर्भ में अपने पदीय कर्तव्यों के निष्पादन से संबंधित किसी कार्य को करने अथवा न करने के लिए तैयार हो जाए।
2. प्रत्येक पार्टी ऐसे आवश्यक उपाय करेगी जिनके अंतर्गत किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी को रिश्वत देने में सह-अपराधी होना, जिसमें कथित अधिकारी को रिश्वत दिए जाने के लिए भड़काना, मदद करना, दुष्प्रेरित करना और प्राधिकृत करना शामिल है, दांडिक अपराध माना जाए। किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी को रिश्वत देने की कोशिश और साज़िश करना उसी सीमा तक दांडिक अपराध माने जाएंगे जिस सीमा तक पार्टी के अपने सार्वजनिक अधिकारी को रिश्वत देने की कोशिश और साज़िश करने को माना जाता है।
3. पहले और दूसरे पैरा में वर्णित अपराधों को अब के बाद 'विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी' कहा जायेगा।
4. इस कन्वेंशन के प्रयोजन से :

   (ए) 'विदेशी सार्वजनिक अधिकारी' का अर्थ वह व्यक्ति है जो किसी बाहर के देश के किसी विधायी, प्रशासकीय अथवा न्यायिक पद पर निर्वाचित अथवा नियुक्त है; कोई व्यक्ति जो किसी बाहरी देश के लिए किसी सार्वजनिक कार्य को, जिसमें सार्वजनिक एजेंसी या सार्वजनिक उद्यम का कार्य शामिल है, करता है अथवा किसी सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय संगठन का अधिकारी या प्रतिनिधि है;

   (बी) बाहरी देश (विदेश) में सरकार के राष्ट्रीय से लेकर स्थानीय तक सभी स्तर तथा उपमंडल शामिल हैं;

   (सी) 'अपने पदीय कर्तव्यों के निष्पादन से संबंधित काम करना या काम न करना' में सार्वजनिक अधिकारी द्वारा अपनी पदीय स्थिति का

किसी प्रकार का भी उपयोग करना शामिल है, भले ही वह उस अधिकारी की प्राधिकृत योग्यता के अंतर्गत हो या न हो।

अनुच्छेद 2

विधिक व्यक्तियों का उत्तरदायित्व

प्रत्येक पार्टी अपने कानूनी सिद्धान्तों के अनुरूप, ऐसे आवश्यक उपाय करेगी जिनसे किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वत के लिए विधिक व्यक्तियों का उत्तरदायित्व स्थापित हो सके।

अनुच्छेद 3

दांडिक अनुशास्तियां

1. किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी को उसकी रिश्वतखोरी के लिए प्रभावी, आनुपातिक एवं निवर्तक दंड दिये जाएंगे। इन दंडों की शृंखला का वर्गीकरण पार्टी के अपने सार्वजनिक अधिकारियों को दिए जाने वाले दंडों के समान होगा और, प्रकृत व्यक्तियों के मामलों में इसमें स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित किए जाने की उस सीमा तक व्यवस्था होगी जहां तक कि वह पारस्परिक कानूनी सहायता तथा प्रत्यर्पण का अधिकारी बना रह सके।
2. किसी पार्टी की कानूनी पद्धति के अंतर्गत यदि विधिक व्यक्तियों पर दांडिक उत्तरदायित्व लागू नहीं होता तो वह पार्टी विदेशी सार्वजनिक अधिकारियों को रिश्वत देने के मामले में विधिक व्यक्तियों पर प्रभावकारी, आनुपातिक और निवर्तक ग़ैर दांडिक प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था करेगी; जिनमें आर्थिक प्रतिबंध भी शामिल हैं।
3. प्रत्येक पार्टी आवश्यकतानुसार ऐसे उपाय करेगी जिनमें किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वत और रिश्वत की रकम या उस रकम के मूल्य के बराबर सम्पत्ति के अधिग्रहण और ज़ब्ती की या उसके बराबर के प्रभाव वाले प्रतिबंधों की व्यवस्था रहे।
4. जिस व्यक्ति पर किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी को रिश्वत देने के कारण प्रतिबंध लगाए गए हों, उस व्यक्ति पर अतिरिक्त नागरिक अथवा प्रशासनिक प्रतिबंध लगाने पर प्रत्येक पार्टी विचार करेगी।

अनुच्छेद 4

अधिकार क्षेत्र

1. प्रत्येक पार्टी एक विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी के मामले में, जब यह अपराध उस पार्टी के पूरे अथवा आंशिक इलाके में किया गया हो, अपना अधिकार क्षेत्र स्थापित करने के लिए आवश्यक उपाय करेगी।
2. प्रत्येक पार्टी जिसके अधिकार क्षेत्र में अपने राष्ट्रिकों द्वारा विदेश में किए गये अपराधों के लिए अभियोग चलाना शामिल है, किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी के मामले में भी उन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप अपना अधिकार क्षेत्र स्थापित करने के आवश्यक उपाय करेगी।
3. इस कन्वेंशन में वर्णित किसी कथित अपराध पर यदि एक से अधिक पार्टियों का अधिकार क्षेत्र हो, तो एक पार्टी के अनुरोध पर संबंधित पार्टियां अभियोग चलाने के लिए सब से उपयुक्त अधिकार क्षेत्र के फैसले के लिए आपस में विचार विमर्श करेंगी।
4. प्रत्येक पार्टी विदेशी सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अपने वर्तमान अधिकार क्षेत्र की पर्याप्तता का पुनरवलोकन करेगी और, ऐसी पर्याप्तता न होने की स्थिति में, उपयुक्त उपचारात्मक प्रयत्न करेगी।

अनुच्छेद 5

प्रवर्तन

1. किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी की जांच और उसका अभियोजन प्रत्येक पार्टी के अपने नियमों और सिद्धान्तों के अधीन किया जाएगा। ये राष्ट्रीय आर्थिक हितों, किसी दूसरे देश के साथ संबंधों पर पड़ने वाले संभावित असर तथा प्रकृत अथवा विधिक व्यक्तियों की पहचान जैसे लिहाज-मुलाहज़ों से प्रभावित नहीं होंगे।

अनुच्छेद 6

परिसीमन कानून

किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी के अपराध पर लागू होने वाले किसी भी परिसीमन कानून में उस अपराध की जांच और अभियोजन के लिए पर्याप्त समयावधि प्रदान किए जाने की व्यवस्था होगी।

अनुच्छेद 7

धन प्रक्षालन

प्रत्येक ऐसी पार्टी जिसने अपने धन प्रक्षालन विधान के अंतर्गत रिश्वतखोरी को एक प्रतिपादित अपराध घोषित किया है, किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी को उन्हीं नियमों के अंतर्गत मानेगी, बिना उस स्थान का विचार किए जहां रिश्वतखोरी घटित हुई है।

अनुच्छेद 8

लेखा - जोखा

1. विदेशी सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी के विरुद्ध प्रभावी ढंग से संघर्ष करने के उद्देश्य से प्रत्येक पार्टी खातों और रिकार्डों के रख-रखाव, वित्तीय विवरणियों के प्रकटीकरण और लेखा और लेखा परीक्षा के मानकों से संबंधित अपने यहां के कानूनों और विनियमों के ढांचे के अंतर्गत ऐसे उपाय करेगी जिनके अंतर्गत कंपनियों के लिए उन कानूनों और विनियमों के अधीन, विदेशी सार्वजनिक अधिकारियों को रिश्वत देने या ऐसी रिश्वत छिपाने के उद्देश्य से, खातों के बाहर लेखे रखना, खातों के बाहर के अथवा अपर्याप्त पहचान वाले लेखे तैयार करना, ऐसे ख़र्चों को दर्ज करना जो हुए ही न हों, ग़लत पहचान वाले पात्रों के नामों से दायित्वों को दर्ज करना और नकली दस्तावेज़ों का इस्तेमाल करना वर्जित होगा।
2. प्रत्येक पार्टी ऐसी कंपनियों के खातों, रिकार्डों और वित्तीय विवरणियों में की गई ऐसी चूकों और गोलमाल के लिए प्रभावशाली, आनुपातिक और निवर्तक दीवानी, प्रशासकीय और आपराधिक दंडों की व्यवस्था करेगी।

अनुच्छेद 9

पारस्परिक कानूनी सहायता

1. प्रत्येक पार्टी अपने कानूनों, संबद्ध संधियों और व्यवस्थाओं के अंतर्गत अधिकतम संभव सीमा तक, एक पार्टी द्वारा इस कन्वेंशन की परिधि के भीतर आपराधिक जांच और कार्यवाही के लिए प्रस्तुत किए गए मामले और इस कन्वेंशन की परिधि के भीतर किसी विधिक व्यक्ति के विरुद्ध ग़ैर आपराधिक कार्यवाही के लिए प्रस्तुत मामले में दूसरी पार्टी को त्वरित और प्रभावशाली कानूनी सहायता देने की व्यवस्था करेगी। यदि सहायता मांगने वाली पार्टी से सहायता देने वाली पार्टी को किसी अतिरिक्त

जानकारी या दस्तावेज़ों की ज़रूरत हो तो इसकी सूचना सहायता मांगने वाली पार्टी को अविलंब दी जाएगी और सहायता मांगने वाली पार्टी की मांग पर उसे उसकी प्रार्थना की स्थिति और उस प्रार्थना के परिणाम के बारे में भी तुरंत सूचित किया जाएगा।

2. यदि कोई पार्टी पारस्परिक कानूनी सहायता के लिए दोहरी आपराधिकता की शर्त रखती है, तो जिस अपराध के लिए सहायता मांगी गई है उसे उस सूरत में दोहरी आपराधिकता की श्रेणी में माना जाएगा जिसमें वह इस कन्वेंशन की परिधि में आता हो।
3. कोई पार्टी बैंक-गोपनीयता को आधार बना कर इस कन्वेंशन की परिधि के अंतर्गत आने वाले आपराधिक मामलों में पारस्परिक कानूनी सहायता देने से इंकार नहीं करेगी।

अनुच्छेद 10

प्रत्यर्पण

1. किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी को पार्टियों के कानूनों तथा उनके बीच की प्रत्यर्पण संधियों के अंतर्गत प्रत्यर्पण योग्य अपराध माना जाएगा।
2. यदि कोई पार्टी, किसी ऐसी दूसरी पार्टी से, जिसके साथ उसकी प्रत्यर्पण संधि नहीं है, प्रत्यर्पण की प्रार्थना प्राप्त करने पर, प्रत्यर्पण संधि की शर्त रखती है, तो जहां तक विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी के अपराध का संबंध है, वह इस कन्वेंशन को प्रत्यर्पण के लिए कानूनी आधार मानने पर विचार कर सकती है।
3. प्रत्येक पार्टी यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी के अपराध के सिलसिले में या तो अपने राष्ट्रिकों का प्रत्यर्पण कर सकती है या अपने राष्ट्रिकों पर अभियोग चला सकती है, कोई भी आवश्यक उपाय करेगी। जो पार्टी केवल इस आधार पर किसी व्यक्ति को किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी की रिश्वतखोरी के मामले में प्रत्यर्पित करने की प्रार्थना को ठुकरा देती है कि वह व्यक्ति उसका राष्ट्रिक है, तो वह उस व्यक्ति का मामला अभियोजन के उद्देश्य से सक्षम प्राधिकारियों को पेश करेगी।
4. किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी का रिश्वतखोरी के कारण प्रत्यर्पण प्रत्येक पार्टी के घरेलू कानूनों और लागू संधियों तथा व्यवस्थाओं के अंतर्गत शर्तों के अधीन होगा। जहां कोई पार्टी प्रत्यर्पण को दोहरी

आपराधिकता की सीमा तक ही स्वीकार करने की शर्त रखती है, वहां उस शर्त को उस सूरत में पूरा हुआ माना जाएगा जिसमें वह अपराध इस कन्वेंशन के अनुच्छेद 1 की परिधि में आता हो जिसके लिए प्रत्यर्पण की मांग की गई है।

अनुच्छेद 11

उत्तरदायी प्राधिकारी

संबंधित पार्टियों के बीच निर्धारित व्यवस्थाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, विचार-विमर्श संबंधी धारा 4, पैरा 3, पारस्परिक सहायता संबंधी धारा 9 तथा प्रत्यर्पण संबंधी धारा 10 के उद्देश्य से, प्रत्येक पार्टी ओइसीडी के महासचिव को एक प्राधिकारी अथवा प्राधिकारियों की अधिसूचना भेजेगी जिस/जिन पर प्रार्थनाएं करने अथवा स्वीकार करने का उत्तरदायित्व होगा, वह/वे उस पार्टी की ओर से इन मामलों में संचार के माध्यम के रूप में काम करेगा/करेंगे।

अनुच्छेद 12

अनुश्रवण और अनुवर्तन

इस कन्वेंशन के संपूर्ण क्रियान्वयन के अनुश्रवण और संवर्धन से संबंधित क्रमबद्ध अनुवर्तन के कार्यक्रम को पूर्णतया कार्यान्वित करने में पार्टियां सहयोग करेंगी। यदि पार्टियां सर्वानुमति से कोई अन्य निर्णय न कर लें, तो ऐसा 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में रिश्वत पर ओइसीडी के कार्यदल' के ढांचे के अंतर्गत या इसके कर्तव्यों के किसी उत्तराधिकारी के ढांचे और विचारार्थ विषयों के अंतर्गत/अनुरूप किया जाएगा और पार्टियां उस संस्था पर लागू नियमों के अनुसार खर्च का भार वहन करेंगी।

अनुच्छेद 13

हस्ताक्षर और स्वीकृति

1. प्रवर्तन में न आने तक, यह कन्वेंशन 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में रिश्वतखोरी पर कार्यदल' में पूर्ण प्रतिभागी बनने के लिए आमंत्रित ओइसीडी के सदस्यों और ग़ैर सदस्यों के हस्ताक्षरों के लिए खुली रहेगी।
2. प्रवर्तन में आ जाने के पश्चात् यह कन्वेंशन ऐसे किसी ग़ैर-हस्ताक्षरी की

स्वीकृति के लिए खुली रहेगी जो ओइसीडी का पूर्ण सदस्य हो या 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में रिश्वतखोरी पर कार्यदल' या उसके कार्यों के किसी उत्तराधिकारी (दल) में पूर्ण प्रतिभागी बन गया हो। ऐसे प्रत्येक ग़ैर-हस्ताक्षरी द्वारा स्वीकृति-पत्र जमा करा दिए जाने की तिथि के 60वें दिन से उस पर यह कन्वेंशन प्रवर्तन में आ जाएगी।

अनुच्छेद 14

अनुसमर्थन और न्यासधारण

1. यह कन्वेंशन हस्ताक्षरियों द्वारा, उनके संबंधित कानूनों के अनुरूप, स्वीकरण, अनुमोदन और अनुसमर्थन के अधीन है।
2. स्वीकरण, अनुमोदन और अनुसमर्थन पत्र ओइसीडी के महासचिव के पास जमा कराए जाएंगे और वे इस कन्वेंशन के न्यासधारक के रूप में काम करेंगे।

अनुच्छेद 15

प्रवर्तन में आना

1. यह कन्वेंशन उस तिथि के बाद से साठवें दिन से लागू होगी जिस तिथि को दस में से पांच ऐसे देश, जिनके पास डीएएफएफइ/आइएमइ/बीआर (97) 18/फ़ाइनल (अनुलग्नित), में उल्लिखित सबसे अधिक निर्यात शेयर हैं और जो अपने आप में उन दस देशों के सामूहिक निर्यात के कम से कम 60 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपने स्वीकरण, अनुमोदन और अनुसमर्थन पत्र जमा करा देते हैं। इस प्रकार के प्रवर्तन में आने के अनन्तर, जो भी हस्ताक्षरी अपना पत्र जमा कराता है, उस के लिए यह कन्वेंशन उसका पत्र जमा होने के 60वें दिन प्रवर्तन में आएगी।
2. यदि 31 दिसम्बर 1998 के बाद, उपर्युक्त पैरा 1 के अंतर्गत यह कन्वेंशन लागू नहीं हो पाती, तो कोई भी हस्ताक्षरी जिसने अपना स्वीकरण, अनुमोदन और समर्थना जमा करा दिया हुआ है, न्यासधारी के समक्ष लिखित रूप में इस पैरा 2 के अंतर्गत इस कन्वेंशन में प्रवेश की स्वीकृति की सहमति की घोषणा कर सकता है। ऐसे हस्ताक्षरी के लिए यह कन्वेंशन कम से कम दो हस्ताक्षरियों द्वारा ऐसे घोषणा पत्र जमा कराए जाने के साठवें दिन से प्रवर्तन में आएगी। इस प्रकार के प्रवर्तन में आने के अनन्तर प्रत्येक हस्ताक्षरी के अपना घोषणा पत्र जमा कराने की तिथि के 60वें दिन से यह कन्वेंशन लागू होगी।

अनुच्छेद 16

संशोधन

कोई भी पार्टी इस कन्वेंशन में संशोधन का प्रस्ताव रख सकती है। संशोधन का प्रस्ताव न्यासधारक को प्रस्तुत किया जाएगा। वह प्रस्तावित संशोधन पर विचार करने के लिए बुलाई जाने वाली मीटिंग के कम से कम 60 दिन पहले उसे सभी पार्टियों के पास भेजेगा। पार्टियों की सर्वानुमति से, अथवा ऐसे किसी अन्य तरीके से जिसे पार्टियों की सर्वानुमति प्राप्त हो, स्वीकृत संशोधन सभी पार्टियों द्वारा स्वीकरण, अनुमोदन और अनुसमर्थन पत्र जमा करा दिए जाने के साठ दिन बाद, अथवा ऐसी अन्य परिस्थितियों में जिनका सुस्पष्ट उल्लेख संशोधन को मंजूर करते समय पार्टियों ने किया हो, लागू हो जाएगा।

अनुच्छेद 17

वापसी

कोई भी पार्टी इस कन्वेंशन को न्यासधारक को लिखित नोटिस देकर छोड़ सकती है। ऐसी वापसी उस अधिसूचना की प्राप्ति की तारीख के एक वर्ष बाद प्रभावी होगी। वापसी के पश्चात्, छोड़ने वाली पार्टी और अन्य पार्टियों के बीच, सहायता अथवा प्रत्यर्पण की प्रार्थना के सभी लंबित मामलों के निपटाए जाने तक, सहयोग जारी रहेगा।

विदेशी सार्वजनिक अधिकारियों में रिश्वतखोरी को दूर करने की 1997 की यह कन्वेंशन, इस संबंध में आवश्यक शर्तों के पूरा हो जाने पर 15 फरवरी 1999 को प्रवर्तन में आई।

इस कन्वेंशन की निम्नलिखित व्यवस्थाएं विशेष ध्यान देने योग्य हैं :

1. अनुसमर्थन करने वाले ओइसीडी देशों के कानूनों के अंतर्गत विदेशी सार्वजनिक अधिकारियों की रिश्वतखोरी अब दांडिक अपराध होगा।
2. किसी विदेशी सार्वजनिक अधिकारी को, उस अधिकारी या किसी तीसरी पार्टी के लिए, प्रत्यक्ष रूप से अथवा मध्यस्थों के द्वारा रिश्वत देना दांडिक अपराध होगा।
3. 'विदेशी सार्वजनिक अधिकारी' की व्यापक परिभाषा की गई है जिससे इसके अंतर्गत किसी बाहरी देश के नियुक्त अथवा निर्वाचित, विधायी, प्रशासनिक अथवा न्यायिक पदों पर काम करने वाले सभी व्यक्ति तथा किसी सार्वजनिक एजेंसी अथवा सार्वजनिक उद्यम अथवा सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के कर्मचारी आ जाते हैं।

ओइसीडी निर्यात

	1990-96	*1990-96*	*1990-96*
	अमरीकी डॉलर (दस लाख में)	*कुल ओइसीडी का %*	*सबसे अधिक 10 का %*
संयुक्त राज्य	287,118	15.9	19.7
जर्मनी	254,746	14.1	17.5
जापान	212,665	11.8	14.6
फ्रांस	138,471	7.7	9.5
युनाइटिड किंगडम	121,258	6.7	8.3
इटली	112,449	6.2	7.7
कनाडा	91,215	5.1	6.3
कोरिया (I)	81,364	4.5	5.6
नैदरलैंड्स	81,264	4.5	5.6
बेल्जियम-लक्सम्बर्ग	78,598	4.4	5.4
सबसे बड़े कुल दस	1,459,148	81.0	100
स्पेन	42,469	2.4	
स्विट्ज़रलैंड	40,395	2.2	
स्वीडन	36,710	2.0	
मैक्सिको (I)	34,233	1.9	
आस्ट्रेलिया	27,194	1.5	
डेन्मार्क	24,145	1.3	
आस्ट्रिया	22,432	1.2	
नार्वे	21,666	1.2	
आयरलैंड	19,217	1.1	
फ़िनलैंड	17,296	1.0	
पोलैंड (I)**	12,652	0.7	
पुर्तगाल	10,801	0.6	
टर्की*	8,027	0.4	
हंगरी**	6,795	0.4	
न्यूज़ीलैंड	6,663	0.4	
चैक गणराज्य***	6,263	0.3	
यूनान*	4,606	0.3	
आइसलैंड	949	0.1	
कुल ओइसीडी	1,801,661	100	

नोट्स *1990-95; **1991-96; ***1993-96

स्रोत : ओइसीडी, (1) आइएमएफ [5]

4. इस कन्वेंशन में परिभाषित रिश्वतखोरी के लिए 'प्रभावशाली, आनुपातिक तथा निवर्तक आपराधिक दंड' देना होगा।
5. धारा 8 के अंतर्गत, लेखा व्यवस्था और लेखा परीक्षा के लिए बहुत ऊंचे मानक और सख्त शर्तें निर्धारित की गई हैं। इस धारा की अन्तर्वस्तु भारत के राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए भी एक बहुत अच्छा मानक प्रदान करती है।
6. कन्वेंशन से जुड़ी पार्टियों के लिए आवश्यक है कि वे अधिक से अधिक पारस्परिक कानूनी सहायता दें। इसमें ख़ासतौर पर कहा गया है कि इस प्रकार सहायता देने से बैंक-गोपनीयता के आधार पर इंकार नहीं किया जा सकता।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार से भ्रष्टाचार को दूर रखने की दिशा में यह कन्वेंशन एक बहुत बड़ा कदम है। इसका सांविधिक ढंग से अंगीकरण और क्रियान्वयन किया जाना केवल ओइसीडी के सदस्य देशों के लिए ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों के लिए वांछित है। इसका सबसे अधिक लाभ विकासशील देशों को भ्रष्टाचार के संकट से त्राण पाने के उनके प्रयासों में होगा।

राज्यव्यवस्था और व्यापार में भ्रष्टाचार की समस्या पर अमेरिकी देशों के शिखर सम्मेलन में, दिसम्बर 1994 में विस्तारपूर्वक विचार किया गया था। उस समय, सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों से भ्रष्टाचार को समाप्त करने की सदस्य देशों की प्रतिबद्धता की पुष्टि करते हुए, उन्हें अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में रिश्वतखोरी के विरुद्ध संघर्ष करने में ओइसीडी सरकारों के साथ सहयोग करने के लिए आमंत्रित करने की घोषणा की गई थी। इस घोषणा का पूरा पाठ नीचे उद्धृत है :

अमेरिकी देशों का शिखर सम्मेलन, दिसम्बर 1994

अमेरिकी देशों के राष्ट्राध्यक्षों और शासनाध्यक्षों द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों के घोषणा पत्र में निम्नलिखित वक्तव्य शामिल थे :

'प्रभावी प्रजातंत्र के लिए आवश्यक है कि भ्रष्टाचार पर व्यापक धावा बोला जाए क्योंकि यह एक ऐसा तत्त्व है जो सामाजिक विघटन और आर्थिक व्यवस्था में विकृति पैदा करके राजनीतिक संस्थाओं की वैधता पर कुठाराघात करता है।'

राष्ट्राध्यक्षों और शासनाध्यक्षों ने एक कार्ययोजना के प्रति भी अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि की। इसमें निम्नलिखित शामिल है :

भ्रष्टाचार से संघर्ष

भ्रष्टाचार की समस्या अब केवल इसी गोलार्द्ध के लिए ही नहीं अपितु विश्व के सभी भागों के लिए गंभीर चिंता का विषय बन चुकी है। भ्रष्टाचार, चाहे वह

सार्वजनिक क्षेत्रों में हो, चाहे निजी क्षेत्रों में, प्रजातंत्र को कमज़ोर बनाता है तथा सरकारों और संस्थाओं की वैधता को नष्ट करता है। राज्यों के आधुनिकीकरण से, जिसमें नियमों का शिथिलीकरण, निजीकरण और सरकारी कार्यप्रक्रिया का सरलीकरण शामिल है, भ्रष्टाचार के अवसरों में कमी होती है। एक प्रजातंत्र में सार्वजनिक प्रशासन के सभी पक्षों को पारदर्शी और सार्वजनिक जांच के लिए खुला होना चाहिए।

सरकारें :

* यह व्यवस्था करेंगी कि सरकार के सामने आने वाली सर्वाधिक महत्व की समस्याओं पर खुली चर्चा को बढ़ावा दिया जाए और सरकारी कामकाज को पारदर्शी तथा जवाबदेह बनाने के लिए आवश्यक सुधारों के लिए प्राथमिकताएं तय की जाएं।
* भ्रष्टाचार के मामलों में जांच तथा कार्यान्वयन की प्रक्रिया की क्षमता सहित सरकारी कर्तव्यों के भीतरी तंत्रों को सुदृढ़ बना कर उचित पर्यवेक्षण को सुनिश्चित करेंगी तथा सार्थक बाहरी पुनरवलोकन के लिए आवश्यक जानकारी को जनता को उपलब्ध कराने की सुविधा प्रदान करेंगी।
* सार्वजनिक कर्मचारियों के लिए हितों के टकराव के मानकों और अवैध समृद्धि के विरुद्ध प्रभावी उपाय करेंगी जिनमें उनके लिए कड़े दंड की व्यवस्था शामिल होगी जो निजी हितों के लिए अपने पदों का उपयोग करते हैं।
* संसार की सरकारों से अनुरोध करेंगी कि वे इस गोलार्द्ध के साथ अपने सारे वित्तीय अथवा वाणिज्यिक व्यवहार में रिश्वतखोरी के विरुद्ध नियमों का अंगीकरण और प्रवर्तन करें; इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे ओएएस का अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में रिश्वतखोरी के ओइसीडी कार्यदल के साथ संपर्क स्थापित करने का आह्वान करेंगी।
* भ्रष्टाचार के मामलों की अंतर्राष्ट्रीय जांच में शीघ्र और प्रभावी प्रत्युत्तर को संभव बनाने के लिए न्यायिक और बैंकिंग क्षेत्रों में सहयोग के व्यवस्था तंत्र का विकास करेंगी।
* सरकारी विनियमों और उपापन, कर संग्रह, न्यायिक प्रशासन और चुनावी तथा विधायी प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाने को प्राथमिकता देंगी और इसके लिए आवश्यकतानुसार आइडीबी तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से सहायता लेंगी।
* एक नए गोलार्द्धीय समझौते अथवा विद्यमान अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के ढांचे

में नई व्यवस्थाओं को आधार बना कर, पहले से लागू संधियों और राष्ट्रीय कानूनों का ध्यान रखते हुए, ओएएस के भीतर सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार के अपराधों के संबंध में एक गोलार्द्धीय नज़रिये का विकास करेंगी जिसके अंतर्गत इन अपराधों के आरोपियों के प्रत्यर्पण तथा उनके विरुद्ध मुकदमा चलाने की व्यवस्था होगी।[6]

'ट्रांसपेरेंसी इन्टरनैशनल' एक अत्यंत सक्रिय ग़ैर लाभकारी और ग़ैर सरकारी संगठन है। इसका मुख्यालय जर्मनी में है। यह भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में और, अपनी राष्ट्रीय शाखाओं के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर, भ्रष्टाचार का प्रतिरोध करने के अथक प्रयास कर रहा है।

'ट्रांसपेरेंसी इन्टरनैशनल' (टीआइ) का उद्देश्य :

* अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संघों के माध्यम से सरकारों को प्रभावी कानून, नीतियां तथा भ्रष्टाचार विरोधी कार्यक्रमों को बनाने और लागू करने के लिए प्रोत्साहन देकर, भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना,
* भ्रष्टाचार विरोधी कार्यक्रमों के संबंध में जनता की जानकारी और समर्थन को सुदृढ़ करना और अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार और सार्वजनिक प्रापण के कामकाज में सार्वजनिक पारदर्शिता और जवाबदेही में अभिवृद्धि करना, तथा
* अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक कारोबार में शामिल सभी पार्टियों को सत्यनिष्ठा के उच्चतम स्तरों, विशेषकर 'टीआइ' द्वारा निर्दिष्ट आचार के मानकों के अनुरूप कामकाज करने के लिए प्रोत्साहित करना है।

ऐसा करने के लिए उनकी रणनीति :

* (जहां संभव हो,) राष्ट्रीय भ्रष्टाचार विरोधी कार्यक्रम बनाने तथा उन्हें लागू करने के लिए सरकारों की सहायता करने के उद्देश्य से समान विचारों वाले संगठनों और व्यक्तियों के संघ कायम करना,
* एक सूचना केन्द्र की स्थापना करना तथा भ्रष्टाचार के फैलाव को रोकने के पहलुओं पर व्यावहारिक दृष्टि से शोध करना; सार्वजनिक कार्यक्रमों में भाग लेना और भ्रष्टाचार द्वारा किए जा रहे नुकसान के बारे में, इसको रोकने के लिए तथा इसे कम करने के साधनों के संबंध में जनचेतना में वृद्धि करने के उद्देश्य से प्रचार अभियानों का उपयोग करना, और
* 'टीआई' के दृष्टिकोण तथा अंतर्भूत मूल्यों के अनुरूप 'टीआई' की राष्ट्रीय शाखाओं की स्थापना करना जो अपने देशों में भ्रष्टाचार विरोधी कार्यक्रमों का पोषण कर सकें और टीआई के अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए समर्थन जुटाना।[7]

ट्रांसपेरेंसी इन्टरनैशनल ने भ्रष्टाचार के बढ़ते हुए आतंक के भयंकर परिणामों, विशेषकर विकासशील देशों के अरबों लोगों पर होने वाले दुष्प्रभावों, के विषय में विश्वव्यापी जागरूकता पैदा करने की दिशा में अत्यंत सराहनीय काम किया है।

कैंसर जैसे इस घातक अभिशाप से एक न्यायसंगत विश्वव्यवस्था स्थापित करने के संयुक्त राष्ट्र के प्रयास विफल हो रहे हैं। निश्चय ही अब वह समय आ पहुंचा है जब संयुक्त राष्ट्र संघ को भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए संगठित प्रयास करने होंगे। इसके लिए, एक ऐसी वैश्विक कन्वेंशन के विकास की आवयकता है जिसमें सरकारी प्रशासन के सर्वमान्य नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित नियम-विनियमों तथा शासनाध्यक्षों, मंत्रियों, संसत्सदस्यों, नौकरशाहों, न्यायाधीशों और पुलिस कार्मिकों के लिए सभी सदस्य देशों पर लागू हो सकने वाली आदर्श आचार संहिताओं को शामिल किया जा सके। अन्ततः, कम्प्यूटर युग का आरंभ होने से, यह संसार एक सीमा रहित वैश्विक इकाई बन गया है। भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा एक विश्वव्यापी पहलकदमी किया जाना शायद आज की सबसे अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यदि विश्व स्वास्थ्य संगठन, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अंतर्राष्ट्रीय नागर विमानन संगठन, अंतर्राष्ट्रीय समुद्रीय संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र समूह की अन्य संस्थाएं सभी सदस्य देशों में उनके राष्ट्रीय स्तर पर प्रवर्तन के लिए व्यवस्थाओं को विकसित कर सकती हैं तो यह मानना प्रत्येक दृष्टि से तर्कसम्मत है कि संयुक्त राष्ट्र अपने सभी सदस्य देशों द्वारा उनके राष्ट्रीय प्रशासन में लागू किए जाने योग्य नैतिकता पर एक कन्वेंशन को विकसित और क्रियान्वित कर सकता है। ऐसी कन्वेंशन से उच्चतम *व्यावहारिक* स्तर पर नैतिक मानकों का निर्धारण किया जा सकता है और यदि कोई देश उन से भी ऊंचे मानकों को लागू करना चाहे तो ऐसा करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है। नैतिकता पर एक वैश्विक कन्वेंशन सभी विकासशील देशों पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करने और, ऐसा करके सब ओर फैली दुर्दशा और ग़रीबी को दूर करने के लिए नैतिक दबाव बना सकती है।

हम संयुक्त राष्ट्र के माननीय महासचिव, आदरणीय कोफ़ी अन्नान से इस पर विचार करने का अनुरोध करते हैं।

अंत्यसंकेत

1. पीटर जॉन पैरी, *पोलिटिकल कॅरपश्न एंड पॉलिटिकल ज्योग्राफ़ी*, ऐशगेट, एल्डरशॉट, इंग्लैंड, 1997, पृष्ठ 104।
2. जेम्स गुस्ताव स्पेथ, 'द नैग्लैक्ट ऑफ़ ग्रोइंग पॉवर्टी पोज़िज़ अ ग्लोबल थ्रैट', *द इंटरनैशनल हैरल्ड ट्रिब्यून*, 17-18 जुलाई 1999, पृष्ठ 6।
3. एविलिन हर्फ़कन्स, जॉन्सन, एफ़ शॉर्ट क्लेयर और वियकज़ोरेक ज़्यूल, हाइदी मारी, 'इफ़ वी आर सिरियस, वी डू समथिंग अबाउट पावर्टी', *द इंटरनैशनल हैरल्ड ट्रिब्यन*, 10 अगस्त 1999।
4. जॉर्ज मूडी स्टुआर्ट, *ग्रैंड कॅरपश्न*, वर्ल्ड्व्यू पब्लिशिंग, ऑक्सफ़ोर्ड, यू.के., 1997।
5. ओइसीडी द्वारा दिया गया टैस्ट।
6. जॉर्ज मूडी स्टुआर्ट, ऊपर उद्धृत, पृष्ठ 104-07।
7. वही, पृष्ठ 87।

उपसंहार

सितम्बर-अक्तूबर 1999 के चुनाव परिणामों ने भारत की जनता में आशा ही नहीं, आनन्द की अनुभूति का भी संचार किया है। यह अत्यंत संतोषजनक बात है कि अनेक बाधाओं के बावजूद हमारे देश में प्रजातंत्र ने गहरी तथा अविचल जड़ें जमा ली हैं। और भारत के प्रजातंत्र ने इस प्रकार की राज्यव्यवस्था के सबसे बड़े गुणों में से एक का प्रत्यक्ष और प्रामाणिक उदाहरण प्रस्तुत किया है - वह है केवल मतपेटी के माध्यम से, बिना कोई हंगामा या तमाशा किए, देश के राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकने की योग्यता और क्षमता। आम चुनावों से पूर्व, भारत में एक डांवाडोल मिली-जुली सरकार थी जो कि सदैव गिरने के कगार पर दिखाई देती थी। अब, आम चुनावों के बाद, प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में, पूरे 5 वर्ष की अवधि के जनादेश के साथ एक सुदृढ़ एवं सुग्रथित मिली-जुली सरकार सत्ता में है। इस प्रकार भारत अब पूरी तरह तैयार है।

सत्तासीन सरकार के पास इस समय एक ऐतिहासिक अवसर, उत्तरदायित्व और योग्यता है कि वह भ्रष्टाचार के दानव के विरुद्ध दृढ़ निश्चय के साथ धावा बोलने के लिए कदम उठाए और भारत की सारी जनता के लिए इस समय सब से अधिक महत्वपूर्ण एवं मूलरूप से आवश्यक एक ईमानदार, कुशल और संवेदनशील सरकार उसे प्रदान करे। क्योंकि केवल अच्छी सरकार होने से ही ग़रीबी उन्मूलन, ढांचागत आवश्यकताओं के आधुनिकीकरण और सामाजिक न्याय सहित देश के द्रुतगामी आर्थिक विकास के समयबद्ध कार्यक्रमों को निश्चित सफलता के साथ तैयार और क्रियान्वित किया जा सकता है। यह सब कुछ हासिल करना भारत के वश में है।

एक बार फिर भारत चौराहे पर खड़ा है। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भ्रष्टाचार के प्रति शून्य 'सहिष्णुता' की घोषणा की है। इस दानव के विरुद्ध युद्ध का यह एक श्रेष्ठ शंखनाद है। आशा की जाती है कि अब की बार भारत देश की राज्यव्यवस्था में पारदर्शिता और सत्यनिष्ठा को पुनः स्थापित करने की दिशा में कुछ निर्णायक कदम उठा सकने में सफल हो सकेगा।

परिशिष्ट

संयुक्त राज्य अमेरिका के 'सरकार में नैतिकता अधिनियम', वर्ष 1978 (समय-समय पर संशोधित) के उद्धरण

खंड 1 - विधायी कार्मिकों के लिए आवश्यक वित्तीय प्रकटीकरण विस्तारक्षेत्र

धारा 101. (ए) प्रत्येक सदस्य जो एक कैलेंडर वर्ष की 15 मई को पद पर हो, वह उस कैलेंडर वर्ष की 15 मई या उससे पहले धारा 102 (ए) में वर्णित एक रिपोर्ट फ़ाइल करेगा।

(बी) (1) कोई भी व्यक्ति जो किसी भी कैलेंडर वर्ष के दौरान उपधारा (इ) में वर्णित विधायी शाखा में अधिकारी अथवा कर्मचारी हो और उसने उस कैलेंडर वर्ष में 60 से अधिक दिनों की अवधि के लिए काम किया हो, वह अगले वर्ष की 15 मई या उससे पहले धारा 102 (ए) में वर्णित एक रिपोर्ट फ़ाइल करेगा बशर्ते कि ऐसा व्यक्ति उस 15 मई को ऐसा अधिकारी अथवा कर्मचारी हो।

(2) उपधारा (इ) में वर्णित अधिकारी या कर्मचारी के तौर पर किसी व्यक्ति का नियोजन यदि समाप्त कर दिया जाए, तो

(ए) हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव्स के नियमों के अंतर्गत, यदि ऐसे व्यक्ति को, नियोजन समाप्ति न होने की स्थिति में, धारा 103 (ए) के अंतर्गत क्लर्क के यहां एक रिपोर्ट फ़ाइल करनी होती, अथवा

(बी) सेनेट के नियमों के अंतर्गत, यदि ऐसे व्यक्ति को, नियोजन समाप्ति न होने की स्थिति में, धारा 103 (बी) के अनुसरण में सचिव के यहां एक रिपोर्ट फ़ाइल करनी होती,

उसके लिए एक वित्तीय प्रकटीकरण रिपोर्ट फ़ाइल करना आवश्यक हो सकता है जिसमें (i) ऐसे कैलेंडर वर्ष के उस भाग का विवरण हो जिसमें

ऐसा व्यक्ति एक अधिकारी या कर्मचारी के रूप में काम पर नियुक्त था और (ii) पैरा (1) के अनुसार वांछित पिछले वर्ष की रिपोर्ट का, यदि वह फ़ाइल न की गई हो, विस्तार हो।

(सी) उपधारा (इ) में वर्णित एक अधिकारी अथवा कर्मचारी के रूप में पद ग्रहण करने के तीस दिन के भीतर, प्रत्येक व्यक्ति को, ऐसे व्यक्ति के अतिरिक्त जो ऐसा पद ग्रहण करने से तुरंत पहले विधायी शाखा में नियोजित था, धारा 102 (बी) के अंतर्गत वर्णित जानकारी युक्त रिपोर्ट फ़ाइल करनी होगी, बशर्ते कि उसने अपना नया पद ग्रहण करने से पहले उपधारा (इ) में वर्णित किसी दूसरे पद को तीस दिन के भीतर न छोड़ा हो। पिछले वाक्य में दी गई व्यवस्था उस व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जिससे संदर्भानुसार सेनेट की पदनामित कमेटी अथवा सदन की पदनामित कमेटी के निर्णयानुसार एक कैलेंडर वर्ष में साठ दिन से अधिक अपने पद के कर्तव्यों को निष्पादित करने की अपेक्षा करना तर्कसंगत न हो, सिवाय इसके कि यदि वह एक कैलेंडर वर्ष में 60 दिन से अधिक समय तक अपने पदीय कर्तव्य का निष्पादन करे तो पिछले वाक्य में अपेक्षित रिपोर्ट उसे साठवें दिन के पंद्रह दिन के भीतर फ़ाइल करनी होगी। यह उपधारा 1 जनवरी, 1979 से लागू होगी।

(डी) एक कैलेंडर वर्ष में सदस्य के पद पर निर्वाचन का प्रत्याशी बनने के तीस दिन के भीतर अथवा उस कैलेंडर वर्ष की 15 मई को या उससे पहले, दोनों में से जो भी परवर्ती हो, पर किसी भी स्थिति में, चुनाव से सात दिन पूर्व के बाद नहीं, और प्रत्येक परवर्ती कैलेंडर वर्ष में, जिसके दौरान वह व्यक्ति प्रत्याशी बना रहता हो, 15 मई या उससे पहले उस व्यक्ति को धारा 102 (बी) में वर्णित रिपोर्ट फ़ाइल करनी होगी। पिछले वाक्य के बावजूद, यदि किसी भी कैलेंडर वर्ष में, जिसमें कोई व्यक्ति किसी पद का प्रत्याशी हो पर ऐसे पद के लिए सभी चुनाव जो ऐसी अभ्यर्थिता से संबंधित हैं, पिछले कैलेंडर वर्ष में हो चुके हों, ऐसे प्रत्याशी को रिपोर्ट फ़ाइल करने की आवश्यकता नहीं है बशर्ते कि वह उसी कार्यालय में किसी अन्य रिक्त स्थान अथवा किसी अन्य पद के लिए उस वर्ष में प्रत्याशी न बन गया हो।

(इ) उपधारा (बी) और (सी) में संदर्भित अधिकारी और कर्मचारी यह हैं :

(1) विधायी शाखा का प्रत्येक वह अधिकारी या कर्मचारी जिसे सामान्य अनुसूची की श्रेणी जीएस-16 में प्रभावी मूल वेतन की वार्षिक दर के बराबर या उससे अधिक मुआवज़ा मिलता हो; और

(2) इस धारा के उद्देश्य से, प्रत्येक ऐसे सदस्य द्वारा पदनामित प्रधान सहायक, जिसके पास कोई ऐसा कर्मचारी नहीं है जिसे सामान्य अनुसूची की श्रेणी जीएस-16 में प्रभावी मूल वेतन की वार्षिक दर के बराबर या उससे अधिक मुआवज़ा मिलता हो।

इस खंड के प्रयोजन से, विधायी शाखा में संसद भवन के स्थपति, वनस्पति उद्यान, कांग्रेस का बजट-कार्यालय, लागत लेखाविधि मानक बोर्ड, महालेखा कार्यालय, सरकारी मुद्रण कार्यालय, कांग्रेस का पुस्तकालय, परिचारी चिकित्सक का कार्यालय, वायु-क्वालिटी पर राष्ट्रीय आयोग, और प्रौद्योगिकी मूल्यांकन का कार्यालय शामिल हैं।

(एफ़) सचिव के यहां रिपोर्ट फ़ाइल करने वालों को सेनेट की पदनामित कमेटी और क्लर्क के यहां रिपोर्ट फ़ाइल करने वालों को हाउस ऑफ़ रिप्रेजेंटेटिव्स की पदनामित कमेटी समय सीमा में समुचित छूट दे सकती हैं पर किसी सदस्य अथवा प्रत्याशी को छूट देने का परिणाम किसी भी दशा में यह नहीं होगा कि अपेक्षित रिपोर्ट उस चुनाव के सात दिन पूर्व के बाद दाखिल की जाए, जिसमें वह सदस्य या प्रत्याशी भाग ले रहा हो। यदि रिपोर्ट फ़ाइल करने का दिन सप्ताहांत या छुट्टी के दिन पड़े, तो रिपोर्ट अगले कार्यदिवस पर फ़ाइल की जा सकती है।

(जी) इस धारा की उपधारा (डी) में निर्दिष्ट तिथियों के बावजूद, कोई भी व्यक्ति जो कैलेंडर वर्ष 1978 में प्रत्याशी हो, उक्त उपधारा में अपेक्षित रिपोर्ट 1 नवम्बर 1978 के पश्चात् फ़ाइल नहीं करेगा, सिवाय इसके कि जिस प्रत्याशी ने सेनेट के नियमों के अनुरूप उक्त तिथि को रिपोर्ट फ़ाइल की हो, उसे इस धारा की उपधारा (डी) के अनुसरण में अपेक्षित रिपोर्ट फ़ाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी।

(एच) संदर्भ के अनुसार हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव्स की पदनामित कमेटी अथवा सेनेट की पदनामित कमेटी, इस धारा के अंतर्गत रिपोर्ट दाख़िल करने की अनिवार्यता से सार्वजनिक रूप में प्राप्त छूट की प्रार्थना को ऐसे व्यक्ति के मामले में स्वीकृति दे सकती है जिससे/जिसने एक कैलेंडर वर्ष में अपने पदीय कर्तव्य 130 दिन से कम तक निभाये जाने की अपेक्षा हो/निभाये हों, पर ऐसा तभी किया जा सकता है यदि कमेटी इस निर्णय पर पहुंच जाए कि :

(1) ऐसा व्यक्ति सरकार का पूर्णकालिक कर्मचारी नहीं है,

(2) ऐसा व्यक्ति उन सेवाओं को प्रदान करने के योग्य है जिनकी आवश्यकता सरकार को है,

(3) इस बात की संभावना नहीं है कि इस व्यक्ति का बाहरी रोज़गार अथवा उसके वित्तीयहित हितों में टकराव पैदा करेंगे, और

(4) प्रस्तुत परिस्थितियों में ऐसे व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक वित्तीय प्रकटीकरण किया जाना आवश्यक नहीं है।

रिपोर्टों की अंतर्वस्तु

धारा 102. (ए) धारा 101 की उपधाराओं (ए) और (बी) के अनुसरण में फ़ाइल की गई प्रत्येक रिपोर्ट में निम्नलिखित विषयों की सम्पूर्ण और विस्तृत जानकारी शामिल रहेगी :

(1) (ए) उपपैरा (बी) में संदर्भित आय से भिन्न किसी स्रोत से, (संयुक्त राज्य सरकार के वर्तमान रोज़गार से होने वाली आय को छोड़कर) होने वाली आय का स्रोत, प्रकार, राशि अथवा मूल्य, और किसी भी स्रोत से प्राप्त 100 डॉलर की कुल राशि अथवा कीमत के बराबर मानधन का, जो पिछले कैलेंडर वर्ष के दौरान प्राप्त हुआ हो, स्रोत, तिथि और राशि।

(बी) पिछले वर्ष में प्राप्त 100 डॉलरों की राशि या उसके मूल्य की ऐसी आय का स्रोत जिसमें लाभांश, ब्याज, किराया और पूंजी अभिलाभ शामिल हों और यह स्पष्टीकरण कि निम्नलिखित वर्गों में से किस वर्ग के अंतर्गत ऐसी राशि अथवा उसके बराबर का मूल्य आता है :

(i) 100 डॉलर से अधिक नहीं

(ii) 2,500 डॉलर से अधिक पर 5,000 डॉलर से अधिक नहीं

(iii) 5,000 डॉलर से अधिक पर 15,000 डॉलर से अधिक नहीं

(iv) 15,000 डॉलर से अधिक पर 50,000 डॉलर से अधिक नहीं

(v) 50,000 डॉलर से अधिक पर 100,000 डॉलर से अधिक नहीं

(vi) 100,000 डॉलर से अधिक

(2) (ए) पिछले वर्ष के दौरान, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को उसके किसी संबंधी को छोड़कर अन्य किसी स्रोत से प्राप्त 250 डॉलर या उससे अधिक मूल्य के किसी प्रकार के उपहार - परिवहन, निवास, भोजन अथवा मनोरंजन, प्रदान करने वाले स्रोत का अभिज्ञान, सिवाय इसके कि कोई भोजन, निवास अथवा मनोरंजन आदि, जो निजी आतिथ्य के रूप में स्वीकार किया गया हो और ऐसा कोई उपहार जिसकी उचित बाज़ार-कीमत 35 डॉलर या उससे कम है, तो उन्हें इस उप पैरा के उद्देश्यों से, जोड़ना जरूरी नहीं है।

(बी) पिछले वर्ष के दौरान, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को उसके किसी संबंधी को छोड़कर अन्य किसी स्रोत से प्राप्त, परिवहन, निवास, भोजन अथवा मनोरंजन के अतिरिक्त 100 डॉलर या उससे अधिक की राशि अथवा मूल्य के सभी उपहारों के स्रोत का अभिज्ञान, संक्षिप्त वर्णन और उनकी कीमत, सिवाय इसके कि यदि ऐसे किसी उपहार की कीमत 35 डॉलर या उससे कम है तो उसे इस उप पैरा के उद्देश्यों से जोड़ना जरूरी नहीं है।

(सी) पिछले कैलेंडर वर्ष के दौरान प्राप्त 250 डॉलर या उससे अधिक के कुल मूल्य की प्रतिपूर्तियों के स्रोत का अभिज्ञान और उनका संक्षिप्त वर्णन।

(डी) असाधारण परिस्थितियों में यदि छूट के लिए प्राप्त किसी सार्वजनिक प्रार्थना को स्वीकार कर लिया जाता है, तो उपहार को उप पैरा (ए) अथवा (बी) के अंतर्गत जोड़ने की ज़रूरत नहीं है।

(3) पिछले कैलेंडर वर्ष के दौरान, किसी कारोबार या व्यापार में, या निवेश अथवा आय की उत्पत्ति के लिए लगाई गई ऐसी किसी संपत्ति का अभिज्ञान और वर्ग जिससे किसी प्रकार के लाभ की अपेक्षा हो और उसका उचित बाज़ार भाव पिछले कैलेंडर वर्ष के अंत में 1000 डॉलर या उससे अधिक हो; इसमें रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के प्रति उसके किसी रिश्तेदार की निजी देनदारी अथवा किसी व्यक्तिगत बचत खाते में 5,000 डॉलर या उससे कम की जमाराशियां शामिल नहीं हैं। इस पैरा के प्रयोजन से, एक व्यक्तिगत बचत खाते में 'डिपॉज़िट प्रमाणपत्र' अथवा किसी बैंक, बचत और ऋण संघ, ऋण यूनियन अथवा ऐसी ही किसी वित्तीय संस्था में किसी अन्य प्रकार की जमाराशियां भी शामिल हैं।

(4) एक संबंधी के अतिरिक्त किसी भी लेनदार के प्रति देनदारी का अभिज्ञान और वर्ग जिसकी कीमत पिछले कैलेंडर वर्ष में किसी भी समय 10,000 डॉलर से अधिक रही हो, सिवाय

(ए) किसी ऐसी बंधक के, जिसके लिए उस पूर्ण स्वामिक स्थावर संपत्ति की, जो कि रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति की पत्नी/पति का या उसका अपना आवासीय घर है, प्रतिभूति दी गई हो,

(बी) किसी ऐसे ऋण के, जिसकी प्रतिभूति किसी मोटर वाहन, घरेलू फ़र्निचर या उपकरणों द्वारा की गई हो बशर्ते कि वह ऋण उस मद की ख़रीद-कीमत से अधिक नहीं है जिससे उस की प्रतिभूति की गई हो।

जहां तक परिक्रामी भार लेखों का संबंध है, इस पैरा के अंतर्गत केवल उन्हीं को रिपोर्ट किया जाएगा जिनकी बकाया देनदारी पिछले वर्ष के अन्त में 10,000 डॉलर से अधिक थी।

(5) इस पैरा में दी गई व्यवस्था को छोड़ कर, ख़रीदी, बेची अथवा आदान-प्रदान की गई उन मदों का संक्षिप्त विवरण, तिथि और कीमत-वर्ग, जिनका मूल्य पिछले वर्ष के दौरान 1000 डॉलर से अधिक रहा हो :

(ए) पूर्ण स्वामिक स्थावर संपत्ति में, उस संपत्ति को छोड़ कर जिसका उपयोग रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति द्वारा केवल अपने, या अपनी/अपने पत्नी/पति के रहने के लिए किया जा रहा हो, या

(बी) स्टॉक, बंधपत्रों, वाणिज्या वायदों और प्रतिभूतियों की अन्य किस्मों में। इस पैरा के अंतर्गत ऐसे किसी व्यवहार की रिपोर्ट देना आवश्यक नहीं है जिसका लेन-देन केवल रिपोर्ट करने वाले व्यक्ति उसकी/उसके पत्नी/पति अथवा आश्रित बच्चों के बीच किया गया हो।

(6) रिपोर्ट फ़ाइल करने की तिथि या उससे पहले, संयुक्त राज्य के अतिरिक्त किसी भी कॉर्पोरेशन, कंपनी, फ़र्म, भागीदारी, अथवा अन्य व्यापारिक उद्यम, किसी ग़ैर-लाभकारी संगठन, किसी श्रम संगठन अथवा किसी शिक्षा संस्थान में, एक अधिकारी, निर्देशक, ट्रस्टी, भागीदार, स्वामी, प्रतिनिधि, कर्मचारी अथवा परामर्शदाता के रूप में धारित सभी पदों का अभिज्ञान। इस पैरा के अंतर्गत उन पदों के रिपोर्ट किए जाने की आवश्यकता नहीं है जो किसी धार्मिक, सामाजिक बंधुत्व संबंधी अथवा राजनीतिक संस्था से संबंधित हों अथवा जो केवल अवैतनिक/मानद प्रकृति के हों।

(7) (ए) किसी भावी रोज़गार; (बी) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति द्वारा सरकारी सेवा के दौरान लिए गए अनुपस्थिति अवकाश; (सी) संयुक्त राज्य के अतिरिक्त किसी पिछले नियोक्ता द्वारा जारी रखे गए भुगतान; और (डी) किसी पिछले नियोक्ता द्वारा संचालित किसी कर्मचारी कल्याण अथवा योजना में जारी रखे गए सहभाग, उनसे संबंधित पार्टियों अथवा व्यवस्था का विवरण,

(बी) धारा 101 की उपधाराओं (सी और डी) के अनुसरण में फ़ाइल की गई प्रत्येक रिपोर्ट में निम्नांकितों के अंतर्गत वांछित जानकारी के संबंध में सम्पूर्ण और विस्तृत जानकारी शामिल रहेगी :

(1) उपधारा (ए) का पैरा (1), फ़ाइल करने के और उससे पिछले कैलेंडर वर्ष के लिए,

(2) उपधारा (ए) के पैरा (3) और (4), रिपोर्ट में निर्दिष्ट तिथि के संबंध में परन्तु जो फ़ाइल करने की तिथि से 31 दिन पूर्व से कम है, और

(3) उपधारा (ए) के पैरा (6) और धारा 101 (सी) पैरा (7) और उपधारा (बी)के अंतर्गत फ़ाइल की गई रिपोर्ट के विषय में फ़ाइल करने की तिथि के संबंध में, परन्तु उन्हीं अवधियों के लिए जिनका वर्णन ऐसे पैराओं में किया गया है

(सी) (1) उपधारा (ए) के पैरा (3), (4) और (5) में उल्लिखित मदों के मूल्य के संबंध में रिपोर्ट करने के लिए वर्गीकरण निम्नानुसार है :

(ए) 5,000 डॉलर से अधिक नहीं

(बी) 5,000 डॉलर से अधिक पर 15,000 डॉलर से अधिक नहीं

(सी) 15,000 डॉलर से अधिक पर 50,000 डॉलर से अधिक नहीं

(डी) 50,000 डॉलर से अधिक पर 100,000 डॉलर से अधिक नहीं

(इ) 100,000 डॉलर से अधिक पर 250,000 डॉलर से अधिक नहीं

(एफ) 250,000 डॉलर से अधिक

(2) उपधारा (ए) के पैरा (3) के प्रयोजन से, यदि किसी स्थावर संपदा में हित (अथवा किसी स्थावर संपदा की भागीदारी में हित) का निर्धारण मूल्यांक्न कराए बिना न हो सकता हो, तो कोई व्यक्ति (ए) स्थावर संपदा की खरीद की तिथि और उस में हित की ख़रीद-कीमत को अथवा (बी) कर के उद्देश्य से वास्तविक संपदा की मूल्यांकित कीमत को जिसे मूल्यांकन के लिए इस प्रकार समायोजित किया गया हो कि उससे उसकी बाज़ार-कीमत का पता चल सके, यदि उसकी संगणना बाज़ार-कीमत की 100 प्रतिशत की दर से कम पर की गई हो, पर ऐसे व्यक्ति को इस प्रकार मूल्यांकित की गई कीमत को निर्धारित करने के लिए अपनाए गए तरीके का सम्पूर्ण विवरण देना होगा, न कि इस उपधारा के पैरा (1) के अनुसरण में किसी वर्ग में दी गई कीमत का उल्लेख करना। यदि किसी अन्य मद की वर्तमान कीमत का, जिसकी रिपोर्ट उपधारा (ए) के पैरा (3) के अंतर्गत करनी आवश्यक हो, बिना मूल्यांकन कराए निर्धारण संभव न हो, तो ऐसा व्यक्ति एक ऐसी कॉर्पोरेशन के स्टॉक की बही-कीमत को, जिसका सार्वजनिक व्यापार न होता हो, किसी व्यापारिक सहभागिता के शुद्ध मूल्य को, किसी व्यक्तिगत स्वामित्व के व्यापार की इक्विटी कीमत को अथवा, अन्य संपत्तियों के मामले में, मूल्य निर्धारण के किसी मान्यता प्राप्त संकेत को

सूचीबद्ध कर सकता है, पर उस व्यक्ति को ऐसी कीमत के निर्धारण के लिए अपनाए गए तरीके का सम्पूर्ण विवरण अपनी रिपोर्ट में देना होगा। पिछले वाक्य में संदर्भित किसी कीमत के बदले, कोई व्यक्ति उस उक्त मद की, कर के उद्देश्य से मूल्यांकित कीमत को सूचीबद्ध कर सकता है जिसे मूल्यांकन के लिए इस प्रकार समायोजित किया गया हो कि उससे उसकी बाज़ार कीमत का पता चल सके, यदि उसकी संगणना बाज़ार कीमत की 100 प्रतिशत दर से कम पर की गई हो, पर इस प्रकार मूल्यांकित कीमत के निर्धारण में इस्तेमाल किए गए तरीके का सम्पूर्ण विवरण रिपोर्ट में देना होगा।

(डी) (1) इस पैरा के अंतिम वाक्य में दी गई व्यवस्था को छोड़ कर, रिपोर्ट फाइल करने वाले व्यक्तियों को प्रत्येक रिपोर्ट में, उपधारा (ए) के पैरा (1) से (5) तक सूचीबद्ध जानकारी अपने/अपनी पति/पत्नी तथा आश्रित बच्चे के संबंध में नीचे लिखे अनुसार देनी होगी :

(ए) किसी भी व्यक्ति से 1,000 डॉलर से अधिक, पत्नी/पति द्वारा अर्जित की गई अर्जित आय की मदों का स्रोत और, पत्नी/पति तथा आश्रित बच्चों के संबंध में, ऐसी सारी जानकारी जिसका उपधारा (ए) (1) (बी) के अंतर्गत पत्नी/पति तथा आश्रित बच्चे द्वारा धारित किसी भी परिसम्पत्ति से होने वाली आय का रिपोर्ट किया जाना आवश्यक हो और जिसे पैरा (3) के अंतर्गत रिपोर्ट किया हो। जहां तक अर्जित आय का संबंध है, यदि पत्नी/पति स्व-रोज़गार में है अथवा वृत्तिक है, तो केवल उसके व्यापार अथवा वृत्ति की रिपोर्ट करना ही पर्याप्त है।

(बी) यदि किसी पत्नी/पति द्वारा कोई ऐसे उपहार प्राप्त किए गए हैं जिनकी प्राप्ति रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के साथ उसके संबंधों से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं है तो उन उपहारों के स्रोत का अभिज्ञान तथा परिवहन, निवास, भोजन अथवा मनोरंजन का संक्षिप्त विवरण तथा अन्य उपहारों का संक्षिप्त विवरण तथा कीमत।

(सी) यदि किसी पत्नी/पति द्वारा कोई ऐसी प्रतिपूर्तियां प्राप्त की गई हैं जिनकी प्राप्ति रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के साथ उसके संबंधों से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं है तो उनके स्रोत का अभिज्ञान और ऐसी प्रत्येक प्रतिपूर्ति का संक्षिप्त विवरण।

(डी) पैरा (3) से (5) तक वर्णित मदों के सिलसिले में, इन पैराग्राफ़ों के अंतर्गत दिए जाने के लिए अपेक्षित सारी जानकारी सिवाय उन मदों के (i) जिनके बारे में रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति ने प्रमाणित किया है कि वह केवल पत्नी/पति अथवा आश्रित बच्चे के वित्तीय हितों अथवा उत्तरदायित्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं और जिनका रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को कोई ज्ञान नहीं है, (ii) जिन्हें किसी प्रकार, अतीत अथवा वर्तमान में, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति की आय, परिसम्पत्तियों अथवा गतिविधियों से व्युत्पन्न नहीं किया गया है और (iii) जिनसे रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार का वित्तीय अथवा आर्थिक लाभ न तो व्युत्पन्न हो रहा है न होने की आशा है।

इस धारा की उपधारा (बी) में संदर्भित प्रत्येक रिपोर्ट में, फ़ाइल करने वाले व्यक्ति की पत्नी/पति और आश्रित बच्चे के संबंध में केवल उपधारा (ए) के पैराओं (1), (3) और (4) में सूचीबद्ध जानकारी दी जाएगी जैसा कि इस पैरा में निर्दिष्ट है।

(2) उस पत्नी/पति के संबंध में किसी रिपोर्ट की आवश्यकता नहीं है जो विवाह संबंध तोड़ने के विचार से अथवा स्थायी रूप से अलग रहने का प्रावधान करने के लिए अलग रह रही/रहा हो; अथवा किसी व्यक्ति की ऐसी किसी आय अथवा आभार की जिसका कारण विवाह का भंग होना अथवा पत्नी/पति का स्थायी रूप से अलग होना हो।

(इ) (1) पैरा (2) में दी गई व्यवस्था को छोड़ कर, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी जानकारी रिपोर्ट में देनी होगी जो इस धारा की उपधाराओं (ए) और (बी) के अनुसरण में उस व्यक्ति, उसकी पत्नी/पति अथवा किसी आश्रित बच्चे को किसी ट्रस्ट की धारकता अथवा किसी अन्य वित्तीय व्यवस्था से होने वाली आय से अथवा किसी ऐसे मूलधन के ब्याज अथवा आय से, जिससे लाभ-हित जुड़ा हुआ हो, संबंधित है। (2) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले किसी व्यक्ति को निम्नलिखित धारकताओं अथवा किसी ऐसी धारकताओं से होने वाली आय के स्रोत की जानकारी देने की आवश्यकता नहीं है :

(ए) पैरा (3) में परिभाषित कोई अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट; अथवा (बी) कोई ऐसा ट्रस्ट

(i) जो ऐसे व्यक्ति, उसकी/उसके पत्नी/पति अथवा किसी आश्रित ने स्थापित न किया हो, और

(ii) जिसकी धारकता अथवा आय के स्रोत के संबंध में ऐसा व्यक्ति, उसकी/उसका पत्नी/पति और कोई आश्रित बच्चा, कुछ न जानते हों

पर ऐसे व्यक्ति को, इस धारा की उपधारा (ए) (1) (बी) के अंतर्गत उसे, उसकी/उसके पत्नी/पति अथवा किसी आश्रित बच्चे को उस प्रकार के ट्रस्ट से होने वाली आय के वर्ग की जानकारी देनी होगी।

(3) इस उपधारा के प्रयोजन से, 'अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट' की परिभाषा में ऐसा कोई भी ट्रस्ट शामिल है, जिसके मूलधन अथवा आय में रिपोर्ट फाइल करने वाले व्यक्ति, उसकी/उसके पत्नी/पति अथवा आश्रित बच्चे के वित्तीय हित निहित हों और जो निम्नलिखित शर्तों को पूरा करता हो :

(ए) उस ट्रस्ट की/का ट्रस्टी कोई वित्तीय संस्था, एटॉर्नी, प्रमाणित लोक-लेखाकार या निवेश-परामर्शदाता हो, जो (वित्तीय संस्था या निवेश कम्पनी के मामले में एक ऐसा अधिकारी अथवा कर्मचारी हो जो उस ट्रस्ट के प्रबंधन अथवा नियंत्रण में शामिल हो, जो)

(i) किसी हितधारक पार्टी से स्वतंत्र और असम्बद्ध है ताकि किसी हितधारक पार्टी द्वारा उस ट्रस्ट के प्रशासन में ट्रस्टी पर नियंत्रण न किया जा सके या प्रभाव न डाला जा सके।

(ii) किसी हितधारक पार्टी अथवा हितधारक पार्टी से संबंधित किसी संगठन का कर्मचारी नहीं है या नहीं रहा है, और

(iii) किसी हितधारक पार्टी का संबंधी नहीं है।

(बी) किसी हितधारक पार्टी द्वारा ट्रस्ट को हस्तान्तरित की गई कोई भी परिसम्पत्ति उसके हस्तान्तरण अथवा विक्रय के मामले में किसी भी प्रकार के प्रतिबंध से मुक्त हो बशर्ते कि रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय ने उस प्रतिबंध को स्पष्ट रूप से स्वीकृति नहीं दी हो।

(सी) ट्रस्ट-उपकरण में, जिसके अंतर्गत ट्रस्ट की स्थापना की गई है, यह व्यवस्था हो कि

(i) इस पैरा के उप पैरा (बी) में दी गई व्यवस्था की सीमा को छोड़ कर, ट्रस्टी, ट्रस्ट के नियंत्रण और प्रबंधन के काम में अपने अधिकारों और विवेक के उपयोग में किसी हितधारक पार्टी से परामर्श नहीं करेगा अथवा उसे अधिसूचित नहीं करेगा;

(ii) ट्रस्ट ऐसी किसी परिसम्पत्ति का धारक नहीं होगा जिसका धारण करना किसी कानून अथवा विनियम द्वारा निषिद्ध ठहराया गया हो;

(iii) जब भी किसी हितधारक पार्टी द्वारा ट्रस्ट को हस्तान्तरित की गई कोई परिसम्पत्ति की धारकता को बेचा जाए अथवा उस धारकता का मूल्य 1000 डॉलर से कम हो तो ट्रस्टी इसकी अधिसूचना रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को तथा उसके पर्यवेक्षी नैतिकता अधिकारी को तुरंत देगा;

(iv) ट्रस्ट की कर-रिटर्न ट्रस्टी अथवा उसके द्वारा पदनामित व्यक्ति द्वारा तैयार की जाएगी और (हितधारक पार्टी की कर-रिटर्न के लिए आवश्यक समुचित श्रेणियों में दी गई ट्रस्ट की आय के सारांश को छोड़ कर) ऐसी रिटर्न अथवा उससे संबंधित किसी जानकारी का किसी हितधारक पार्टी को प्रकटीकरण नहीं किया जाएगा;

(v) ट्रस्ट में, हितधारक पार्टी के हित का कैलेंडर की तिमाही के अंत में जो नकद मूल्य हो उस पर एक रिपोर्ट, या ट्रस्ट के शुद्ध लाभ अथवा हानि या हितधारक पार्टी को, उसके द्वारा कानून के अंतर्गत वांछित व्यक्तिगत कर-रिटर्न भरने के योग्य बनाने अथवा इस धारा की उपधारा (ए) (1) (बी) के अंतर्गत जानकारी प्रदान करने के लिए वांछित रिपोर्टों के अतिरिक्त हितधारक पार्टी को कोई रिपोर्ट नहीं दी जाएगी।

(vi) उस संप्रेषण के अतिरिक्त जिसमें केवल नकदी या ट्रस्ट की अन्य अनिर्दिष्ट परिसम्पत्तियों के वितरण का अनुरोध किया गया हो, ट्रस्टी और हितधारक पार्टी के बीच ट्रस्ट से संबंधित और किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संप्रेषण नहीं होगा, यह संप्रेषण लिखित रूप में न हो और यदि वह (I) हितधारक पार्टी के सामान्य वित्तीय हित और आवश्यकताओं से संबंधित न हो (जिसमें आय अथवा दीर्घावधि पूंजी लाभ को अधिकतम करने का विषय भी - न कि केवल वही विषय - शामिल हो), (II) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति पर बाद में लागू हुए ऐसे कानून अथवा विनियम विषयक ट्रस्टी की अधिसूचना हो जिसके अंतर्गत हितधारक पार्टी के लिए किसी परिसम्पत्ति को रखने का निषेध हो, जो अधिसूचना निर्देश देती हो कि ट्रस्ट ऐसी परिसम्पत्ति को न रखे, अथवा (III) ट्रस्टी को ऐसी सारी परिसम्पत्ति को बेचने के निर्देशों के संबंध में हो जिसे हितधारक पार्टी द्वारा शुरू में ट्रस्ट में रखा गया हो और जो रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के मतानुसार उसके द्वारा

बाद में ग्रहण किए गए कर्तव्यों से संबंधित हित के साथ टकराव पैदा करने वाली हो या जिससे ऐसा लगे कि इस प्रकार का टकराव है (पर इसके अंतर्गत ऐसे किसी निर्देश की व्यवस्था नहीं होगी); और

(vii) हितधारक पार्टियां ट्रस्ट की धृतियों के संबंध में कोई जानकारी प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेंगी। इसमें, इस उपधारा में दी गई व्यवस्था को छोड़ कर, ट्रस्ट-टैक्स की फ़ाइल की गई किसी भी रिटर्न की प्रतिलिपि या उससे संबंधित कोई अन्य जानकारी शामिल है।

(डी) प्रस्तावित ट्रस्ट उपकरण को और प्रस्तावित ट्रस्टी को रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के पर्यवेक्षी नैतिक कार्यालय की स्वीकृति प्राप्त हो। इस उपधारा के प्रयोजन से 'हितधारक पार्टी' का अर्थ है रिपोर्ट फ़ाइल करने वाला व्यक्ति, उसकी/उसका पत्नी/पति और आश्रित बच्चा, बशर्ते कि रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति, उसकी/उसके पत्नी/पति अथवा आश्रित बच्चे के किसी अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट के मूलधन अथवा ब्याज में कोई लाभकारी हित हों; 'दलाल' का अर्थ, 1934 के प्रतिभूति और विनिमय अधिनियम (15 यू.एस.सी. 78 सी (ए) (4); की धारा 3 (ए) (4)) में दिए अनुसार है; 'निवेश परामर्शदाता' में ऐसा कोई निवेश परामर्शदाता शामिल है जो पर्यवेक्षी नैतिक कार्यालय द्वारा निर्धारित विनियमों में दी गई व्यवस्था के अनुसार, ट्रस्ट के प्रबंधन और नियंत्रण में सामान्यतः ऐसे परामर्शदाता की अपनी भूमिका के नाते उससे सम्बद्ध है; और पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय का अर्थ हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव्स की उन लोगों के लिए पदनामित कमेटी है जिन्हें इस खंड द्वारा अपेक्षित रिपोर्टें क्लर्क के यहां फ़ाइल करनी होती हैं तथा सेनेट की उन लोगों के लिए पदनामित कमेटी है जिन्हें इस खंड द्वारा अपेक्षित रिपोर्टें सचिव के यहां फ़ाइल करनी होती हैं।

(1) संयुक्त राज्य संहिता, खंड 18 की धारा 208 और संघीय शासन के हितों के टकराव संबंधी किन्हीं भी अन्य कानूनों अथवा विनियमों के प्रयोजन से, किसी हितधारक पार्टी द्वारा किसी परिसम्पत्ति को, जो कि ट्रस्ट में रखी गई हो, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के वित्तीय हित की माना जाएगा, तब तक जब तक कि रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को ट्रस्टी यह अधिसूचना न दे दे कि ऐसी परिसम्पत्ति को बेच दिया गया है या उसकी कीमत 1000 डॉलर से कम है।

(2) (ए) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाला व्यक्ति, उसके पर्यवेक्षी नैतिक कार्यालय द्वारा एक अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट को स्वीकृति दे दिए जाने के 30 दिन के भीतर, एक प्रतिलिपि

(i) (ट्रस्ट की परिसम्पत्तियों के वसीयती स्वरूप से संबंधित व्यवस्थाओं को छोड़कर) ऐसे ट्रस्ट के निष्पादित ट्रस्ट उपकरण की, और

(ii) उस ट्रस्ट को हस्तान्तरित की गई परिसम्पत्तियों की एक सूची की, जिसमें इस धारा की उपधारा (सी)(1) के अंतर्गत निर्धारित प्रत्येक परिसम्पत्ति के मूल्य का वर्ग शामिल हो,

उक्त कार्यालय में फ़ाइल करेगा।

यह उप पैरा ऐसे ट्रस्ट के संबंध में लागू नहीं होगा जिसने इस उपधारा के पैरा (7) के अंतर्गत एक अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट के रूप में स्वीकृति के लिए विचारार्थ आवश्यकताओं को पूरा किया हुआ हो।

(ए) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाला व्यक्ति, पहले से स्थापित अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट को (नकदी को छोड़कर) हस्तान्तरित की गई परिसंपत्ति के संबंध में इस धारा की उपधारा (सी)(1) के अंतर्गत ऐसी प्रत्येक परिसंपत्ति की पहचान और उसके मूल्य के वर्ग की अधिसूचना अपने पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय को हस्तान्तरण के 30 दिन के भीतर देगा।

(बी) किसी अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट के विघटन के 30 दिन के भीतर, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाला व्यक्ति

(i) अपने पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय को ऐसे विघटन की अधिसूचना देगा, और

(ii) ऐसे प्रत्येक ट्रस्ट के विघटन के समय ट्रस्ट की परिसम्पत्तियों की और इस उपधारा की उपधारा (सी) के अंतर्गत ऐसी प्रत्येक परिसम्पत्ति के मूल्य वर्ग की सूची की एक प्रतिलिपि उस कार्यालय में फ़ाइल करेगा।

(ए) इस पैरा के उपपैराओं (ए), (बी) और (सी) के अंतर्गत फ़ाइल किए गए दस्तावेजों तथा किसी हितधारक पार्टी द्वारा ट्रस्ट में रखी गई ऐसी परिसम्पत्तियों की ट्रस्टी द्वारा उपलब्ध कराई गई सूची जिन्हें बेच दिया गया हो, सार्वजनिक रूप से उसी प्रकार उपलब्ध कराई जाएगी जैसे धारा 104 के अंतर्गत रिपोर्ट को उपलब्ध कराया जाता है, और उस धारा की व्यवस्थाएं ऐसे दस्तावेजों और सूची पर लागू होंगी।

(बी) पैरा (3) (सी) (vi) के अंतर्गत ट्रस्ट से संबंधित प्रत्येक लिखित संप्रेषण की एक प्रतिलिपि उस संप्रेषण को प्रारंभ करने वाले व्यक्ति द्वारा रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय में संप्रेषण की तिथि के पांच दिन के भीतर फ़ाइल की जाएगी।

(6) (ए) किसी अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट का कोई ट्रस्टी जानबूझ कर या उपेक्षापूर्वक (i) किसी हितधारक पार्टी को ऐसी कोई जानकारी नहीं देगा जिसे इस उपधारा के पैरा (3) के अंतर्गत प्रकट न किया जा सकता हो; (ii) ऐसी कोई धारकता प्राप्त नहीं करेगा जिसका स्वामित्व ट्रस्ट उपकरण द्वारा निषिद्ध हो; (iii) किसी हितधारक पार्टी से ऐसे ट्रस्ट के संबंध में ऐसा परामर्श नहीं मांगेगा जिसका मांगा जाना इस उपधारा के पैरा (3) अथवा ट्रस्ट के करार द्वारा वर्जित किया गया हो; अथवा इस उपधारा द्वारा अपेक्षित किसी दस्तावेज़ को फ़ाइल करने में चूक नहीं करेगा।

(बी) कोई रिपोर्ट फ़ाइल करने वाला व्यक्ति जानबूझ कर या उपेक्षापूर्वक (i) उस अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट के संबंध में, जिसकी वह हितधारक पार्टी हो, ऐसी कोई सूचना नहीं मांगेगा या नहीं देगा जिसे इस उपधारा के पैरा (3) (सी) के अंतर्गत प्रकट न किया जा सकता हो, अथवा (ii) इस उपधारा द्वारा अपेक्षित किसी दस्तावेज़ को फ़ाइल करने में चूक नहीं करेगा।

(ए) (i) महान्यायवादी संयुक्त राज्य के किसी भी उपयुक्त ज़िला-न्यायालय में ऐसे किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध दीवानी मुकदमा पेश कर सकते हैं जिसने इस पैरा के उपपैरा (ए) अथवा (बी) की व्यवस्थाओं का जान-बूझकर और दुराग्रहपूर्वक उल्लंघन किया हो। जिस न्यायालय में ऐसा मुकदमा लाया जाए, वह ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध दीवानी जुर्माने की कोई भी रकम, जो 5,000 डॉलर से अधिक न हो, निर्धारित कर सकता है। (ii) महान्यायवादी संयुक्त राज्य के किसी भी उपयुक्त ज़िला न्यायालय में ऐसे किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध दीवानी मुकदमा पेश कर सकते हैं जिसने इस पैरा के उपपैरा (ए) अथवा (बी) की व्यवस्थाओं का उपेक्षापूर्वक उल्लंघन किया हो। जिस न्यायालय में ऐसा मुकदमा लाया जाए, वह ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध दीवानी जुर्माने की कोई भी रकम, जो 1000 डॉलर से अधिक न हो, निर्धारित कर सकता है।

(7) किसी भी ट्रस्ट को अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट माना जा सकता है, यदि

(ए) ट्रस्ट उपकरण में पैरा (3) की अपेक्षाओं का अनुपालन करने हेतु संशोधन कर दिया गया हो अथवा, यदि कोई ट्रस्ट-उपकरण,

उसकी शर्तों के अंतर्गत संशोधन की अनुमति नहीं देता, तो ट्रस्टी, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाला व्यक्ति और कोई अन्य हितधारक पार्टी लिखित रूप से यह सहमति प्रदान करें कि ट्रस्ट का संचालन इस उपधारा की अपेक्षाओं के अनुरूप किया जाएगा और ऐसे ट्रस्ट का ट्रस्टी पैरा (3) (ए) की अपेक्षाओं को पूरा करता है; इस अपवाद के साथ कि यदि हितधारक पार्टी आश्रित बच्चा हो तो ऐसे बच्चे की/का माता/पिता अथवा अभिभावक इस उपपैरा में संदर्भित करार को निष्पादित कर सकेगी/गा;

(बी) (वसीयती व्यवस्थाओं को छोड़कर) ट्रस्ट-उपकरण की एक प्रतिलिपि और उपपैरा (ए) में संदर्भित क़रार की एक प्रतिलिपि और पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय द्वारा स्वीकृति प्रदान करते समय ट्रस्ट द्वारा धारित परिसम्पत्तियों की एक सूची, जिसमें इस धारा की उपधारा (डी) के अंतर्गत निर्धारित प्रत्येक परिसम्पत्ति का मूल्यवर्ग शामिल हो, ऐसे कार्यालय में फ़ाइल की जाए और उन्हें इस उपधारा के पैरा (5) (डी) के अंतर्गत दी गई व्यवस्था के अनुसार सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराया जाए।

(सी) पर्यवेक्षी नैतिकता कार्यालय यह निर्धारित करे कि एक अर्हित अप्रत्यक्ष ट्रस्ट के रूप में ट्रस्ट का ठहराव उस विशेष मामले में लागू होने वाले कानूनों और विनियमों के अनुपालन करने को सुनिश्चित करने की दृष्टि से उचित है

(एफ) इस खंड के अनुसरण में फ़ाइल की जाने वाली रिपोर्ट में, राजनीतिक अभियान की धनराशियों को, जिनमें प्राप्तियां और खर्च सम्मिलित हैं, शामिल करने की आवश्यकता नहीं है।

(जी) धारा 101 की उपधाराओं (ए) और (बी) के अनुसरण में फ़ाइल की गई रिपोर्ट में, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले किसी व्यक्ति के लिए, उपधारा (ए) (2) के उपपैराओं (ए), (बी) और (सी) में वर्णित ऐसे उपहारों और प्रतिपूर्तियों से संबंधित जानकारी देना आवश्यक नहीं है जो रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को उस समय प्राप्त हुए हों जब वह संघीय सरकार का सदस्य, या अधिकारी या कर्मचारी नहीं था।

रिपोर्टों का फ़ाइल करना; क्लर्क और सचिव के कर्तव्य

धारा 103 (ए) धारा 101 के अंतर्गत, प्रतिनिधियों, कांग्रेस के प्रत्यायुक्तों, प्यूअर्टो रिको के निवासी आयुक्त, सदन के अधिकारियों और कर्मचारियों, सदन में

निर्वाचन के लिए प्रत्याशियों तथा संसदभवन के स्थपति, वनस्पति-उद्यान, कांग्रेस के बजट कार्यालय, राजकीय मुद्रण कार्यालय और कांग्रेस के पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों से अपेक्षित रिपोर्टें क्लर्क के यहां फ़ाइल की जाएंगी।

(बी) धारा 101 के अंतर्गत सेनेटरों, सेनेट के अधिकारियों और कर्मचारियों, सेनेट में निर्वाचन के लिए प्रत्याशियों तथा महालेखा कार्यालय, लागत लेखा विधि मानक बोर्ड, प्रौद्योगिकी निर्धारण कार्यालय, वायु-क्वालिटी पर राष्ट्रीय आयोग तथा परिचारी चिकित्सक के कार्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों से अपेक्षित रिपोर्टें सचिव के यहां फ़ाइल की जाएंगी।

(सी) सदस्य अथवा ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा, जो सदस्य के पद का प्रत्याशी हो, फ़ाइल की गई प्रत्येक रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि, संदर्भ के अनुसार क्लर्क अथवा सचिव द्वारा, क्लर्क अथवा सचिव के यहां फ़ाइल किए जाने के दिन से सात दिन की अवधि के भीतर, संदर्भ के अनुसार उपयुक्त राज्य अधिकारी के पास भेज दी जाएगी जिसे उस राज्य द्वारा संघीय निर्वाचन अभियान अधिनियम 1971 (2 यू.एस.सी. 439 (ए)) की धारा 316 (ए) के अनुरूप पदनामित किया गया हो जिस राज्य का वह सदस्य प्रतिनिधित्व करता है अथवा जिस राज्य में वह व्यक्ति प्रत्याशी है।

(डी) (1) इस खंड के अंतर्गत क्लर्क के यहां फ़ाइल की गई प्रत्येक रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि, क्लर्क द्वारा हाउस ऑफ़ रिप्रेजेंटेटिव्स की पदनामित कमेटी को रिपोर्ट फ़ाइल किए जाने के दिन से सात दिन के भीतर भेज दी जाएगी।

(2) सचिव के यहां फ़ाइल की गई प्रत्येक रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि सेनेट की पदनामित कमेटी को भेजी जाएगी।

(इ) इस खंड के अंतर्गत अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए क्लर्क और सचिव संघीय निर्वाचन आयोग की सहायता प्राप्त करेंगे। आयोग यह सहायता क्लर्क और सचिव को उपलब्ध कराएगा। आयोग क्लर्क और सचिव को नियमित रूप से, आयोग के यहां पंजीकृत सभी प्रत्याशियों के नामों और पतों की पूर्ण सूची उपलब्ध कराएगा तथा क्लर्क और सचिव के साथ अपने प्रत्याशी-सूचना एवं अधिसूचना कार्यक्रम में अधिकतम संभव सीमा तक सहयोग तथा तालमेल करेगा।

(एफ) इस खंड के अंतर्गत अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव्स की पदनामित कमेटी और सेनेट की पदनामित कमेटी रिपोर्ट-फ़ार्म तैयार करेंगी तथा नियमों और विनियमों को प्रख्यापित कर सकेंगी।

धारा 104 (ए) इस उपधारा के दूसरे वाक्य में दी गई व्यवस्था को छोड़ कर, इस खंड के अंतर्गत क्लर्क के यहां रिपोर्ट फ़ाइल किए जाने के बाद, पंद्रह दिन के भीतर, क्लर्क उस रिपोर्ट को उचित घंटों के दौरान सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराएगा। जिन रिपोर्टों का किसी भी वर्ष की 15 मई तक फ़ाइल किया जाना आवश्यक हो, वे ऐसे वर्ष की 15 मई के बाद 15 कैलेंडर दिनों के भीतर सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराई जाएंगी। ऐसी किसी भी रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि किसी भी व्यक्ति की प्रार्थना पर सचिव द्वारा उसे उपलब्ध कराई जाएगी।

(बी) इस उपधारा के दूसरे वाक्य में दिए गए प्रावधान के अपवाद को छोड़कर, इस खंड के अंतर्गत सचिव के यहां रिपोर्ट फ़ाइल किए जाने के बाद, पंद्रह दिन के भीतर, सचिव उस रिपोर्ट को उचित घंटों के दौरान सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराएगा। जिन रिपोर्टों का किसी भी वर्ष की 15 मई तक फ़ाइल किया जाना आवश्यक हो, वे ऐसे वर्ष की 15 मई के बाद 15 कैलेंडर दिनों के भीतर सार्वजनिक निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराई जाएंगी। ऐसी किसी भी रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि किसी भी व्यक्ति की प्रार्थना पर सचिव द्वारा उसे उपलब्ध कराई जाएगी।

(सी) (1) धाराओं (ए) और (बी) के बावजूद, इस धारा के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को रिपोर्ट उपलब्ध कराने से इंकार किया जा सकता है अथवा इस धारा के अंतर्गत उसकी कोई प्रतिलिपि देने से इंकार किया जा सकता है केवल उस स्थिति को छोड़ कर जब ऐसा व्यक्ति लिखित रूप में यह बताते हुए आवेदन पत्र दे :

(ए) व्यक्ति का नाम, व्यवसाय और पता;

(बी) किसी दूसरे व्यक्ति अथवा संगठन का नाम और पता जिसकी ओर से निरीक्षण अथवा प्रतिलिपि की प्रार्थना की गई है; और

(सी) कि उस व्यक्ति को रिपोर्ट की प्राप्ति अथवा उसके इस्तेमाल पर लागू निषेधों की जानकारी है

उस सारी अवधि के दौरान, जिसमें यह रिपोर्ट सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है, जनता को ऐसा आवेदन पत्र उपलब्ध रहेगा।

(2) रिपोर्ट की प्रतिलिपि मांगने वाले प्रत्येक व्यक्ति को रिपोर्ट की प्रतिकृति तैयार करने और उसे डाक से भेजने पर आने वाले ख़र्च की पूर्ति के लिए उचित शुल्क देना पड़ सकता है; इसमें इस प्रतिकृति को तैयार करने अथवा डाक से

भेजने से संबंधित किसी कर्मचारी का किसी प्रकार का वेतन शामिल नहीं होगा। यदि क्लर्क अथवा सचिव इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस शुल्क से छूट देना अथवा इसमें कमी करना सार्वजनिक हित में है क्योंकि ऐसी जानकारी दिए जाने से मुख्यतया जनता को लाभ हो सकता है, तो उस रिपोर्ट को निःशुल्क अथवा कम शुल्क पर दिया जा सकता है।

(डी) क्लर्क और सचिव के यहां इस खंड के अंतर्गत फ़ाइल की गई कोई भी रिपोर्ट उस रिपोर्ट के प्राप्त होने के छः वर्ष बाद तक की अवधि के लिए जनता को उपलब्ध रहेगी। ऐसी छः वर्ष की अवधि के पश्चात्, यदि किसी चल रही जांच में उस रिपोर्ट की आवश्यकता न हो, तो उस रिपोर्ट को नष्ट कर दिया जाएगा सिवाय इस अपवाद के कि धारा 101 (डी) के अनुसरण में जिस व्यक्ति ने रिपोर्ट फ़ाइल की हो और बाद में चुना न गया हो, उसके मामले में, ऐसी रिपोर्टें उस व्यक्ति के सदस्य निर्वाचित होने के लिए प्रत्याशी न रहने के एक वर्ष बाद नष्ट की जाएंगी बशर्ते किसी चल रही जांच में उनकी आवश्यकता नहीं हो।

(इ) (1) किसी भी व्यक्ति के लिए

(क) किसी ग़ैरकानूनी उद्देश्य से;

(ख) सामान्य जनता की जानकारी के लिए समाचार और संचार माध्यमों को छोड़ कर किसी अन्य व्यावसायिक उद्देश्य से;

(ग) किसी व्यक्ति के साख-मूल्यांकन का निर्धारण करने अथवा संस्थापित करने के लिए;

(घ) प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी राजनीतिक, पुण्यार्थ अथवा किसी अन्य उद्देश्य से इस्तेमाल के लिए;

ऐसी रिपोर्ट का प्राप्त करना अथवा इस्तेमाल करना ग़ैरकानूनी होगा।

(2) पैरा (1) में वर्जित किसी भी उद्देश्य से इस रिपोर्ट को प्राप्त करने अथवा इस्तेमाल करने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध महान्यायवादी दीवानी कार्यवाही कर सकते हैं। जिस न्यायालय के सामने यह मुकदमा लाया जाए, वह उस व्यक्ति पर ऐसी किसी भी धनराशि का दंड निर्धारण कर सकता है जिस की संख्या 5,000 डॉलर से अधिक न हो। यह उपाय सांविधिक अथवा निर्णयज कानून के अंतर्गत अन्य किसी भी उपाय के अतिरिक्त होगा।

पुनरवलोकन और अनुपालन क्रियाविधि

धारा 105 (ए) हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव की पदनामित कमेटी और सेनेट की पदनामित कमेटी उन्हें धारा 103 (डी) (1) और 103 (डी) (2) के अंतर्गत रिपोर्टों

के संबंध में यह निर्धारित करने के लिए कि रिपोर्टें समय पर फ़ाइल की गई हैं, मुकम्मल हैं और सही फ़ॉर्म में हैं, उनके पुनरवलोकन की क्रियाविधि स्थापित करेंगी। यदि यह निष्कर्ष स्थापित हो जाता है कि रिपोर्ट उस प्रकार फ़ाइल नहीं की गई तो उपयुक्त कमेटी रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को सूचित करेगी और उसे निर्देश देगी कि वह सभी प्रकार की आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही करे।

(बी) इस खंड के अंतर्गत अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए हाउस ऑफ़ रिप्रज़ेंटेटिव्स की पदनामित कमेटी और सेनेट की पदनामित कमेटी को क्रमशः अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में यह शक्ति प्राप्त है कि वह इस खंड के अधीन आने वाले व्यक्तियों को लिखित रूप में इस खंड की व्याख्या से संबंधित अपने परामर्शमूलक विचार दे सके। कानून की अन्य किसी व्यवस्था के बावजूद, जिस व्यक्ति को इस उपधारा के अनुसार परामर्शमूलक विचार दिया गया हो, और इस खंड के अधीन आने वाला ऐसा कोई अन्य व्यक्ति, जो सभी तात्विक पहलुओं से अप्रभेद्य किसी वास्तविक परिस्थिति में आलिप्त हो और जो, परामर्शमूलक विचार जारी किए जाने के पश्चात्, ऐसे परामर्शमूलक विचार की व्यवस्थाओं और निष्कर्षों के अनुरूप सद्भावपूर्वक काम करे, उस काम को करने के परिणाम स्वरूप, इस खंड में दी गई किसी प्रतिबन्धात्मक व्यवस्था का भागी नहीं होगा।

रिपोर्टें फ़ाइल करने में चूक अथवा रिपोर्टों का मिथ्याकरण

धारा 106. महान्यायवादी संयुक्त राज्य के किसी भी ज़िला न्यायालय में ऐसे किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध दीवानी मुकदमा पेश कर सकते हैं जिसने धारा 102 के अनुसरण में फ़ाइल अथवा रिपोर्ट की जाने वाली किसी सूचना का जानबूझ कर मिथ्याकरण किया हो अथवा जिसने जानबूझ कर उस सूचना को फ़ाइल या रिपोर्ट करने में चूक की हो। जिस न्यायालय के समक्ष ऐसा मुकदमा पेश किया गया हो, वह ऐसे व्यक्ति पर दीवानी दण्ड लागू कर सकता है जिसकी राशि 5,000 डॉलर से अधिक नहीं होगी। इस धारा के अंतर्गत, किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध उस व्यक्ति द्वारा फाइल की गई रिपोर्ट के बारे में मुकदमा पेश नहीं किया जा सकता जो उस व्यक्ति ने धारा 101 (डी) के अनुसरण में कैलेंडर वर्ष 1978 में फ़ाइल की हो।

परिभाषाएं

धारा 107. इस खंड के उद्देश्य से, पद

(1) 'आय' का अर्थ किसी भी स्रोत से उपार्जित वह सारी आय है जिसमें

निम्नलिखित मदें शामिल तो हैं, पर उसे सीमित नहीं करतीं : सेवाओं का पारिश्रमिक, जिसमें शुल्क, कमीशन और इस प्रकार की मदें शामिल हैं; व्यापार से उपार्जित सकल आय (और यदि व्यक्ति शामिल करना चाहे तो शुद्ध आय); सम्पत्ति के सौदों से उपार्जित किया गया मुनाफ़ा; ब्याज; किराया; रायल्टियां; लाभांश; वार्षिकियां; जीवन बीमे अथवा बन्दोबस्ती अनुबंधों से होने वाली आय; पेंशनें; ऋण से मुक्त होने से होने वाली आय; भागीदारी की आय का वितरणात्मक भाग; और सम्पदा अथवा ट्रस्ट में हित से होने वाली आय;

(2) 'संबंधी' का अर्थ ऐसा व्यक्ति है जो रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति से, पिता, माता, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन, अंकल, आंट, बड़ी आंट, बड़ा अंकल, प्रथम कज़िन, भतीजा/भतीजी, भांजा/भांजी, पति, पत्नी, दादा/नाना, दादी/नानी, पौत्र/दौहित्र, पौत्री/दौहित्री, ससुर, सास, दामाद, बहू, साला/बहनोई, साली/भाभी, सौतेला पिता, सौतेली माता, सौतेला पुत्र, सौतेली पुत्री, सौतेला भाई, सौतली बहन, अर्धरक्त भाई, अर्धरक्त बहिन है अथवा जो रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति से उसकी पत्नी/पति के दादा/नाना, दादी/नानी के रूप में संबंधित हैं, तथा इनमें रिपोर्ट करने वाले व्यक्ति का/की वाग्दत्त/वाग्दत्ता पति/पत्नी शामिल समझे जाएंगे।

(3) 'उपहार' का अर्थ है भुगतान, अग्रिम, धन या किसी मूल्यवान् वस्तु की प्रविरिति, देना अथवा जमा करना बशर्ते कि उतनी या उससे ज़्यादा कीमत के प्रतिफल की प्राप्ति न हुई हो, पर इसमें निम्नलिखित शामिल नहीं हैं :

(ए) वसीयत तथा अन्य प्रकार की विरासत;

(बी) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को किसी आयोजन में सम्मानित करने के लिए भेंट किए गए उपयुक्त स्मृति-चिह्न;

(सी) किसी दूसरे देश में, विदेशी सरकार द्वारा वहां की राज्य सरकारों, स्थानीय सरकारों अथवा उनके राजनीतिक उपविभागों द्वारा अथवा संयुक्त राज्य की सरकार द्वारा भेंट किया गया भोजन, निवास, परिवहन और मनोरंजन;

(डी) दावतों, स्वागत समारोहों या ऐसे आयोजनों में सेवन किया गया भोजन और पेय;

(इ) गृह-राज्यों की व्यापारिक संस्थाओं द्वारा किसी सदस्य के कार्यालय को वितरण के लिए दिये गए उपभोक्ता उत्पादन; अथवा

(एफ़) रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के कार्यालय को दी गई संचार-

सामग्री जिसमें समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं का सदस्यता शुल्क शामिल है;

(4) 'मानदेयों' का अर्थ वही है जो 'संघीय निर्वाचन अभियान अधिनियम 1971' में इस पद को दिया गया है;

(5) 'मूल्य' का अर्थ सद्भावपूर्वक आंका गया डॉलर मूल्य है बशर्ते कि उसकी सही कीमत का, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति को, न तो पता हो न वह उसे आसानी से हासिल कर सकता हो;

(6) 'किसी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत आतिथ्य' का अर्थ वह आतिथ्य है जो किसी व्यक्ति द्वारा, न कि किसी कार्पोरेशन अथवा संगठन द्वारा, उस व्यक्ति के निजी अथवा उसके परिवार के आवास पर अथवा उस व्यक्ति अथवा उसके परिवार की सम्पत्ति अथवा सुविधा स्थलों पर किया गया हो;

(7) 'आश्रित बच्चा' का अर्थ, जब इस पद का प्रयोग किसी रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति के संदर्भ में किया गया हो, तो वह ऐसा कोई भी व्यक्ति है जो पुत्र, पुत्री, सौतेला पुत्र, सौतेली पुत्री है, और वह जो :

(ए) अविवाहित और 21 वर्ष से कम आयु का हो और रिपोर्ट फाइल करने वाले उस व्यक्ति के कुटुम्ब में रहा हो; या

(बी) आंतरिक राजस्व संहिता 1954 की धारा 152 के अर्थों के अंतर्गत उस रिपोर्ट करने वाले व्यक्ति पर आश्रित हो;

(8) 'प्रतिपूर्ति' का अर्थ उपहारों से भिन्न, रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया गया कोई भुगतान अथवा मूल्यवान् वस्तु, जो उस व्यक्ति की यात्रा से संबंधित खर्चों की भरपाई के लिए हो, उस को छोड़ कर

(ए) जो संयुक्त सरकार, कोलंबिया ज़िला अथवा किसी राज्य अथवा उसके राजनीतिक उपविभाग द्वारा की गई/दी गई हो;

(बी) जिसका रिपोर्ट फ़ाइल करने वाले व्यक्ति द्वारा संयुक्त राज्य संहिता, खंड 5, धारा 7342 के अंतर्गत रिपोर्ट किया जाना आवश्यक हो; या

(सी) जिसका संघीय निर्वाचन अभियान अधिनियम 1971 (2 यू.एस.सी. 434) की धारा 304 के अंतर्गत रिपोर्ट किया जाना आवश्यक हो;

(9) 'प्रत्याशी' का अर्थ, सदस्य को छोड़ कर, वह व्यक्ति है जो कांग्रेस में निर्वाचन के लिए नामांकन अथवा निर्वाचन का तलबगार हो, भले ही ऐसा व्यक्ति चुना जाए या न, और इस पैरा के प्रयोजन से, वह व्यक्ति निर्वाचन के लिए नामांकन अथवा निर्वाचन का तलबगार माना जाएगा,

(ए) यदि उसने किसी राज्य के कानून के अंतर्गत निर्वाचन के लिए नामांकन अथवा निर्वाचन का तलबगार होने की अर्हता प्राप्त करने के लिए उचित कार्यवाही कर ली हो या (बी) उसने अथवा उसकी मुख्य निर्वाचन कमेटी ने संघीय निर्वाचन अभियान अधिनियम 1971 (2 यू.एस.सी. 434 (ए)) की धारा 304 (ए) में आवश्यक अभियान रिपोर्टों के पंजीकरण या फ़ाइल करने की कार्यवाही कर ली हो;

(9) 'क्लर्क' का अर्थ है हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव्स का क्लर्क;

(10) 'सचिव' का अर्थ है सेनेट का सचिव;

(11) 'सदस्य' का अर्थ है संयुक्त राज्य का सेनेटर, कांग्रेस में प्रतिनिधि, कांग्रेस में प्रत्यायुक्त या प्युअर्टो रिको का निवासी आयुक्त;

(12) 'निर्वाचन' का अर्थ है (ए) सामान्य, विशेष, प्राथमिक अथवा दोबारा निर्वाचन या (बी) किसी राजनीतिक दल की/का ऐसी/ऐसा कन्वेंशन या प्रसम्मिलन जिसे किसी प्रत्याशी के नामांकन का अधिकार प्राप्त हो;

(13) 'सदन का अधिकारी या कर्मचारी' का अर्थ है सदस्य को छोड़ कर कोई भी व्यक्ति जिसका वेतन क्लर्क द्वारा दिया जाता हो;

(14) 'सेनेट का अधिकारी या कर्मचारी' का अर्थ है सेनेटर या उपराष्ट्रपति को छोड़कर कोई भी व्यक्ति जिसका वेतन सचिव द्वारा दिया जाता हो; और

(15) 'हाउस ऑफ़ रिप्रेज़ेंटेटिव्स की पदनामित कमेटी' और 'सेनेट की पदनामित कमेटी' का अर्थ प्रसंगानुसार सदन अथवा सेनेट की वह कमेटी है जिसे इस खंड में वर्णित रिपोर्ट करने संबंधी व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

अन्य कानून

धारा 108. इस खंड द्वारा जोड़ी गई व्यवस्थाएं और उनके अंतर्गत जारी किए गए विनियम किसी भी ऐसे राज्यीय अथवा स्थानीय कानून का अधिक्रमण और अग्रक्रय करने वाले होंगे जो सदस्य का पदधारी होने के कारण, संघीय पद की अभ्यर्थिता के कारण अथवा संयुक्त राज्य सरकार में कर्मचारी होने के कारण वित्तीय प्रकटीकरण से संबंधित हैं।

महालेखा कार्यालय का अध्ययन

धारा 109 (ए) : 30 नवम्बर 1980 से पूर्व और उसके पश्चात् नियमित रूप से, संयुक्त राज्य के महानियंत्रक यह निर्धारित करने के लिए एक अध्ययन की व्यवस्था करेंगे कि क्या इस खंड का पालन प्रभावी रूप से हो रहा है और जो व्यक्ति इस

खंड की परिधि में आते हैं, उनके द्वारा समयानुसार और सही रिपोर्टें फ़ाइल की जा रही हैं;

(बी) उक्त अध्ययन को पूरा करने के बाद, तीस दिन के भीतर, महानियंत्रक कांग्रेस के प्रत्येक सदन को अपने अधिगमों और निष्कर्षों का एक विस्तृत विवरण, और उसके साथ ऐसे विधायी और प्रशासकीय उपायों से संबंधित अपनी अनुशंसाएं भेजेंगे जो उनकी दृष्टि में उचित हों। इस प्रकार के पहले अध्ययन में, इस खंड के अंतर्गत फ़ाइल की गई वित्तीय प्रकटीकरण रिपोर्टों की व्यवहार्यता और संभाव्य आवश्यकता के दृष्टिगत क्रमबद्ध अनियमितावधि लेखा-परीक्षा को आवश्यक बनाने संबंधी महानियंत्रक के अधिगम और अनुशंसाएं शामिल होंगी; इसमें लेखा -परीक्षा के प्रकार और प्रकृति; लेखा-परीक्षा पर होने वाले कार्मिक तथा अन्य व्ययों; सदस्यों, सदन एवं सेनेट की उपुयक्त कमेटियों तथा जनता के लिए उस लेखा-परीक्षा के महत्व के साथ-साथ यदि लेखा परीक्षा करवाई जाए तो क्या इसे किसी सरकारी अथवा ग़ैर सरकारी प्रतिष्ठान से और किस के पर्यवेक्षण में करवाया जाए, विषयों पर विस्तृत चर्चा भी शामिल रहेगी।

चुने हुए ग्रन्थों की संदर्भिका

ओज़ा, बी.एम., *द एम्बेसेडर्ज़ एविडेंस*, कोणार्क पब्लिशर्ज़ प्रा.लि., नई दिल्ली 1997।

करंजिया, आर.के., *द माइंड आफ़ नेहरू*, एलेन एंड अन्विन, लंदन, यूके, 1960।

के. सन्तानम् कमेटी की *भ्रष्टाचार की रोकथाम पर रिपोर्ट*, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, 1964।

क्वांग, हैन फ़ूक, वारन फ़र्नान्डिज़ और सुमिको तान, *ली क्वान यू - द मैन एंड हिज़ आइडियाज़*, टाइम्ज़ एडिशन्ज़ प्रा. लि., सिंगापुर, 1998।

गिल, एस.एस., *द पैथॉलॉजी ऑफ़ करप्शन*, हार्पर कोलिन्स पब्लिशर्ज़ इंडिया (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1998।

गुहन, एस. और सेम्युअल पॉल (संपादक), *करप्शन इन इंडिया - एजेंडा फ़ॉर एक्शन*, विज़न बुक्स, नई दिल्ली, 1997।

गेविन, ड्रयूरी और टोनी बुचर, *द सिविल सोसाइटी टुडे*, ब्लैकवैल, यू.के. और यूएसए, 1988।

गोपाल, सर्वपल्ली, *जवाहरलाल नेहरू - अ बायोग्राफ़ी*, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999।

चिटकारा, एम.जी., *कन्ज़्यूमरिज़्म, क्राइम एंड करप्शन*, ए पी एच पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली, 1998।

चोम्स्की, नोआम, *प्रॉफ़िट ओवर पीपुल*, सेवन स्टोरीज़ प्रेस, 140, वाल्ट्स स्ट्रीट, न्यूयॉर्क, 1999।

जयकर, पुपुल, *इंदिरा गांधी - अ बायोग्राफ़ी*, पेंग्विन बुक्स इंडिया (प्रा.) लि. नई दिल्ली, 1992।

टोर्पे, विलियम जी., *फ़ेडरल एक्ज़ीक्युटिव ब्रांच इथिक्स*, डब्ल्यू जी. टोर्पे, अलैक्ज़ैंड्रिया, वर्जिनिया, यूएसए, 1990।

तेंदुलकर, डी.जी., *महात्मा*, द्वितीय संस्करण, विट्ठल भाई के. झवेरी और डी.जी. तेंदुलकर, बम्बई 1960।

थॉम्पसन, डेनिस एफ़., *पोलिटिकल इथिक्स एंड पब्लिक आफ़िस*, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज, मेसाच्यूसेट्स और लंदन, यू.के. 1987।

दास, एस.के., *सिविल सर्विस रिफ़ॉर्म एंड स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट*, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1998।

पॉलिसी रिसर्च - द एशियन मिरेकल : इकोनॉमिक ग्रोथ एंड पब्लिक पॉलिसी, वर्ल्ड बैंक, वाशिंगटन डी.सी. 1993।

पेरी, पीटर जॉन, *पोलिटिकल करप्शन एंड पोलिटिकल ज्योग्राफ़ी*, ऐश गेट, एल्डर शॉट, यूके 1997।

पोर्टा, डोनाटैला डैला एंड वेस मेनी (संपादक), *डेमोक्रेसी एंड करप्शन इन यूरोप*, पिन्टर, लंदन, यूके 1997।

फ़िफ्थ सेंट्रल पे कमीशन रिपोर्ट, भारत सरकार का प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997।

भार्गव, जी.एस. और एस.एन द्विवेदी, *पोलिटिकल कॅरप्शन इन इंडिया*, पापुलर बुक सर्विस, नई दिल्ली, 1967।

मित्रा, चंदन, *द कॅरप्ट सोसाइटी*, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1998।

मूडी-स्टुआर्ट, जॉर्ज, *ग्रैंड कॅरप्शन*, वर्ल्डव्यू पब्लिशिंग, ऑक्सफ़ोर्ड, 1997।

मिर्डल, गुन्नार, *एशियन ड्रामा : एन इंक्वायरी इन्टु द पावर्टी ऑफ़ नेशन्स*, एलेन लेन, लंदन, यूके 1972।

मूर, स्टीफ़न, *पॉवर एंड कॅरप्शन*, विज़न पेपरबैक्स, लंदन यूके 1997।

युनाइटिड नेशन्स डिवेलपमेंट प्रोग्राम, *कॅरप्शन एंड गुड गवर्नेन्स*, डिस्कशन पेपर 3, युनाइटिड नेशन्स, न्यूयॉर्क, 1997।

रिडले, एफ़.एफ़.और एलेन डोइग (संपादक), स्लीज़ : *पोलिटिशयन्ज़ प्राइवेट इंटरेस्ट्स एंड पब्लिक रिएक्शन*, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, यूके, 1995।

रंगराजन, एल.एन., *कौटिल्य - द अर्थशास्त्र*, पेंग्विन बुक्स इंडिया (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 1992।

लिऑन, पीटर डे, *थिंकिंग अबाउट पोलिटिकल कॅरप्शन*, एम.इ. शार्प, न्यूयॉर्क, लंदन, 1993।

विट्टल, एन. और एस. महालिंगम्, *फ़ाइटिंग कॅरप्शन एंड रिस्ट्रक्चरिंग गवर्न्मेन्ट*, मानस पब्लिकेशन्ज़, नई दिल्ली, 2000।

विश्वनाथन्, शिव और हर्ष सेठी (संपादक), *फ़ाउल प्ले, क्रॉनिकल्ज़ ऑफ़ कॅरप्शन - 1947-97*, बन्यन बुक्स, नई दिल्ली, 1998।

शेषन, टी.एन. और संजोय हज़ारिका, *द डिजेनरेशन ऑफ़ इंडिया*, वाइकिंग, नई दिल्ली, 1995।

सिंह, जोगिंदर, *विदाउट फ़ियर ऑर फ़ेवर - एन ऑटोबायोग्राफ़ी*, कावेरी बुक्स, नई दिल्ली, 1998।

सिंह, एल.पी., *पोर्ट्रेट ऑफ़ लाल बहादुर शास्त्री*, रवि दयाल पब्लिशर्ज़, दिल्ली, 1996।

हक्सले, ऑल्डस, *पिरिनियल फ़िलॉसफ़ी*, हार्पर कोलिन्स, न्यूयॉर्क, 1990।

हिम्मलफ़ार्ब, गुर्ट्रुड, लॉर्ड एक्टन - *अ स्टडी इन कांशियेंस एंड पॉलिटिक्स*, इंस्टीच्यूट ऑफ़ कन्टेम्परेरी स्टडीज़, सैन फ़्रांसिस्को, कैलिफ़ोर्निया, यूएसए, 1993।

सर्वाधिकार सुरक्षित

बिना पूर्व आज्ञा के इस पुस्तक के किसी भी भाग की प्रतिलिपि या किसी भी रूप में प्रसारण वर्जित है। कोई भी व्यक्ति अनधिकृत रूप से यदि इसका प्रकाशन करता है तो उस पर हानिपूर्ति का दावा किया जाएगा।

लेखक की अन्य कृति

लाल बहादुर शास्त्री
राजनीति में सत्यनिष्ठ जीवन

सी०पी० श्रीवास्तव

अनुवादक
[illegible]

स्वतंत्र भारत के दूसरे प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री (1904-1966) की जीवन-गाथा एक सामान्य व्यक्ति की असामान्य गाथा है। इस व्यक्ति ने अपने प्रारंभिक जीवन में गरीबी की आग की झुलस को झेलते हुए केवल नैतिक सिद्धान्तों के बल पर असाधारण राजनैतिक ऊँचाई हासिल की। शास्त्रीजी अपने पीछे न कोई धन-संपत्ति छोड़ गये, न कोई बैंक-बैलेंस। हाँ, हर तरह के भ्रष्टाचार के बोलबाले वाले आज के माहौल में राजनीति का चक्कर चलानेवालों के लिए एक मिसाल ज़रूर क़ायम कर गये। क्या आज का राजनेता इससे कुछ सीखना चाहेगा?

केवल 19 महीने प्रधान मंत्री रहे शास्त्रीजी का कार्यकाल सरगर्मियों से भरा, तेज गतिविधियों का काल था। इस काल के दरम्यान राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय अहमियत के कई सामाजिक तथा राजनैतिक मसलों ने सिर उठाया; जिनमे पाकिस्तान के ख़िलाफ़ एक बड़ा युद्ध भी शामिल है।

इन सब घटनाओं का विस्तृत विवरण तो इस पुस्तक में है ही; साथ ही ऐसे कई तथ्यों का अन्तर्भाव भी है, जिन्हें पहली बार उजागर करके ठीक ढंग से स्थापित किया गया है।

कई वर्षों तक शास्त्रीजी के निजी सचिव रहे लेखक ताशकंद में उनकी मृत्यु तक उनके साथ थे। पाँच साल तक की गहरी खोज, तथ्यों की छानबीन, विभिन्न लोगों के साथ साक्षात्कार, दस्तावेज़ों का अध्ययन—इन सबका नतीजा है यह विस्तृत, विद्वत्तापूर्ण चरित्रग्रन्थ। लेखक ने शास्त्रीजी की ताशकंद में हुई रहस्यमय मौत के कारणों की सही जाँच-पड़ताल की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विख्यात चिकित्सा-विशेषज्ञों के साथ भी सलाह-मशवरा किया।

मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स (प्रा०) लिमिटेड